भारत की सती स्त्रियाँ !

प्रकाशक
बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

मूल्य १)

भारत की सती स्त्रियाँ ।

महिलाओं के उपयोगी भारतवर्ष के
पुराने समय की सती देवियों के
आदर्श चरित्र का संग्रह

सम्पादक
श्री भक्त शिरोमणि

प्रकाशक
बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ।

१९२७ [मूल्य १)

भूमिका

हिन्दीसाहित्य में स्त्रियों के साहित्य की बड़ी कमी है। स्त्री साहित्य सम्बन्धी जो कुछ भी साहित्य आज तक प्रकाशित हुआ है उनमें कुछ ही ऐसा है जिसको पढ़कर साधारण स्त्रियां भी लाभ उठा सकें। हमको भारतीय स्त्रियों के सामने पौराणिक भारतीय आदर्श उपस्थित करना चाहिये। जिनसे वे उन आदर्शों पर अपने को चलने के लिये तत्पर करें। प्रस्तुत पुस्तक इसी प्रकार की है। इसमें भारत की पुरानी देवियों के उज्जवल चरित्र पर प्रकाश डाला गया है इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है कि इन चरित्रों के पढ़ने तथा सुनने से जाति का बड़ा हित होगा। अपने को आगे बढ़ाने में वे सहायता प्राप्त करेंगीं। पुराने जमाने की सतियों का प्रताप कौन नहीं जानता। सीता, सवित्री का नाम आज तक संसार के प्रत्येक नर नारी के मुँह पर है। ऐसी नारियों के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करना परम धर्म है। इसमें सन्देह नहीं है कि इस पुस्तक को पढ़ कर स्त्रियां संतुष्ट होंगी। कोई भी जब अपने जीवन को सुधारने लगता है तब उसके सामने कोई आदर्श रहना बहुत आवश्यक है। यह 'भारत की सती स्त्रियां' भी स्त्रियों के सामने आदर्श रहेगी। ऐसी आशा है।

भवदीय

प्रकाशक

भूमिका

हिन्दीसाहित्य में स्त्रियों के साहित्य की बड़ी कमी है। स्त्री साहित्य सम्बन्धी जो कुछ भी साहित्य आज तक प्रकाशित हुआ है उनमें कुछ ही ऐसा है जिसको पढ़कर साधारण स्त्रियां भी लाभ उठा सकें। हमको भारतीय स्त्रियों के सामने पौराणिक भारतीय आदर्श उपस्थित करना चाहिये। जिनसे वे उन आदर्शों पर अपने को चलने के लिये तत्पर करें। प्रस्तुत पुस्तक इसी प्रकार की है। इसमें भारत की पुरानी देवियों के उज्जवल चरित्र पर प्रकाश डाला गया है इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है कि इन चरित्रों को पढ़ने तथा सुनने से जाति का बड़ा हित होगा। अपने को आगे बढ़ाने में वे सहायता प्राप्त करेंगी। पुराने जमाने की सतियों का प्रताप कौन नहीं जानता। सीता, सवित्री का नाम आज तक संसार के प्रत्येक नर नारी के मुँह पर है। ऐसी नारियों के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करना परम धर्म है। इसमें सन्देह नहीं है कि इस पुस्तक को पढ़ कर स्त्रियां संतुष्ट होंगी। कोई भी जब अपने जीवन को सुधारने लगता है तब उसके सामने कोई आदर्श रहना बहुत आवश्यक है। यह 'भारत की सती स्त्रियां' भी स्त्रियों के सामने आदर्श रहेगी। ऐसी आशा है।

भवदीय

प्रकाशक

सीता और अनुसुइया।

प्रेस, प्रयाग।

भारत की सती स्त्रियाँ

सीता

मिथिला-नरेश महाराज जनक अपनी प्रजा को अपने प्राण से बढ़कर प्यारा समझते थे और प्रतिक्षण उसकी उन्नति की चिन्ता में रहते थे। कहा जाता है कि राजा स्वयं ज़मीन में हल जोतते थे। एक बार उन्हें एक नवजात लड़की मिली। राजा ने लड़की को बताया कि तुम्हारा नाम सीता इसीलिये रक्खा गया है कि तुम्हारी माता पृथ्वी है। सीता का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से किया गया। ज्यों ज्यों सीता आयु में बढ़ती गईं, उसका रूप और सदाचार जगत्‌विख्यात होने लगा। जवान होने पर राजा को उसके विवाह की चिन्ता हुई। उन्होंने निश्चय किया कि सीता का विवाह उस पुरुष से करेंगे जो पुरुषत्व आदि गुणों से संपन्न और शूरवीरों में अद्वितीय होगा। राजा के यहाँ कई पीढ़ियों से एक धनुष चला आता था। उस समय तक किसी योद्धा को उसका चिल्ला तक चढ़ाने का साहस न हुआ था। इसलिये जब राजदूत स्वयंवर का संदेश लेकर इधर उधर जाते, तब साथ ही इस प्रतिज्ञा की भी घोषणा करते कि जो

पुरुष उस धनुष को तोड़ेगा, सीता का विवाह उसी के साथ होगा। अनेक राजा महाराजा सेना लेकर मिथिला पहुँचे। दो दिन पहले दो राजकुमार—राम लक्ष्मण, जो अयोध्या नगरी के राजा दशरथ के पुत्र थे और जो वन में एक ऋषि के आश्रम में धनुर्विद्या सीख रहे थे और ऋषि-आश्रम को राक्षसों के आक्रमण से बचाने का काम भी करते थे, स्वयंवर का समाचार सुन मिथिला पहुँचे।

नियत तिथि पर स्वयंवर का सब प्रबन्ध किया गया। सब लोग एकत्र हुए। प्रतिज्ञा सब को सुना दी गई। एक के बाद दूसरा इस तरह कई शूरवीर मैदान में आये और धनुष के साथ ज़ोर-अज़माई करके वापस लौट गये। कोई धनुष को उठा न सका। राजा जनक ने ऊँचे स्वर से कहा "क्या बहादुरी का अन्त हो गया? क्या सीता सदा के लिये अविवाहिता रहेगी? यदि मुझे यह ज्ञात होता तो मैं यह प्रण कभी न करता। पर इस समय मेरे लिये अपनी प्रतिज्ञा भंग करना असम्भव है।" इस कथन ने सब वीर योद्धाओं को, जो पहले ही से बड़े लज्जित हो रहे थे, और भी दुःखित कर दिया।

यह अवस्था देख, राम अपने गुरु की आज्ञा लेकर आगे बढ़े और धनुष को उठाकर क्षण भर में उसके दो टुकड़े कर दिये। चारों ओर से जयजयकार की ध्वनि उठी। निराशा आशा में बदल गई। सबकी आँखें राम पर लग गईं। सीता ने जयमाल राम के गले में डाल दी। जब दशरथ को यह ख़बर मिली, वह अपने राजकर्मचारियों सहित मिथिला पहुँचे। नियत समय पर विवाह-संस्कार कराया गया।

राजा जनक ने उस शुभ अवसर पर राम से यह वचन कहे —"हे राम! सीता पवित्र और धर्मवती है, उस ने कभी मन, वचन या कर्म से किसी प्राणी को कष्ट नहीं दिया। जैसे तुम शौर्य्य आदि गुणों से संपन्न हो, वैसे ही सीता भी है। दुःख-सुख में वह सदा तुम्हारे संग रहेगी और छाया के समान तुम्हारा पीछा करेगी।"

सीता अपने माता पिता से विदा होकर अयोध्या गई। राजा दशरथ की तीन रानियाँ थीं और चार पुत्र। पुत्रों में राम सब से बड़े थे। शेष तीन लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न थे। राम सौन्दर्य्य, बुद्धि, शीलता, विद्या, ज्ञान और वीरता आदि गुणों में अद्वितीय थे। विवाह के पश्चात् कुछ समय आनन्द से गुज़रा। राजा दशरथ बूढ़े हो गये थे। इस लिये उन्हें यह चिन्ता हुई कि अपने जीते जी रामचन्द्र को युवराज बना दिया जावे, ताकि राज-कार्य्य में उनकी रुचि और अनुभव हो जाय।

ज्यों ही यह बात कैकेयी की दासी मन्थरा ने सुनी, उसने अपनी स्वामिनी को जाकर बहकाया। उसने कहा कि सुन्दर होने के कारण अब तो राजा दशरथ तुम से बहुत प्रेम करते हैं, परन्तु जब थोड़े ही दिन में राम गद्दी पर बैठ गये तब तुम्हारी कुछ पूछ न होगी। कोई तुम्हारा आदर सत्कार न करेगा। इसका उपाय एक ही है कि तुम राजा को इस बात के लिये मजबूर करो कि वह तुम्हारे पुत्र भरत को राज-तिलक और राम को चौदह वर्ष का वनवास दें। कैकेयी को दासी का कुमन्त्र पसन्द आया। राजा महल में आये, तब कैकेयी ने छल करके उन्हें अपने फन्दे में फँसा लिया और कहा कि मेरे वे दो वर, जो आपने युद्ध में मुझ से कहे थे, आज पूरे करो। राजा ने वर माँगने को कहा तब

कैकेयी बोली कि भरत को गद्दी मिले और राम चौदह वर्ष के लिए वन में रहें।

राजा वचन दे चुके थे।

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाय पर वचन न जाई॥

कैकेयी के स्वार्थ पूर्ण शब्द सुनकर राजा को इतना दुःख हुआ कि वे मूर्छित हो गये। जब रामचन्द्रजी आये तब उन्होंने अपने पिता की अवस्था देख माता कैकेयी से उसका कारण पूछा। रानी ने सब कह सुनाया। रामचन्द्र जी ने कहा—'मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा यदि मेरे कारण पिता अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर सकें।' कुछ दिन पहले जिस खुशी से युवराज बनने के लिए तैयार थे, उसी तरह अब वन को जाने के लिये उद्यत हो गये। यह बात सीता को मालूम हुई तब उन्होंने अपने पति को तसल्ली दी और स्वयं साथ जाने को कहा। रामचन्द्रजी बोले—'वन में काँटे होंगे' वे तुम्हारे कोमल पाँव में चुभेंगे। वहाँ जंगली पशु होंगे, तुम्हें उन से भय होगा। तुम फूलों की शैय्या पर सोनेवाली हो पर वहाँ तो घास फूस का बिछौना होगा। इसलिये तुम, वन में न आओ। जब तक मैं वन से न लौटूँ तुम अपने सास ससुर की सेवा करना।' सीताजी ने उत्तर दिया, 'आप के बिना मेरा यहाँ रहना असंभव है। मुझे आप के संग रहते हुये किसी का डर नहीं हो सकता। जब आप चलेंगे तब मैं आपके आगे हो कर रास्ते के काँटे साफ़ करूँगी ताकि आप को कष्ट न हो। मेरे लिये फूलों की शय्या वही होगी जहाँ आप के पवित्र चरण कमल होंगे'! सीताजी की अनन्य भक्ति देख राम उन्हें अपने साथ ले जाने

पर विवश हुए । लक्ष्मणजी बाल्यकाल ही से राम के साथ रहते थे । वह क्षण भर के लिये भी अपने बड़े भाई से पृथक न होते थे । उन्होंने भी जाने पर आग्रह किया ।

सीता, राम और लक्ष्मण के चले जाने पर अयोध्या नगरी बिलकुल सूनी मालूम पड़ने लगी । चित्रकूट पहुँच कर उन्होंने रथ लौटा दिया । इधर जब दशरथ को यह समाचार मिला तब वह बेसुध हो कर भूमि पर गिर पड़े । महारानी कौशल्या ने अपने पति का सिर गोद में ले लिया । राजा को सुध आई तब कैकेयी ने अपनी भूल के लिए क्षमा माँगी । राजा ने रानी की गोद में ही अपना शरीर त्याग दिया । भरत ने भी राज्य पाट करना न चाहा और रामजी के साथ रहने का निश्चय किया । स्वयं चित्रकूट पहुँच कर जेठे भाई से प्रार्थना की कि अयोध्या चल कर राज काज संभालिये । रामजी इसे कैसे स्वीकार कर सकते थे । भरत अकेले वापस लौटे और उनके स्थान पर काम करने लगे । उधर सीता लक्ष्मण सहित राम दण्डक बन में आत्रेय ऋषि के आश्रम पर गये । ऋषि की धर्मपत्नी भी वहीं थीं । वे बहुत वृद्ध होने पर भी तप का जीवन व्यतीत करते थे ।

सीताजी ने उन के चरणों पर अपना सीस नवाया । सरल स्वभाव बुढ़िया ने बैठने को कुशा का आसन दिया और कहा, 'तू रूपवती, सौन्दर्य और स्वस्थ है, यह और भी अच्छा है दुःख में भी तू पति का साथ देती है, यह सब से अच्छी बात है । मैं तेरे विषय में सब बातें सुन चुकी हूँ । राजपाट के सुख को लात मार कर पति की सेवा करना, यह कोई विरली स्त्री ही करती है ! यह तूने बड़ी साहस

का काम किया मैं यह दुखी बात नहीं कहती, मैं तूने अनुभव भी करती हूँ कि तू ने अपने धर्म का पालन किया है। पत्नी के लिये पति ही आदर्श पुरुष होता है। पतिव्रता नारी का मन अपने पति का दर्पण होता है, जिसमें पति के विचार और भाव प्रतिबिम्बित होते हैं। पति का आचार-व्यवहार मानो एक साँचा होता है, जिसमें पत्नी का जीवन ढलता है। पति ही तेरे जीवन का बेड़ा पार कर सकते हैं। हे सीता, तेरे लिये राम ही आदर्श हैं।'

सीताजी ने उत्तर दिया "माता, मैं नहीं जानती कि मैं पति की आज्ञा पालन कर रही हूँ, मैं तो राम के शब्द को धर्म समझती हूँ। राम मुझे प्राणों से भी प्यारे हैं। अग्नि-कुण्ड के सामने खड़े होकर जब इन्होंने मुझ से ही प्रेम करने का प्रण किया, जब मेरी आँख इनकी आँखों से मिली तभी से मैं इन का पूजन करती हूँ। मैं नहीं जानती कि यह काम अग्नि का था या परमेश्वर अथवा इन की आँखों का, केवल इतना जानती हूँ कि जब मैंने उधर से दृष्टि हटाई तब मेरे हृदय पर एक बोझ-सा मालूम पड़ा। जहाँ पहले मेरे मन में घमण्ड, और स्वार्थ था। वहाँ अब राम की ही मूर्त्ति बसने लगी है। अब यही लुभाने वाली मूर्त्ति मेरे आनन्द और हर्ष का केन्द्र बन गई।' बूढ़ी अनुसूया ने सीताजी को असीस दी 'बेटी, तेरा सुहाग सदा के लिये बना रहे। तेरा यश और कीर्त्ति समस्त संसार में फैले।'

दण्डक बन से चलकर सीता, राम और लक्ष्मण विन्ध्याचल के बन में पहुँचे, वहाँ राक्षस रहा करते थे। लंका के राजा रावण की बहन शूर्पणखा भी वहीं रहती थी। राम को देख वह उन पर मोहित हो गई

और पास जाकर उन से अपने दिल की बात कही। राम ने बहुत समझाया किन्तु उस की समझ में कुछ न आया। उस ने जब सीता को बुरा भला कहा तो लक्ष्मण ने उस की नाक काट ली। बहुत शोर मचाती हुई वह अपने भाई के पास पहुँची और उसे बदला लेने के लिये उकसाया। इस पर रावण तैयार हो गया।

एक दिन सीताजी अकेली कुटी में बैठी थीं कि साधु का वेष बनाकर रावण आया और सीता से पूछने लगा कि "हे सुन्दरी, तू इस निर्जन वन में,कैसे आई है यहां तो डरावने जंगली जानवर रहते हैं ?" सीताजी ने अपना सारा हाल सुनाया। रावण ने सीताजी को बहकाना शुरू किया। उसने कहा 'हे सुंदरी,तू क्यों वनमें दुःख उठा रही है ? मैं लङ्का का राजा हूँ। मेरे साथ चल और मेरे महलों में रह।' सीताजी ने घृणा से उत्तर दिया—'रावण, क्या तू नहीं जानता कि राम कितने तेजस्वी हैं। वे जब धनुष उठाते हैं तो प्रलय आ जाती है। यहां से चला जा, वरना दोनों भाई आ गये तो तेरा बचना कठिन हो जायगा।' रावण भी था बड़ा बलवान् वह सीता को पकड़ कर लंका को उठा ले भागा।

राम और लक्ष्मण वापस लौटे। कुटिया ख़ाली पड़ी थी। इधर उधर देखा भाला, परन्तु सीता का कोई पता न लगा। घबरा कर 'सीता' 'सीता' पुकारने लगे। भला जंगल में कौन सुनता था। शोकातुर और निराश हो दोनों भाई एक चट्टान पर बैठ गये। सोचते सोचते उनकी दृष्टि एक आदमी के पैर के निशान पर पड़ी। राम अन्तरयामी थे ही तुरन्त पहिचान गए हो न हो यह रावण की धूर्तता है। दोनों दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें घायल हुआ जटायु नामक

एक गिद्ध मिला उसने उन्हे बताया कि "रावण एक सुन्दर स्त्री को ज़बरदस्ती उठाये ले जा रहा था । रावण से इस सुंदरी को छुड़ाने के प्रयत्न में मेरी यह दशा हुई है"। और आगे बढ़े तो राजा सुग्रीव से भेंट हुई। सुग्रीव अपने भाई से तंग आ गया था। रामचन्द्रजी ने उसकी सहायता कर के उसे उसका राज्य दिलाया।

अब उन्हें यह सूझी कि लङ्का को जासूस भेजकर सीता का पता लेना चाहिये। सेनापति—हनुमान लङ्का भेजे गए। वहां उन्होंने देखा कि नदी के तट हर एक वृक्ष के नीचे सीता बैठी हैं। कई स्त्रियों ने उन्हें घेर रक्खा है। उनका चेहरा उदास और वह बराबर दुख की आह भरती है। इतने में वहां रावण की सवारी आई। सीता उठ खड़ी हुईं और घृणा से अपनी आँखें रावण से मोड़ लीं। रावण बोला—तू मेरी क्यों बेइज़्ज़ती करती है? मैं तुम से प्यार करता हूं! मेरा तन, मन, धन तेरे चरणों पर अर्पण है!, सीता ने आकाश की ओर हाथ उठाया और कम्पित स्वर से कहा—'राम, तुम कहाँ हो? मेरी सुध लो और इस पापी को दण्ड दो।" रावण ने सीता को समझाया, बुझाया और धमकाया पर सीता जी ने एक न सुनी। निराश होकर वह वहाँ से चला गया।

हनुमानजी धीरे धीरे सीता के पास पहुँचे। राम की अँगूठी देकर उन्होंने कहा कि मैं राम का दूत हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप को अपने साथ ले चलूँ। सीताजी ने उत्तर दिया—"इस अवस्था में मेरा यहाँ से निकल जाना बहुत मुश्किल है और दूसरे मेरी यह इच्छा है कि राम स्वयं आकर मुझे इस क़ैद से छुड़ायें। क्योंकि राम के लिये यह

अपमान जनक था कि कोई दूसरा सीता को छुड़ाए। हनुमानजी ने वापस लौटकर रामजी को सीताजी का सारा हाल सुनाया।

राम और लक्ष्मण ने सुग्रीव की सेना लेकर लङ्का पर चढ़ाई की। सेना के आने का समाचार सुन रावण बहुत घबराया। किन्तु सीताजी की मोह उसके अन्दर से न गया। बहुत सोच विचार के बाद उसे एक बात सूझी। उस ने राम का नकली धड़ बनवाया, और सीता के पास जा कर कहने लगा—'देख' अब वक्त आ गया है, तुझे अपनी मूर्खता का फल भोगना पड़ेगा। मैंने तेरे लिये कितनी ही मुसीबतें झेली हैं। राम ने तुम्हारे साथ क्या भला किया है, जो तू उसके वास्ते दुःखी होती है और विलाप करती है। अब भी मेरा कहना मान ले।' सीता भयभीत हो कर ज़ोरसे चिल्लाने लगीं—"राम, क्या आप मुझे इस पापी के बन्धन से मुक्त न कराओगे?" रावण ने कहा—"यह विचार तू अपने मन से निकाल दे; राम तो मर गया है!" सीता इस बात को सुनकर अभी व्याकुल ही हो रही थीं कि लङ्कापति ने कहा—'राम सेना लेकर यहाँ आया था। पर मेरे सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया और उस का वध कर डाला। देख यह उसका सिर है और यह उसका धनुष है, जो मेरे सिपाही रणक्षेत्र से उठा कर लाये हैं।' यह देखते ही सीताजी ने एक चीख मारी और बेहोश ज़मीन पर गिर पड़ीं। निराश होकर रावण वापस चला गया। रावण की स्त्रियों में से एक ने सीता को उठा लिया, उसके मुख पर पानी छिड़का और कान में कहा—"यह सब धोखा था, राम अभी जीवित हैं, और लङ्का में आने वाले हैं।" बस तब क्या था, ये शब्द सुनते ही सीता उठ खड़ी हुईं।

एक गिद्ध मिला उसने उन्हें बताया कि "रावण एक सुन्दर स्त्री को ज़बरदस्ती उठाये ले जा रहा था। रावण से उस सुंदरी को छुड़ाने के प्रयत्न में मेरी यह दशा हुई है"। और आगे बढ़े तो राजा सुग्रीव से भेंट हुई। सुग्रीव अपने भाई से तंग आ गया था। रामचन्द्रजी ने उसकी सहायता कर के उसे उसका राज्य दिलाया।

अब उन्हें यह सूझी कि लङ्का को जासूस भेजकर सीता का पता लेना चाहिये। सेनापति—हनुमान लङ्का भेजे गए। वहां उन्होंने देखा कि नदी के तट पर एक वृक्ष के नीचे सीता बैठी हैं। कई स्त्रियों ने उन्हें घेर रक्खा है। उनका चेहरा उदास और वह बराबर दुख की आह भरती है। इतने में वहां रावण की सवारी आई। सीता उठ खड़ी हुईं और घृणा से अपनी आँखें रावण से मोड़ लीं। रावण बोला—"तू मेरी क्यों बेइज़्ज़ती करती है? मैं तुम से प्यार करता हूं! मेरा तन, मन, धन तेरे चरणों पर अर्पण है!, सीता ने आकाश की ओर हाथ उठाया और कम्पित स्वर से कहा—'राम, तुम कहाँ हो? मेरी सुध लो और इस पापी को दण्ड दो।" रावण ने सीता को समझाया, बुझाया और धमकाया पर सीता जी ने एक न सुनी। निराश होकर वह वहाँ से चला गया।

हनुमानजी धीरे धीरे सीता के पास पहुँचे। राम की अँगूठी देकर उन्होंने कहा कि मैं राम का दूत हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप को अपने साथ ले चलूं। सीताजी ने उत्तर दिया—'इस अवस्था में मेरा यहाँ से निकल जाना बहुत मुश्किल है और दूसरे मेरी यह इच्छा है कि राम स्वयं आकर मुझे इस क़ैद से छुड़ायें। क्योंकि राम के लिये यह

अपमान जनक था कि कोई दूसरा सीता को छुड़ाए। हनुमानजी ने वापस लौटकर रामजी को सीताजी का सारा हाल सुनाया।

राम और लक्ष्मण ने सुग्रीव की सेना लेकर लङ्का पर चढ़ाई की। सेना के आने का समाचार सुन रावण बहुत घबराया। किन्तु सीताजी की मोह उसके अन्दर से न गया। बहुत सोच विचार के बाद उसे एक बात सूझी। उस ने राम का नक़ली धड़ बनवाया, और सीता के पास जा कर कहने लगा—'देख' अब वक़्त आ गया है, तुझे अपनी मूर्खता का फल भोगना पड़ेगा। मैंने तेरे लिये कितनी ही मुसीबतें झेली हैं। राम ने तुम्हारे साथ क्या भला किया है, जो तू उसके वास्ते दुःखी होती है और विलाप करती है। अब भी मेरा कहना मान ले।' सीता भय-भीत हो कर ज़ोरसे चिल्लाने लगीं—"राम, क्या आप मुझे इस पापी के बन्धन से मुक्त न कराओगे।" रावण ने कहा—"यह विचार तू अपने मन से निकाल दे; राम तो मर गया है!" सीता इस बात को सुनकर अभी व्याकुल ही हो रही थीं कि लङ्कापति ने कहा—'राम सेना लेकर यहाँ आया था। पर मेरे सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया और उस का वध कर डाला। देख यह उसका सिर है और यह उसका धनुष है, जो मेरे सिपाही रणक्षेत्र से उठा कर लाये हैं।' यह देखते ही सीताजी ने एक चीख मारी और बेहोश ज़मीन पर गिर पड़ीं। निराश होकर रावण वापस चला गया। रावण की स्त्रियों में से एक ने सीता को उठा लिया, उसके मुख पर पानी छिड़का और कान में कहा—"यह सब धोखा था, राम अभी जीवित हैं, और लङ्का में आने वाले हैं।" बस तब क्या था, ये शब्द सुनते ही सीता उठ खड़ी हुईं।

इस के बाद राम और रावण में कई दिन तक युद्ध होता रहा। रावण और उस के सिपाही बड़ी बहादुरी से लड़ते रहे। किन्तु रामजी के आगे उस की एक न चली। एक एक करके उस के सभी सेनापति मारे जाने लगे। जिस दिन रावण मारा गया, राम की आज्ञा से उस के भाई विभीषण को राजगद्दी पर बिठाया गया। शहर में घोषणा की गई कि यह चढ़ाई केवल पापी रावण को दण्ड देने के लिये की गई थी। प्रजा को अपनी स्वाधीनता की कद्र करते हुये अपना रहन-सहन पूर्ववत रखना चाहिये।

सीताजी को विमान पर बिठाकर राम अयोध्या आये। भरत, शत्रुघ्न और सब रानियाँ उनको देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं। राम अयोध्या के सिंहासन पर विराजमान हुये। सीता सुख से जीवन व्यतीत करने लगी। उन के दो बेटे लव और कुश उत्पन्न हुये।
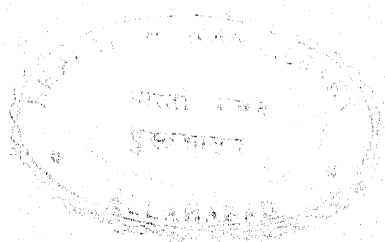
द्रौपदी और कृष्ण

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

द्रौपदी ।

जो दशा सीता का रामायण में है वह द्रौपदी का महाभारत में है । द्रौपदी महाभारत के केन्द्र के समान है, जिस के गिर्द सारी कथा घूमती है सब से पहले द्रौपदी के दर्शन स्वयंवर में होते हैं । द्रुपद राजा की पुत्री जब युवावस्था को प्राप्त हुई तब उस ने बड़ा भारी स्वयंवर रचा । देश देशान्तरों के राजा द्रौपदी के सौन्दर्य्य की चर्चा सुन चुके थे । इस लिये अपना अपना बल दिखाने के लिए सब स्वयंवर में एकत्रित हुए । इस स्वयंवर में पाँचों भाई भी आ मौजूद हुये । इन्होंने ब्राह्मणों का वेष धारण किये हुए थे ।

धृतराष्ट्र के पुत्रों में दुर्योधन सब से बड़ा था । ये सब कुरु कहलाते थे । युधिष्ठिर और उसके चार भाई अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव धृतराष्ट्र के बड़े भाई पाण्डु के बेटे थे । इसी कारण उन्हें पाण्डव कहा जाता है । पाण्डु हस्तिनापुर के राजा थे और उन की मृत्यु के बाद राज्य का अधिकार उसके बड़े बेटे युधिष्ठिर का था । उनका चचा धृतराष्ट्र राज्य के संरक्षक बन गये । उनके मन में यह कामना उठी कि राज्य उनके बेटे दुर्योधन को मिल जाय । दुर्योधन बचपन से ही युधिष्ठिर आदि से जलता रहता था । धृतराष्ट्र ने इन सब की शिक्षा के लिये द्रोणाचार्य को नियत किया था । शिक्षा पाते हुये

पाण्डवों में से भीम शारीरिक बल में अर्जुन तीरन्दाज़ी में अद्वितीय बन गये। इस से दुर्योधन की ईर्ष्या इतनी बढ़ी कि वह पाण्डव भाइयों को देख न सकता था। उस ने कई उपाय किये, जिनसे उन्हें जान से मरवा डाले। अन्त में उस ने कुन्ती और उसके पुत्रों के रहने को एक लाह का महल तैयार करवाया। उस ने ऐसा प्रबन्ध किया कि जब वे उस महल में प्रवेश करें तब आग लगा दी जाय। पाण्डवों को इस बात का पता लग गया। उन्होंने ज़मीन में से बाहर जाने का एक रास्ता बना लिया। महल में आग लगा दी गई। पाण्डव बाहर निकल गये। वे भेष बदले हुए फिर रहे थे कि उन्हें स्वयंवर की ख़बर मिली वे वहाँ पहुँचे।

स्वयम्बर की शर्तें पूरा करना एक कठिन परीक्षा थी। भूमि पर पानी का एक हौज़ था, जिस के बीच में बाँस पर एकचक्र घूम रहा था। इसके चक्र से एक बनावटी मछली लगी थी, जिस की छाया पानी में पड़ती थी। छाया को देख कर नीचे से मछली की आँख में निशाना लगाना था। यही शर्त थी। कई क्षत्रिय मैदान में निकले परन्तु कोई निशाना न मार सका। अन्त में कर्ण धनुषबाण हाथ में लिये मैदान में निकला। कर्ण सूत का लड़का है, द्रौपदी को इशारे से यह मालूम हो गया। उसने ऊँचे स्वर से कहा—'तुम शर्त को न अज़माना; मैं सूत-पुत्र के साथ ब्याह न करूँगी' कर्ण अपना सा मुँह लेकर वापस चला गया। इतने में ब्राह्मण भेषधारी अर्जुन सभा में से निकले। उन्होंने इस खूबीसे तीर चलाया कि वह मछली की आँख में जा लगी। सब तरफ़ से 'वाह' 'वाह' की ध्वनि उठी। द्रौपदी ने फूलों की माला अर्जुन के गले में डाल दी।

जब क्षत्रिय राजाओं ने देखा कि एक ब्राह्मण द्रौपदीको जीत लेगया है तब उन्हे इससे कुछ दुःख सा हुआ और उनमें से कुछ पाण्डव भाइयों के साथ लड़ने को तैयार होगये । कृष्ण भी स्वयंवर में उपस्थित थे। यद्यपि इन्होंने पाण्डवों के जलने का समाचार सुन लिया था, तो भी उन पाँचों को अपनी माता समेत देखकर वे उन्हें पहिचान गये और समझ लिया कि पाण्डव अभी ज़िन्दा हैं। वे उनकी सहायता को जा पहुँचे और झगड़ा करने वाले क्षत्रियों को पीछे हटा दिया। तत्पश्चात् उनसे पहली बार मिल कर कृष्ण ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। कृष्ण द्रौपदी को इनके साथ लेकर हस्तिनापुर आये और धृतराष्ट्र से पाण्डवों को आधा भाग दिलाकर यह निश्चय किया कि पाण्डव अपने लिये एक नई राजधानी क़ायम कर लें । इन्द्रप्रस्थ शहर बसाकर पाण्डवों ने इसे अपनी राजधानी बनाया और वहाँ आनन्द से रहने लगे ।

दूसरी बार द्रौपदी हमारे सामने उस समय आती है जब कि दुर्योधन पाण्डवों के नये बनाये हुये महलों के देखने के लिये आया। इनको ऐसी कारीगरी से बनाया गया था कि साधारण मनुष्य धोखे में पड़ जाता था । एक जगह पर बालू इस ढंग से डाली गयी थी कि आते हुये दुर्योधन को अपने सामने पानी दिखाई दिया और उसने अपने कपड़ों को ऊँचा कर लिया । आगे चलकर एक जगह पानी था । दुर्योधन उसे बालू जान कर उसके अन्दर चला गया और अपने सब कपड़े भिगो लिये । द्रोपदी खड़ी हुई सब देख रही थी । उसने खिल्ली उड़ाई । दुर्योधन ने इस बे-इज़्ज़ती को अपने दिल में रख लिया।

ऐसा मालूम होता है कि उस समय क्षत्रियों में जूआ खेलने का रिवाज था और जब एक क्षत्रिय को बाज़ी लगाने के लिये निमन्त्रण दिया जाता था तब उसे मंजूर न करना उसकी हार मानी जाती थी। दुर्योधन ने अपने मामा शकुनी की सलाह से युधिष्ठिर को पासा खेलने के लिये निमंत्रित किया। युधिष्ठिर ने उसे मंजूर कर लिया। पासा कपट का बनाया गया था। इसलिये शनैः शनैः युधिष्ठिर सब कुछ हारता गया। यहाँ तक कि अपना सब माल-असबाब और राजधानी भी हार दी। तब अपने आप को और अपने भाइयों को बाज़ी पर लगाया। वह बाज़ी भी हार दी। तत्पश्चात् द्रौपदी को बाज़ी पर लगाया, उसे भी हार गये।

अब तीसरी बार हम द्रौपदी को दुर्योधन की सभा में आते हुये देखते हैं। दुर्योधन का भाई दुःशासन द्रौपदी को केशों से खींचते हुये सभा में लाता है। भीष्म द्रोणाचार्य आदि सब सभा में उपस्थित हैं। द्रौपदी 'हा कृष्ण' 'हा कृष्ण' ये शब्द मुँह से निकालती है। उस ने सभा से यह प्रश्न किया कि "जब युधिष्ठिर अपने को पहले हार चुके हैं तब वह दूसरे के अधीन हो गये हैं। इसलिये उन्हें फिर खेलने और मुझे बाज़ी पर लगाने का कोई अधिकार नहीं रहता"। द्रौपदी की युक्ति इतनी प्रबल थी कि सब चुप होगये और कोई उत्तर न दे सका। भीष्म ने सिर्फ यही कहा कि धर्म का समझना बड़ा कठिन है। अकेले विकर्ण ने कहा कि युधिष्ठिर पहले अपने आप को आप को दाँव पर लगाकर हार चुके थे, इसलिये द्रौपदी स्वतन्त्र समझी जानी चाहिये। द्रौपदी बोली 'पहला स्वयंवर का समय था जब मैं सभा में खड़ी हुई

थो, सब की आँख मुझ पर लगी थी। अब यह दूसरी बार है जब कि भरी सभा में मेरी यह दुर्दशा हो रही है। सब लोग देखते हैं पर मेरा कोई सुननेवाला नहीं। धृतराष्ट्र ने कहा—'यदि युधिष्ठिर कह दें कि तू स्वतंत्र है तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा।' युधिष्ठिर शर्म के मारे आँखें नीची किये खड़े रहे। धृतराष्ट्र के हवनकुंड में से गीदड़ों के बोलने की आवाज़ आई। इस से धृतराष्ट्र इतना घबराये कि उन्होंने द्रौपदी को संतुष्ट करना चाहा, और द्रौपदी की इच्छानुसार पाण्डवों को एक बार मुक्त कर दिया। धृतराष्ट्र ने द्रौपदी से कहा—'और क्या चाहती है?' द्रौपदी ने उत्तर दिया—'मैं लोभ को पाप समझती हूँ इसलिये और कोई इच्छा नहीं रखती।'

वे सब अपनी अपनी राजधानी की ओर जा रहे थे कि दुर्योधन की छाती पर साँप लोटने लगा। वह उन्हें मुक्त न देख सकता था। दुबारा जुआ खिलाने का विचार कर के उसने युधिष्ठिर को बुलाया। युधिष्ठिर ने लौट कर दुबारा पासा खेलना शुरू किया। नतीजा फिर वही हुआ। परन्तु अब की पाण्डवों को तेरह बरस का बनवास दिया गया।

पाण्डव भाई द्रौपदी के साथ बन में रहते थे तब महाराज कृष्ण उन्हें आकर मिले। द्रौपदी कृष्ण से बोली—'मैं तुम्हारे नाम की पुकार कर रही थी, जब कि मेरा इतना अपमान किया गया। मेरे केश पकड़ कर मुझे घसीटा गया। उस समय मैं भीम के बाहुबल और अर्जुन के धनुष को धिक्कारती रही, क्योंकि वे मेरे मान की रक्षा न कर सकते थे। स्त्री के लिये एक मान ही सब से उत्तम और अमूल्य वस्तु है। दुर्योधन ने मेरे मान को नष्ट कर दिया।' इतना कह कर द्रौपदी फूट फूट

कर रोने लगी। कृष्ण बोले—'द्रौपदी, तू मत रो ! जो अत्याचार तुम तुम पर किया गया है वह अपना फल लायगा। इस बीज से एक ऐसा घोर युद्ध होगा, जिस से तुम्हारे शत्रुओं की स्त्रियाँ भी ऐसा ही रोदन करेंगी जैसा तुझे करना पड़ा है। किसी के लिये सब दिन एक जैसे नहीं होते। तुम्हारे दिन फिर लौटेंगे और तू फिर अपने पद को प्राप्त करेगी ! पाण्डवों का राज्य—चक्र फिर वैसा ही चलेगा"।

द्वैत वन में रहते हुये द्रौपदी और युधिष्ठिर एक दिन आपस में बातें करने लगे। द्रौपदी युधिष्ठिर से कहने लगी, "मेरे चित्त को कैसे शान्ति हो जब कि महलों में रहने वाले वृक्षों के तले आश्रय ढूंढ रहे हैं। न आप के शरीर पर वस्त्र है न माथे पर चन्दन। इधर आप की यह दशा है उधर दुष्ट दुर्योधन अपने महलों में आनन्द कर रहा है। आप इस कष्ट को सहन कर रहे हैं। भीम दुर्बल हो रहे हैं, अर्जुन तीर चलना भूल गये हैं। तिस पर भी आपके कानों में क्रोध का लेशमात्र भी उत्पन्न नहीं होता ? शास्त्र में कहा है जिस में क्रोध नहीं वह क्षत्री नहीं। जिस में क्रोध नहीं होता उस की कोई परवाह नहीं करता। शत्रु को क्षमा करना भारी भूल है। जिसने कभी किसी पर उपकार किया हो उसकी भूल तो क्षमा की जा सकती है ! पर जिसके स्वभाव में ही दुष्टता हो वह क्षमा का पात्र नहीं हो सकता।"

इस पर युधिष्ठिर ने द्रौपदी को क्रोध की कहानियाँ और क्षमा की उपयोगिता पर अपने विचार बताये और कहा कि अक्रोधी ही ब्राह्मण पद को प्राप्त कर सकता है। इसके उत्तर में द्रौपदी बोली—"आपका कथन कुल की रीति के अनुसार नहीं है। शास्त्र तो यह कहते हैं कि जब

कोई धर्म की रक्षा करता है तो धर्म उसकी रक्षा करता है। किन्तु आप की अवस्था तो इसके विपरीत दिखाई देती है। आपने सदैव धर्मानुसार आचरण किया, पर आपका भाग्य ऐसा मन्द निकला है कि आपने अपना सब राजपाट खो दिया है। आप पर यह आपत्ति देख कर मेरी बुद्धि विचलित हो रही है। हमारी समझ में नहीं आता कि दुनिया में क्या करना अच्छा है और क्या बुरा! आप सन्मार्ग पर आचरण करते हुये दुःखसागर में पड़े हैं और पापी दुर्योधन दुष्ट आचरण करता हुआ आनन्द से राज्य भोग रहा है। यह देख कर यही कहना पड़ता है कि परमात्मा की लीला अपरंपार है। हमारे लिये उसे जानना कठिन है।

युधिष्ठिर ने द्रौपदी से कहा धर्म पर आचरण करने का फल इस संसार सुख और भोग नहीं होते। यदि धर्म पर चलने से सांसारिक सुख प्राप्त हों तो दुनियां में सब लोग आप से आप ही धर्म पर आचरण करने लग जायँ। धर्म के मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान मुश्किल है। इसी कारण धर्म-मार्ग का उपदेश करने के लिये ऋषि, मुनि और आचार्य अपना बहुत-सा समय बिताते हैं।

फल की इच्छा से मैं धर्मकर्म नहीं करता। जो फल की इच्छा से धर्मकर्म करता है वह नीच होता। धर्म वही है, जिस की वेद में आज्ञा है। ईश्वर के लिये अन्याय के शब्द तुम अपने मुख पर कभी न लाना। जितना ईश्वर के विषय में हम जानते हैं उतना ही हम उस का न्याय देखते हैं। उसे जानना ही दुःखों से छूटना और अमृत को पाना है।"

द्रौपदी बोली—'मेरे कहने का अभिप्राय केवल यही है कि आप अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिये उद्यत हो जायँ। मनुष्य की वर्त्तमान

अवस्था उस के कर्मों का फल है। जो कर्म हम अब करेंगे उन से हमारा भविष्य बनेगा। निश्चेष्ट हो जाना और कर्म का त्याग करना मनुष्य के लिये सम्भव नहीं है। यदि आप कर्म पर तत्पर हो जायँगे तो आप के सब कष्ट दूर हो जायँगे, आप को राज्य प्राप्त होगा और आप राज्य के सब सुख भोग सकेंगे। कर्म ही सफलता का रहस्य है।"

कुछ समय के पश्चात कृष्ण की प्यारी रानी सत्यभामा भी वहाँ पर आई। उस ने द्रौपदी से एक बड़े रहस्य की बात पूछी—"हे द्रौपदी, क्या कारण है कि सब पाण्डव तुम्हारा इतना मान करते हैं!" द्रौपदी ने उत्तर दिया—सत्यभामा, तुम ने मुझ से वह बात पूछी है, जिसे स्त्रियाँ कहना पसन्द नहीं करतीं। मूर्ख स्त्री अपने पति को वश में रखने के लिये कई ढंग रचती है। इसी कारण उस का पति उस से घृणा करता है। मैंने कभी ऐसा नहीं किया। मेरे मन में ईर्ष्या नहीं है। न कभी मैं किसी से गुस्से होती हूँ। मेरे मुँह से कभी कड़वे शब्द नहीं निकलते। मैं अपना मकान साफ़ सुथरा रखती हूँ और भोजन सब से पीछे करती हूँ। मेरा चित्त सदैव उनकी सेवा में रत रहता है। और मैं सदा युधिष्ठिर की सम्मति के अनुकूल आचरण करती हूँ। जब मैं महलों में रहती थी तब हज़ारों नौकर नौकरानियाँ थीं, जिनके नाम मुझे याद रखने पड़ते थे। और हज़ारों हाथी घोड़ों का मुझे ध्यान रखना पड़ता था। अस्सी २ हज़ार अनाथों और ब्राह्मणों को मुझे भोजन कराना पड़ता था।

स्त्री के लिये पति से बढ़कर और कोई पूज्य नहीं। हे सत्यभामा, तुम भी कृष्ण को ऐसी ही प्यारी हो जाओ। कोई बात उनसे छिपा

न रक्खो। शुद्ध और पवित्र हृदया स्त्रियों के साथ तुम्हारा मेल जोल हो। सब बातों को छोड़ कर पति के सम्मान का ख्याल रक्खो।"

इस प्रकार के संवादों में द्रौपदी ने अपने वनवास का जीवन व्यतीत किया। तेरहवें वरस इसने विराट राजाके यहाँ नायन बन नौकरी की। वहाँ पर दुष्ट कीचक द्रौपदी के पीछे पड़गया। जब भीम को इस की खबर लगी तब उस ने कीचक को मार डाला। इस वर्ष के अन्त में कुरुक्षेत्र में वह महायुद्ध हुआ, जिस में भारत के बड़े बड़े योद्धा और वीर मैदान में काम आये। द्रौपदी हमारे सामने फिर उस समय आती है जब कि द्रोणाचार्य के धोखे से मारे जाने पर उसके पुत्र अश्वत्थामा के हृदय में क्रोधाग्नि प्रचण्ड होगई और उस ने रात को द्रौपदी के सब पुत्रों का कत्ल करडाला।

प्रातःकाल यह समाचार सुनते ही द्रौपदी बेहोश होगई। भीम का हृदय क्रोध से काँप उठा और उसने अश्वत्थामा के वध की ठान ली। द्रौपदी भीम से कहने लगी—हे भीम, मैंने सुना है कि अश्वत्थामा के मुकुट में एक हीरा है। उसका वध करके हीरे को महाराज युधिष्ठिर के सिर पर सजाना होगा,। भीम ने वह हीरे लाकर द्रौपदी को दिया और उसने अपने हाथ से उसे युधिष्ठिर के सिर पर रक्खा।

३—महारानी दमयन्ती

प्राचीन समय में बरार प्रान्त में विदर्भ देश था। भीम वहाँ के राजा थे। उसके धैर्य और वीरता की चारों ओर धूम मच गई थी। शत्रु लोग उनका नाम सुनकर काँपते थे, परन्तु उसकी प्रजा उसे प्राणों से अधिक प्यार करती थी। इस पृथ्वी-पति की पुत्री रूपवती और अद्वितीय सद्-गुणी थी और राजपुत्री का नाम दमयन्ती था। उसका सौन्दर्य सारे जगत् में विख्यात था। सांसारिक चित्रकार उसके अवयवों की रचना और लावण्य को देखकर उसको विधाता के हाथों से निर्मित की हुई समझते थे। वह अपने घर में माता-पिता, भाई-बन्धु सब को प्रिय थी और राज-रानी और राजपुत्रों ने उसको अपने नेत्रों का तारा बना रक्खा था। जब उसकी आयु तेरह वर्ष की हुई, राजा ने उसे दिल बहलाने के लिये सारा सामान इकट्ठा कर दिया। सौ दासियें हर एक समय उसकी सेवा के लिए खड़ी रहती थीं और हर प्रकार के भूषणों से अलंकृत की हुई दमयन्ती सखियों के बीच ऐसे शोभती थी जैसे तारों के बीच चंद्रमा। संसार में ऐसी कोई भी रूपवती नहीं थी, जैसी दमयन्ती थी और सब लोग उसको देखकर प्रसन्न होते थे।

जैसे दमयन्ती सब सुन्दरियों में सुन्दरी समझी जाती थी, वैसे ही नल वीरसेन निषध देश के राजा के पुत्र भी सब से श्रेष्ठ समझे जाते थे। नल वेद, वेदांग, शास्त्र, दर्शन, उपनिषद् ज्योतिषादि शास्त्रों में

दमयन्ती और हंस

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।
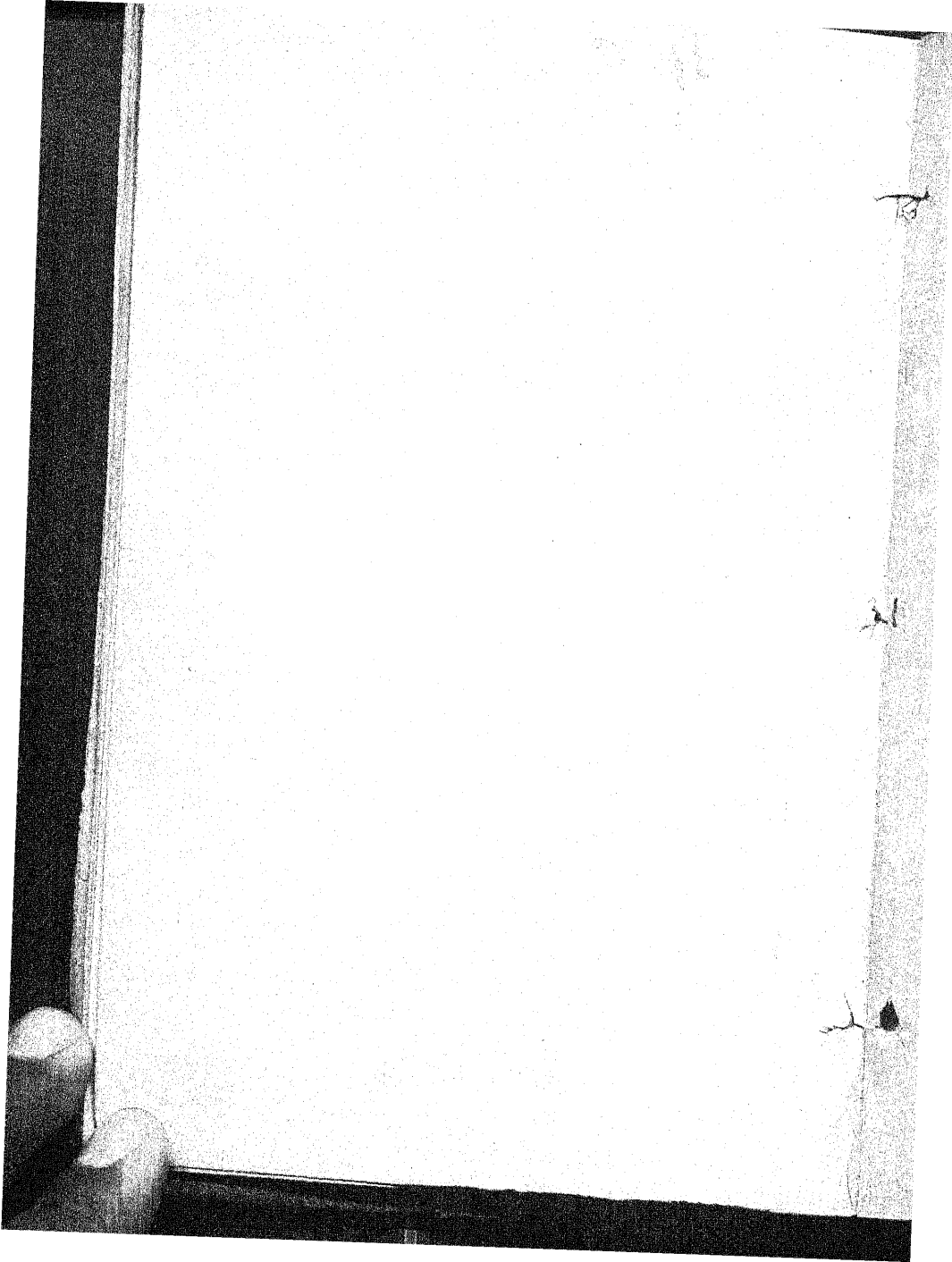
पूर्ण था और सेनाध्यक्षता में अद्वितीय था। इसमें एक दोष भी था कि वह जुआ खेला करता था। इस व्यसन के कारण उसको बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ उठानी पड़ीं। जिस समय वह अपने पिता की मृत्यु के अनन्तर राज-काज करने लगा, उस समय भी इसको जुआ खेलने का व्यसन था। दमयन्ती के अत्युत्तम रूप और नल की बुद्धिमत्ता और चातुर्य की चारों ओर चर्चा होने लगी। इन दोनों में भी एक दूसरे के गुण सुन कर आपस में बिन देखे अनुराग पैदा हो गया।

जब उनके इष्ट मित्रों को यह विदित हुआ, तो जगह जगह नल-दमयन्ती के प्रेम की बातें होने लगीं। कुछ दिनों के अनन्तर दमयन्ती की ऐसी दशा होने लगी कि उसका सन्तोष जाता रहा। जब भीम को खबर मिली कि राजपुत्री प्रायः बीमार रहती है और उसको निषध देश के राजा के आसक्ति है। उसने प्राचीन रीति के अनुसार स्वयंवर करने की अभिलाषा की क्योंकि लड़की की ओर से विवाह का सन्देह भिजवाना उस समय की प्रणाली के विरुद्ध था। जब स्वयम्बर का दिन आया, सारे देशों के राजपुत्र विदर्भ देश की राजधानी में एकत्रित हुए। भीम ने सब का आदर किया। कवि लोग लिखते हैं, कि राजाओं और राजपुत्रों की सभा पर्वतीय वन के सदृश मालूम होती थी, जिसमें इतने शेर चीते इकट्ठे हुए थे। वह सब अच्छे सुडौल थे परन्तु उनके देखने से जान पड़ता था कि उनके दिल घबराहट और चंचलता में पड़े हैं। सब नख शिख सुन्दर थे। जब दमयन्ती उस स्वयम्बर-भूमि में पधारी, तो उन सब राजाओं की दृष्टि उसकी ओर लगी। क्योंकि सब अन्तःकरण से उस सुन्दर राजपुत्री के अभिलाषी थे। परन्तु दमयन्ती ने नल को स्वीकार

किया। उसने लज्जित होते हुए और नेत्रों को नम्र किये हुए उनके गले में फूलों का हार (जयमाला) डाल दी। दैव-वश से नल का कार्य सिद्ध हो गया।

दूसरे राजपुत्र उदास होकर अपने-अपने देश को चले गये और भीम ने दूसरे दिन नल और दमयन्ती का विवाह कर दिया और विवाह के अनन्तर नई वधू अपने पति के घर गई। वहाँ चिरकाल तक उसका जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत हुआ। वह एक दूसरे को मन से चाहते थे और जहाँ दो चाहने वालों के इस तरह दिल मिलते हैं, उसको स्वर्ग-धाम या बैकुण्ठ कहते हैं। दो सुन्दर लड़के उस विवाह के फल थे। जब छोटे-छोटे पाँव से वे चलते और तुतलाती जिह्वा से बातें करते, तो माता पिता का मन प्रसन्नता से उछलने लगता। परन्तु शोक ! इस संसार का आनन्द शोक से शून्य नहीं है। शहद के छत्ते के चारों ओर डसने वाली मक्खियाँ रहती हैं और गुलाब वा कमल के सुन्दर वा कोमल पंखड़ियों के नीचे काँटा छुपा रहता है। नल में एक घृणामय व्यसन था। विवाह के अनन्तर यद्यपि उसने कुछ दिवसों तक पासों की ओर ध्यान नहीं दिया था परन्तु वह दुर्व्यसन उसके मन के परदों में चोर की तरह छिपा हुआ विद्यमान था। पुष्कर नामी उसका शत्रु रूप कपटी मित्र नल को धोखा देने की इच्छा से उसके पास आया। नल ने पहिले तो बहुत बहाने किये परन्तु कर्म-गति वा संस्कार का प्रभाव प्रबल है, वह खेलने पर उद्यत हुआ और क्षणमात्र में उसने सब कुछ खो दिया। दमयन्ती ने व्याकुल होकर उसकी ओर देखा, वज़ीरों ने इशारों और बातों से बहुत कुछ समझाया परन्तु नल पर जुए का भूत सवार था।

उसने किसी की ओर ध्यान न दिया न किसी की सुनी। दमयन्ती ने प्रधान को बुलाया, उसने कहा कि "नल राज तक हार गये। महारानी को अब इस देश में रहना उचित नहीं है। उचित यह है कि आप लड़कों को लेकर विदर्भ नगर को चली जायँ।" परन्तु दमयन्ती ने कहा—"यह कैसे हो सकता है कि मृत्यु पर्यन्त साथ रहने की शपथ करने वाली को दुःख और आपत्ति के समय अपने पति को छोड़ दे। मैं अपने स्वामी के सुख वा दुःख की भागिनी हूँ। चाहे आपद् का पर्वत गिरे, परन्तु मैं कभी उसको न छोड़ूँगी।"

राजा नल धन, जवाहरात, वस्त्र, भूषण, सोना यहाँ तक कि राज भी हार गये, उनके पास कुछ नहीं रह गया। दुष्ट पुष्कर ने हँसकर कहा—"अभी और खेलो।" अब नल ने कहा—"मेरे पास कुछ नहीं रहा।" तब पुष्कर ने मुसकराते हुये कहा—"दमयन्ती को क्यों नहीं लगाते?" नल यद्यपि द्यूत व्यसन से हारा हुआ था परन्तु ऐसे नीचपन को स्वीकार नहीं किया और उसने कहा—"नहीं।" और यह कहकर अपने घर से बाहर निकल आया। अब दीन कहाँ जावे और क्या करे? इस दुष्ट व्यसन ने उसको कहीं का न रक्खा। अपने राज्य में उसकी दशा भिक्षुक की सी हो गई। उस समय का आचार व्यवहार और ही भाँति का था, लोग बात के धनी थे, प्रतिज्ञा पूर्ण करते थे। आज कल इस तरह की हार जीत को वैसी निगाह से कभी नहीं देखते। नल ने अपनी दशा-परिवर्तन को देखकर राजकीय वस्त्र उतार दिये और एक धोती कमर में बांधकर नंगे पाँव अपने इष्ट मित्रों से विदा होकर बाहर से निकल गया। दमयन्ती ने अपने पति का अनुसरण किया।

उसने भी वस्त्र और आभूषण उतार दिये और छाया की तरह पति के साथ हुई। जो लोग दुर्व्यसनी हैं वह स्मरण रक्खें—

जूवे की बदी है आशकारा।

राजा नल राज पाट हारा॥

राजधानी से निकल कर तीन दिन तक निरंतर वह मन्दभाग्य पुरुष दमयन्ती को विदर्भ देश जाने की प्रेरणा करता रहा, परन्तु दमयन्ती ने कहा—"छाया तन से पृथक कैसे हो?" शोकातुर वा आपद्-ग्रस्त नल ने अपने हाथ से उस मार्ग का इशारा किया जो विदर्भ देश को जाता था। दमयन्ती ने डबडबाई आँखों से उसकी ओर देखा और रोकर कहा—"मैं तुम से जुदा न होऊँगी और आपत्ति के समय तुमको तसल्ली दूंगी और तुम्हारी सेवा करूँगी। परन्तु नल का दुःख उस सुकुमारांगी स्त्री के दुःखों को देखकर अधिक बढ़ता था।

तीसरी रात को दोनों प्रवासी वन में वृक्ष की छाया के नीचे ठहरे। तीन दिन से बराबर भूखे प्यासे मार्ग के श्रम से थक गये थे। दोनों पृथ्वी पर लेट रहे। दमयन्ती को नींद आ गई। नल की आँखें खुली थीं, वह बे-बसी पर चिन्ता करता था। क्या था, क्या हो गया? राज पाट छूटा, सुहृद मित्र अलग हो गये। घातक घनघोर पशुमय बनों में रहने की जगह मिली। यह सब कुछ हुआ, वह इससे भी अधिक आपत्ति सह सकता था, परन्तु दमयन्ती का दुःख उसको बहुत कष्ट देता था। उसने मन में सोचा, यदि मैं इसको छोड़कर चला जाऊँ, तो यह आपही अपने पति के घर की ओर चली जावेगी और वहाँ आनन्द से रहेगी। रात अँधेरी थी; आपद्-ग्रसित नल ने चिथड़े लपेटे हुए महारानी की ओर

देखा आँखों से अश्रुपात होने लगा। उसने सोचा, दमयन्ती को छोड़कर चला जाना सुगम है। परन्तु जब वह चलने के लिये उठा खड़ा हुआ, तो उसका पाँव आगे नहीं बढ़ता था। निरपराध दमयन्ती के ख्याल ने और उसकी पहिली प्रीति के स्मरण ने मन तो तड़पा दिया और नल का पाँव थोड़ी देर के लिये ज़मीन पर जम गया। परन्तु बे-सुध राजा ने अन्त में उस बेचारी को उभरने का समय नहीं दिया और चिरकाल अश्रुपात के अनन्तर उसने अपने हृदय पर वज्र का पत्थर धर लिया और वह चुपके से एक ओर चला गया।

प्रातःकाल दमयन्ती ने आँखें खोलीं। और आश्चर्य के स्वप्न ने उसको निद्रा में भी विस्मित कर रक्खा था। उस ने करवट बदली ताकि नल से अपने स्वप्न का फल पूछे। नल दिखाई नहीं दिया। दमयन्ती ज़ोर से चीख़ उठी। उसको असली बात की ख़बर हो गई और क्षणांतर में शोक से बेसुध हो वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। जब सुध आई वह चिल्लाने लगी—"हा प्राणपति! मैंने क्या अपराध किया! तुमने मुझे क्यों त्याग दिया? इस निर्जन वन में मेरा कौन है? राजन्! मैं कैसे समझूं तुम मुझको छोड़कर चले गये। यह बात असम्भव है। तुम वृक्षों की आड़ में छिपे हो। अधिक परीक्षा न कीजिये, शीघ्र आइये और अपनी रोती हुई दमयन्ती को धैर्य दीजिये। अजी, आप क्यों नहीं उत्तर देते? आपमें ऐसी निर्दयता कहाँ से आगई। प्राणपति, आकर मुझे ढाढ़स दो।" परन्तु नल नहीं आया दमयन्ती पर शोक का पर्वत गिर पड़ा। वह इधर उधर वृक्षों की आड़ में ढूँढ़ने लगी। दूसरी बार वैसे ही बे-सुध हो गई। होश

आने पर फिर वैसे ही चीख़ने वा चिल्लाने लगी। पास ही वृक्ष के खोखले में एक बड़ा भारी अजगर सर्प था। उसने दुखिया की आवाज़ सुनी और पीछे से आकर वह उसकी गर्दन में लिपट गया। दमयन्ती ने सोचा, अन्तिम समय आ गया। शोक और निराशा ने उसके चिल्लाने की ध्वनि को दूना कर दिया। तीसरी बार वह बड़े ज़ोर से चिल्लाई—"राजन् शीघ्र आकर बचाओ, नहीं तो क्षण भर में काम हो जायेगा।" परन्तु नल कहाँ था जो आता। वह तो उस समय कोसों दूर था। जीवन के कुछ दिन शेष थे, एक बहेलिया शिकार की तलाश में फिर रहा था। उसने ज़ोर से पुकारने को सुना और उसी समय वहाँ आकर उसने साँप को ललकारा। दुष्ट साँप उसकी ओर लपका। शिकारी के हाथ में तेज़ कटार थी ज्योंही साँप ने अपने डंक को उसके शरीर पर चुभाया, शिकारी की कटार उसके सिर पर पड़ी। दोनों एक साथ भूमि पर गिरे। इसके अनन्तर रानी अपने पति की तलाश में निकली। उसने कहा—"या तो उसका पता मिलेगा या इस वन में उसका नाम ले लेकर मर जाऊँगी।" पास ही एक ऋषियों का आश्रम था, जहाँ भाँति-भाँति के वृक्ष लगे हुए थे और स्थान रमणीक और दर्शनीय था। रानी उसी ओर चली। वहाँ कई साधु वृक्षों की छाल ओढ़े तपस्या में मग्न थे। वे तपस्वी सांसारिक सुखों को त्याग और जितेन्द्रिय परमात्मा के ध्यान में ऐसे लीन थे कि जीते जी मानो मर चुके थे। उसका जीवन मृत्यु का जीवन था और वे अपने विचार में दृढ़ प्रतिज्ञ और ध्यानावस्थित निर्जन वन को स्वर्गधाम बनाये बैठे थे।

रोती हुई दमयन्ती उनके पाँव पर गिरी और हिचकी ले-लेकर अपने शोक की कहानी सुनाने लगी। साधुओं ने दया से कहा—"हे पुत्री, तेरी आपत्ति की कथा हमको विदित है। इस वन में रह कर भी हम अनभिज्ञ नहीं रहते कि नगर में क्या हो रहा है? धैर्य कर कर्मों की अगाध गति को कोई नहीं रोक सकता। जब समय आवेगा, तब नल तुझको मिलेगा। तेरे मित्र प्रसन्न और शत्रु लज्जित होंगे। परमात्मा तुझ पर कृपा की दृष्टि करेंगे। और हे रानी! राजाओं का वंश तेरे उदर से उत्पन्न होकर तुझे आदर से स्मरण करेगा और बिगड़े हुए पुरुषों को धर्म्म की शिक्षा के लिये तेरा चरित्र उपदेश करेगा और नल-दमयन्ती की कथा हर एक समय में लोग आनन्द से श्रवण करेंगे।" रानी इन धैर्य्य-प्रद वचनों से प्रसन्न हुई, परन्तु उसने साधुओं से यह पूछा कि नल कब लौट कर आवेगा। कई घण्टे तक वह साधुओं के आश्रम की अतिथि बनी रही, वहाँ से निकल कर नल की तलाश में निर्जन वन में चक्कर लगाने लगी। इस व्यर्थ के घूमने में उसने बहुत से सुन्दर-सुन्दर वृक्ष और रमणीक स्थान मनोहर्षित, आनन्द-दायक पर्वत और अति निर्मल स्रोत देखे, परन्तु माया को लुभानेवाली आनंदप्रद वस्तुओं में अब उसके मन को आकर्षण करने की शक्ति नहीं रही थी। वह वन वन में घूमती हुई अपने पति की तलाश करती थी और उसका नाम ले-लेकर पुकारती थी।

चलते-चलते राजपुत्री एक सौदागरों की टोली के पास को चली जो दरिया के किनारे डेरा लगा कर बैठी थी और जब चीथड़े पहने हुए दुबली पतली दमयन्ती जिसके शरीर पर धूल और मिट्टी जमी हुई

थी, पास आई और उस समुदाय के निकट पहुँची, तो बहुत से पुरुष उस वन मालिनी स्त्री को देख कर भयभीत हो गये। कोई चिल्ला उठे बहुतों को भय हुआ, कोई हँसने और क्रूर दृष्टि से देखने लगे। सौदागरों में दो चार पुरुष ऐसे भी थे जिनके हृदय में दया थी। वह पास आकर पूछने लगे—"आपद्-ग्रस्त ! तू कौन है ? और इस भयानक वन में किसकी तलाश कर रही है ? राजपुत्री ने उत्तर दिया—"हे सौदागरों के सरदार ! हे सज्जन पुरुषों ! मैं राजपुत्री हूँ, राजा की वधू और राजा की स्त्री हूँ और मेरे पति पर अकस्मात् आपत्ति आ पड़ी है। उनको बन-वास दिया गया, वह घबरा कर मुझे छोड़ गये, मैं उनकी तलाश कर रही हूँ।" सौदागरों के सरदार ने कहा—"हे सुन्दरि राजकुमारी ! हम सब लोग सुबाहु सत्यवादी के राज्य की ओर जा रहे हैं। तू हमारे साथ चल, न जाने उसका पता मिल जाय।" दमयन्ती आशा का सहारा पाकर उसके साथ हुई कई दिन तक आनन्द से वह टोली चलती रही, परन्तु जब वह अपनी यात्रा की अन्तिम मंज़िल पर पहुँचे, तो एक अचानक आपत्ति आ पड़ी। दिन की थकान से थकित होकर उन्होंने एक झील के किनारे डेरा लगाया यह स्थान किसी पर्वत के पास था जिसमें बहुत से जंगली हाथी रहते थे। वह पालतू हाथियों को देखकर उनको मारने की इच्छा से उद्यत हुए प्रकृति नियम में यह विचित्र बात देखने में आती है, कि जब कोई जन्तु अपनी असली अवस्था से गिर जाता है या पुरुष उस पर अपना प्रभाव डाल देता है, तो वे जो असली स्वाभाविक दशा पर हैं ऐसे गिरे हुओं से न केवल घृणा ही करते हैं वरन् उनको मार डालते

हैं। यह बात थोड़ी बहुत पशु पक्षी आदि जीवों में भी दिख-
लाई देगी।

बहुत से सौदागर भय से भाग गये। बहुत से लोग हाथियों के
दाँतों से मरे। कोई पैरों से कुचले गये। हाथी और घोड़ों की भी बड़ी
दशा हुई।

दमयंती अन्य पुरुषों की तरह भयभीत हो घबराकर भाग निकली
और पहाड़ की एक गुफ़ा में छुप कर अपने प्राण बचाये। वह एक
कोने में छिपी हुई थी, बाक़ी और लोग भी उसके समीप छिपे हुए
थे। जब उस स्थान में जाकर उनको हाथियों के पीछे से निश्चिन्तता
हुई तो एक पुरुष कहने लगा—"यह अपने कर्म का फल है, पुरुष के
दिन जब बुरे आते हैं, तब इस तरह की आपत्तियें सिर पर आ
पड़ती हैं।"

दूसरे इसके उत्तर में कहने लगे—"नहीं-नहीं, हमने कोई
भी ऐसा बुरा काम नहीं किया है, जिसका दण्ड हो। असल
बात यह है कि जब से यह उत्तम स्त्री हमारी टोली के संग आई है,
तब ही से एक न एक आपत्ति आने लगी है। थोड़ा ठहरो, समय पर
इसको पकड़ कर इसी जगह काट दो ताकि और आपत्तियों से शांति हो
और इसके शरीर को दबाकर इसके ऊपर मिट्टी, पत्थर और घास
डाल दो।"

दमयन्ती ने इस बात को सुन लिया और जब सब मनुष्य सो
गये तो वह भय के कारण वहाँ से भी भाग गई, और अपने भाग्य की
निंदा करने लगी— "शोक! मैं कैसी अभागिन हूँ, जहाँ जाती हूँ वहाँ

ही कुछ की कुछ आपत्ति आती है। यह केवल मेरे भाग्य का ही प्रभाव है कि जो स्वामी पर आपत्ति आई। लड़के वाले सब छूट गये।"

इस तरह के विचारों से हैरान होकर वह उसी राह की ओर चली जिधर का पता सौदागरों ने बता रक्खा था। कुछ दिनों के अनन्तर वह महाराज सुबाहु की राजधानी में पहुँची। जब शहर के लोगों ने देखा कि वह चिथड़े लपेटे हुए है और उसके शरीर की हड्डियाँ दिखाई दे रही हैं। बाल बिखरे हुये, मुख पर धूल और मिट्टी लगी हुई है, लोगों ने उसको सौदायी समझा। लड़के उसके पीछे-पीछे राजा के महल तक गये, जिधर वह निर्भयता से चली जारही थी।

अन्तःपुर से सुबाहु की माता ने उस अद्भुत स्त्री को देखा। वह बड़ी साध्वी और दयालु थी। उसने अपनी दासी से कहा—"इस स्त्री को अन्दर बुला ले।" सुबाहु की रानी उसकी कथा को सुनकर काँप उठी और उसके नैनों से अश्रुधारा बहने लगी। जब दमयन्ती ने उससे अपना हाल कह सुनाया, तब वह राजा के पास चली और उस दमयन्ती को अपने पास रखने की आज्ञा माँगी। सुबाहु ने मान लिया। थोड़े ही दिनों में दमयन्ती के रंग रूप में भेद आ गया। परन्तु पति के वियोग से वह मन ही मन कुढ़ती रहती थी।

जब भीम ने अपनी बेटी का हाल सुना, उसने आदमी भेजकर उसको विदर्भ नगरी में बुला लिया, और वहाँ उसके बच्चे भी मँगवा लिये। यद्यपि पिता के घर में लड़कों को पाकर वह कुछ प्रसन्न हुई, परन्तु नल के विरह से पीड़ित रहती थी वहाँ से उसने अनेक देशों में दूतों को भेजा जो कि उसका पता लगावें।

अब नल का वृतांत सुनिये। दमयन्ती से अलग होने पर वह बहुत दिनों तक गहवर वन में घूमता फिरता रहा और अनेक प्रकार की आपत्तियें जो उसके ऊपर पड़ती रहीं, सब बेचारे ने सहीं।

निदान इसी तरह घूमता फिरता वह अयोध्या नगरी में पहुँचा जो उस समय हिन्दुस्तान के बड़े शहरों में मुख्य थी। नल सारथी-पन और अश्व-विद्या में बड़ा चतुर था, वहाँ उसने वेष बदल कर राजा ऋतु-पर्ण की नौकरी कर ली। क्योंकि वह बड़ा बुद्धिमान और गुणग्राही और भद्र पुरुष था। ऋतुपर्ण ने उसको अपने यहां नौकरी का अधिकार दिया अयोध्या के दरबारमें पासा खेलने के विषय में उन चालाकियों से लोगों को परिचित किया, जिनसे द्यूत खेलने वाले भोले भाले पुरुषों को धोखा देते हैं।

जुआ खेलना राजपूतों में हमेशा से चला आता है। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि यह बड़ा दुष्ट और बुरा प्रचार है, परन्तु मनुस्मृति आदि शास्त्रों में इसका वर्णन आता है।

दमयन्ती के दूत ने सब जगह नल को तलाश किया परन्तु कहीं पता न लगा। निदान जब वह अयोध्या में पहुँचा तो सारथी के कर्तव्य को सुनकर उसे संशय हुआ, कि हो न हो इस वेष में नल छुपा हुआ है। उसने बहुत से उपाय किये कि किसी भांति पूरा पूरा पता लगे, परन्तु नल ने अपने आप का प्रकट होने नहीं दिया जब दमयन्ती ने उसके वचन सुने कि नल अयोध्या में है, तो उसने मस्तिष्क से सोचकर एक अत्युत्तम उपाय निकाला। उसने अयोध्या के राजा को कहला भेजा कि "नल मर गया है, अब दमयन्ती दूसरा स्वयम्बर करने वाली है,

इसलिये आपको अमुक तिथि पर आना चाहिये ।" दमयन्ती ने समझा नल इस वृत्तांत को सुन कर अवश्य आवेगा और अपने आपको प्रकट किये बिना नहीं रहेगा ।

जब अयोध्या के राजा ने यह वार्ता सुनी, वह मन में बड़ा प्रसन्न हुआ, क्योंकि दमयन्ती के सौन्दर्य्य ने उस पर बहुत गूढ़ प्रभाव उत्पन्न कर रक्खा था । समय बहुत थोड़ा शेष था उसने नल से प्रार्थना की—"किसी प्रकार विदर्भ देश में जल्द पहुँचा दो ।" नल ने दमयन्ती के स्वयम्बर की ख़बर सुनी उसकी दृष्टि में संसार अँधेरा छा हो गया ! क्योंकि उसकी आशा का यही एक आश्रम था, जिसमें कुछ प्रकाश की झलक शेष थी । उसने समझा था कि छाया अपने तन से अलग नहीं होती, परन्तु इस ख़बर के सुनते ही उसकी वाणी से यह शोकमय वचन निकले कि—"किसी का कब बुरे दिन में कोई साथ देता है, अँधेरी रात में छाया भी पुरुष से दूर होती है । दमयन्ती क्या जाने विक्षिप्त हो गई । कृतघ्नता स्त्रियों का स्वभाव है । मैंने भी तो उसके साथ बड़ा अन्याय किया है । सम्भव है कि यह मेरे अपराध का उचित दण्ड हो परन्तु नहीं दमयन्ती को फिर भी ऐसा नहीं करना चाहिये था ।"

इस तरह राजा नल अपने मन में चिरकाल तक सोचता विचारता रहा और कभी दमयन्ती को और कभी अपने को दोष लगाता रहा । दूसरे दिन सूर्य के निकलते ही नल ने अयोध्या के महाराज को रथ पर बैठाया और हृदय में संतोष मारकर उसी ओर चल दिया । दमयन्ती छत पर बैठी हुई प्रतिदिन उसके आने की प्रतीक्षा किया करती थी ।

एक दिन उसने घोड़े के आने की खबर सुनी और समझा—आज प्राण पति आवेंगे और मुझे उनका दर्शन मिलेगा ।"

केवल दमयन्ती की माता को इस बात का पता था, कि भीम को भी इस स्वयंवर के वास्तविक अभिप्राय का पता नहीं था जब अयोध्या का राजा उसके यहाँ पहुँचा, उसको बड़ा आश्चर्य हुआ और अवध-नरेश भी चकित हुये क्योंकि वहाँ स्वयंवर का कोई भी सामान दिखाई नहीं देता था । हाँ भारतीय व्यवहार की मर्य्यादानुसार दोनों में से किसी ने भी असल वृत्तान्त के विषय में प्रश्न नहीं किया । तथापि अवध-नरेश का भीम ने आतिथ्य स्वीकार किया । दमयन्ती का यह ख्याल नहीं था कि नल इस स्वयंम्बर के सुनने से दुःखी होगा । क्योंकि यह एक उपाय था जिससे नल अपने आपको प्रकट करता ।

परन्तु उसका विचार ठीक नहीं था । जब उसने नल को चुप चाप ही देखा तो वह मन में चिंतातुर और दुखी हुई । उसने चतुर दासियों को नियत किया कि उसकी चेष्टा की क्षण-क्षण में खबर पहुचाई जावे जिससे विदित हो कि यह पुरुष नल है या नहीं ! यह दासियाँ कभी-कभी नल से इधर उधर की बातें किया करती थीं । एक दिन दासी ने नल की कृतघ्नता का वृतांत सुनाया और इस तरह नल की बेपरवाही और असावधानी की बात करके पूछा—"क्या कभी तुम ने ऐसा पुरुष देखा है ?" सारथी ने कुछ उत्तर नहीं दिया वरंच वृतांत के विषय में बहुत मनोहर बातें प्रकट कीं ।

दमयन्ती ने इन कथाओं पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया उसने दासियों से कहा—"मेरे लड़कों को ले जाकर रथवान को दिखाओ और

उनके गुण वर्णन करो।" रानी ने सोचा यदि यह सारथी वास्तव में नल है तो लड़कों को देखकर उसका हृदय आर्द्र होगा और वह फिर अपने आपको न छुपा सकेगा और ऐसा ही हुआ। जब दासी राजपुत्रों को नल के पास ले गई, उसने उनको गोद में ले लिया और पहँचान कर रोने लगे। फिर धैर्य धारण करके दासी की ओर देखकर कहने लगे—"इन लड़कों को देख मुझे अपने बच्चे स्मरण आ गये हैं, जिनसे मैं चिरकाल से अलग हुआ हूँ। इनको ले जाओ क्योंकि मुझे अपने निज पुत्रों का स्मरण आता है।"

दासी ने सारा वृतांत दमयन्ती से जाकर कहा। अब रानी को निश्चय हो गया कि यह मेरे ही स्वामी और प्राणपति हैं। उसने अपनी माता से आज्ञा लेकर नल से मिलना चाहा। परन्तु ईर्षा की अग्नि से झुलसा हुये नल अब भी अपने आपको प्रकट करना नहीं चाहते थे। जब दमयन्ती ने आँखों से आँसू बहाकर कहा कि स्वयम्बर के बहाने से उसकी तलाश का प्रयोजन था, तब नल अपने धैर्य को सँभाल न सके और दोनों स्त्री-भर्ता गले मिलकर रोये और अपने-अपने आपत्तियों का वृतांत सुनाया, अयोध्या का राजा नल के वृतांत को जान कर प्रसन्न हुआ। चिरकाल तक नल वा दमयन्ती विदर्भ नगरी में रहे। फिर सेना लेकर निषध देश की ओर चले। उसके साथ सोलह हाथी, पचास घोड़े और छः सौ प्यादे थे। जब वह अपने महल में पहुँचे, पुष्कर वहाँ था। नल ने उससे कहा—"आओ, आज फिर पाँसा खेलें; क्योंकि मेरे पास अब धन है।" चूंकि अयोध्या में जुआरियों के हथकंडे उन्होंने सीख लिये थे, अतः इस बार पुष्कर को खेल में उन्होंने

हरा दिया और सिंहासनादि राज्य-सहित सब कुछ फिर वापस ले लिया।

दमयन्ती ने नल से कहा कि—"पुष्कर पर कुछ कठोरता न कीजिये; क्योंकि यह आपद् वास्तव में अपनी भूल और अपने कर्म का फल था।" नल राजा ने उसको जागीर दे कर अपने महल से विदा किया। दमयन्ती और नल चिरकाल तक जीवित रहे और उनकी शेष आयु आनन्द से व्यतीत हुई। उनके पोते और परपोते हुए, और पुरुष के जितने आनन्द के दिन होते हैं, सब सुख नल के घर में थे। प्रजा भी नल राजा से प्रसन्न थी। जिस तरह इनके दिन पलटे, परमात्मा करे हम सब की आपत्तियाँ खुशी और प्रसन्नता से बदलें।
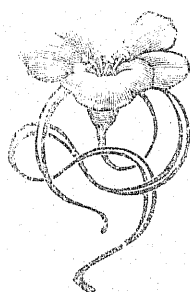
४—अर्गल की रानी

र्गल की रानी ने आपत्ति के समय अपने आप को नवाब अवध की सेना के बीच पाकर खेत काटने वाले राजपूत किसानों को अपनी सहायता के लिये ऊँची आवाज़ से बुलाया और यह लोग वीरांगना स्त्री की रक्षा करना अपना धर्म समझ कर नवाब की सेना पर बिजुली की तरह गिरे और रानी को पकड़े जाने से बचा लिया। इसकी कथा इस तरह है—सन् १२५० में अर्गल का राजा हिन्दू था, जिसने देहली के बादशाह को कर देने से मुख मोड़ लिया था। उसका नाम गौतम था और इस वृत्तांत का मूल कारण उसकी रानी थी। हमको इस श्रेष्ठ रानी का जीवन चरित्र विदित नहीं है, किंतु इसके विवाह के साथ जो बात पेश आई उसने इसके नाम को भुवन-विख्यात कर दिया।

उस समय देहली के सिंहासन पर नसीरुद्दीन बैठा था। वह सुन्दर था परन्तु मन्द-भाग्य रज़िया बेगम का भाई था। बादशाह था तो बड़ा धार्मिक और पवित्र, परन्तु इसके स्वभाव में एक विशेष प्रकार का पता चलता है। जहाँ तक उसके अंतरंग जीवन का पता चलता है, वह बिलकुल साधुओं की तरह अपना जीवन व्यतीत करता था और ख़र्च के लिए राज्य-कोष से कुछ नहीं लेता था। किताबों की नक़ल करता और उसकी क़ीमत से अपना निर्वाह करता था। भोजन नितान्त सादे करता था। उसकी बेगम अपने हाथ से खाना पकाया करती थी

और बादशाह ने बेगम की सेवा के लिए एक दासी भी नियत नहीं कर रक्खी थी। उसके केवल एक स्त्री ही थी, और मुसलमान बादशाहों की तरह रनवास का कोई प्रबन्ध नहीं था। जब गौतम के विरोध की नसीरुद्दीन को ख़बर मिली, उसने सूबेदार अवध से गौतम को उचित दण्ड देने के लिए आज्ञा की। सूबेदार ने सब प्रकार से उसका सामना किया, पर उससे कुछ बन न पड़ा। शाही सेना का महान् पराजय हुआ और कुछ हज़ार आदमी मारे गये। बाकी सेना भाग गई और राजा भी अपने महल की ओर चले आये। इस जय की खुशी का उत्सव करने के लिये राजा ने आज्ञा दी, जिसमें छोटे बड़े सब बुलाये गये थे। राजा गौतम बुद्धिमान् महाप्रतापी और धर्मपाल था।

गौतम नृप सम को धनुधारी।
धीर वीर निज कुल हितकारी॥
जासु नाम सुनि डरपहिं बीरा।
समर-भयंकर अति रणधीरा॥
एक बार राठौर सँग, कीन घोर संग्राम।
कायर भाजे क्षेत्र से, फिर न कीन रण नाम॥
अघड गर्व बस कहा न माना।
भागा छोड़ि खेत चौहाना॥
यह संग्राम जीत गंभीरा।
जहँ तहँ मुदित फिरहिं रणधीरा॥

कई दिन तक निरन्तर उत्सव होता रहा। विशेष करके महारानी बहुत प्रसन्न थीं और वह अपने हाथ से स्वयं सिपाहियों

४—अर्गल की रानी

र्गल की रानी ने आपत्ति के समय अपने आप को नवाब अवध की सेना के बीच पाकर खेत काटने वाले राजपूत किसानों को अपनी सहायता के लिये ऊँची आवाज़ से बुलाया और वह लोग वीरांगना स्त्री की रक्षा करना अपना धर्म समझ कर नवाब की सेना पर बिजली की तरह गिरे और रानी को पकड़े जाने से बचा लिया। इसकी कथा इस तरह है—सन् १२५० में अर्गल का राजा हिन्दू था, जिसने देहली के बादशाह को कर देने से मुख मोड़ लिया था। उसका नाम गौतम था और इस वृत्तांत का मूल कारण उसकी रानी थी। हमको इस श्रेष्ठ रानी का जीवन चरित्र विदित नहीं है, किंतु इसके विवाह के साथ जो बात पेश आई उसने इसके नाम को भुवन-विख्यात कर दिया।

उस समय देहली के सिंहासन पर नसीरुद्दीन बैठा था। वह सुन्दर था परन्तु मन्द-भाग्य रज़िया बेगम का भाई था। बादशाह था तो बड़ा धार्मिक और पवित्र, परन्तु इसके स्वभाव में एक विशेष प्रकार का पता चलता है। जहाँ तक उसके अंतरंग जीवन का पता चलता है, वह बिलकुल साधुओं की तरह अपना जीवन व्यतीत करता था और ख़र्च के लिए राज्य-कोष से कुछ नहीं लेता था। किताबों की नक़ल करता और उसकी क़ीमत से अपना निर्वाह करता था। भोजन नितान्त सादे करता था। उसकी बेगम अपने हाथ से खाना पकाया करती थी

और बादशाह ने बेगम की सेवा के लिए एक दासी भी नियत नहीं कर रक्खी थी। उसके केवल एक की ही थी, और मुसलमान बादशाहों की तरह रनवास का कोई प्रबन्ध नहीं था। जब गौतम के विरोध की नसीरुद्दीन को ख़बर मिली, उसने सूबेदार अवध से गौतम को उचित दण्ड देने के लिए आज्ञा की। सूबेदार ने सब प्रकार से उसका सामना किया, पर उससे कुछ बन न पड़ा। शाही सेना का महान् पराजय हुआ और एक हज़ार आदमी मारे गये। बाकी सेना भाग गई और राजा भी अपने महल की ओर चले आये। इस जय की ख़ुशी का उत्सव करने के लिये राजा ने आज्ञा दी, जिसमें छोटे बड़े सब बुलाये गये थे। राजा गौतम बुद्धिमान् महाप्रतापी और धर्मपाल था।

गौतम नृप सम को अनुसारी।
धीर वीर निज कुल हितकारी॥
जासु नाम सुनि डरपहिं वीरा।
समर-भयंकर अति रणधीरा॥
एक बार राठौर सँग, कीन घोर संग्राम।
कायर भाजे क्षेत्र से, फिर न कीन रण नाम॥
भयउ गर्व बस कहा न माना।
भागा छोड़ि खेत चौहाना॥
यह संग्राम जीत गंभीरा।
जहँ तहँ मुदित फिरहिं रणधीरा॥

कई दिन तक निरन्तर उत्सव होता रहा। विशेष करके महारानी बहुत प्रसन्न थीं और वह अपने हाथ से स्वयं सिपाहियों

के लिए पकवान बनाकर भेजती थीं। इसी तरह कई सप्ताह तक महलों में राजा प्रजा सब खुशी खुशी से उत्सव मनाते रहे परन्तु शोक—

जहाँ सुक्ख तहँ दुःख है, यह सम्मति निरधार।
जहाँ पुण्य तहँ पाप है, देखहु हृदय विचार॥

लौकिक आनन्द की कोई दशा ऐसी नहीं है जिसमें शोक मिला हुआ न हो। गुलाब में काँटा और मद में खुमार है। जिस दशा को हम भूल से सर्व सुखदायक कहते हैं, वह भी शोक से शून्य नहीं है।

शादी कोई ख़ाली ग़म से नज़र आई।

देखा है कि जब खूब हँसे आँख भर आई॥

रानी अपनी सखियों के बीच इस तरह बैठी हुई थी जैसे तारमंडल के बीच चाँद। उनकी दृष्टि आकाश की ओर थी। रात का समय था चाँदनी खूब खिली हुई थी। इतने में चन्द्र-ग्रहण के लक्षण दिखाई देने लगे संसार के कुरकुसुत ने कुछ और ही अर्थ प्रकट कर रक्खा है। यह कोई नई बात नहीं है कि मूर्खता और अविद्या के कारण स्वार्थी पुजारियों की की बातें सुनकर लोग उनको पूज्य-पद देते हैं और उन्हे धर्म व्यवस्था समझ कर किए जाते हैं। अव्यवस्थित चित्त मूर्ख लोग दम्भी लोगों की माया को आकाश-वाणी समझते हैं जिस समय की यह वार्ता है उस समय भी लोग आज कल की भांति समझते थे कि सूर्य और चांद ने किसी समय में कर्ज़ा लिया था! ग़रीबी से दे नहीं सके। महाराज राहु केतु जब इनके ऊपर हमला करते हैं तब ग्रहण होते हैं। और उस समय जो कुछ दान दिया जाता है वह उनके मोक्ष कारण होता है

वाह रे मनुष्य ! वाह तेरा भोलापन ! इस मिथ्या विश्वास का भी कहीं ठिकाना है ?

रानी ने चाँद पर कब्ज़ा मांगने वाले के अनुचित व्यवहार को देख कर कहा—मैं तो गंगा-स्नान करने जाऊँगी । इस समय पर गंगास्नान से बड़ा पुण्य होता है, सारे पाप कट जाते हैं, धन सम्पत्ति की वृद्धी होती है, पति व पुत्रों की आयु बढ़ती है । यदि ऐसा न किया जावेगा तो हमारे राज्य में विघ्न पड़ेगा । मैं तो अवश्य ही जाऊँगी, चाहे कुछ ही क्यों न हो जावे यद्यपि नदी पर मुसलमानों की सेना खड़ी है परन्तु मुझे राजा या उसकी राज्य वृद्धि का ख्याल है ।" सहेलियों ने समझाया कि—"यह समय ठीक नहीं है ।" परन्तु रानी ने एक भी न सुनी । उसने साड़ी पहिन ली और दो स्त्रियों को साथ लेकर नदी की ओर प्रस्थान किया । नदी राजधानी से कई मील के अन्तर पर थी अन्तर का हिसाब लगाया कि यदि रात को बारह बजे महल से चलूँगी तो प्रातः काल गंगा पर पहुँच जाऊँगी और फिर दूसरे दिन बारह बजे के पहिले घर लौट आऊँगी ।

चाँद दिखाई देने से रह गया था, आकाश में तारे जगमगा रहे थे, परन्तु ग्रहण के कारण चारों ओर उदासी और भयानकता छाई थी । रानी ने अपनी सखियों को साथ लेकर चोर महल के मार्ग से दरिया की ओर प्रस्थान किया । कोई पुरुष साथ नहीं था । उसने किसी की सहायता की आवश्यकता न समझी । मन में किसी भाँति का भय तक न आने दिया । राजा और उसके दरबारी उत्सव मना रहे हैं; स्त्रियाँ महल से निकलती हैं । मन्दिर और तालाब आदि से गुज़रती हुई

अपनी यात्रा पर जा रही हैं। धर्म प्रेम ने उनकी गति में विलक्षण उत्तेजना भर दी थी। मार्ग में खेत, गाँव, मैदान सब पड़ते हैं। यात्री बराबर चले जा रहे हैं। थोड़ी देर के लिये भी आराम नहीं लेते। प्रातःकाल के लक्षण प्रगट होने लगे। पूर्व दिशा से उदय होता हुआ भानु अपने प्रकाश और सुनहली किरणों से संसार को प्रकाशित कर रहा है। आहा! कैसी अच्छी शोभा है। उदय होते हुए भानु की सुहावनी ज्योति देखने-योग्य है। स्त्रियाँ नदी के तीर पर पहुँची जहाँ पवित्र गंगा की लहरें सुन्दर वेग से बह रही थीं। रानी का हृदय उसकी महिमा देखकर प्रसन्न हुआ। वह मन ही मन में खुश है इतने में एक साधु पूर्वी ढंग से गीत गाता हुआ उधर से चला आता था—

गंगा तेरी लहर हमारे मन भाई।
वन पर्वत और बाग बगीचा लहर घाटी छाँई।
जीवन दान किया तैने सबको, महिमा सब जग छाई॥
गंगा तेरी लहर हमारे मन भाई॥

अंशुमान रघु सगर दधीची, तेरी आस लगाई।
भागीरथ अद्भुत काम कियो है गंग तरंग बुलाई॥
गंगा तेरी लहर हमारे मन भाई॥

प्रातःकाल के समय भैरवी राग का बड़ा असर होता है। सुनने वालों का हृदय भड़क उठा। रानी अतीव प्रसन्न हो गई। नियमानुकूल ब्राह्मणों को दान दिया और आनन्द से गंगाजी में स्नान किया। यहाँ तक रानी ने अपना काम निर्विघ्नता से किया। यद्यपि वह छुपकर आई

थी परन्तु महारानी का गंगा तक आने की बात ऐसी न थी जो छुपी रह सकती। उसकी दान-वीरता को देखकर लोगों ने समझा—हो न हो यह अर्गल की रानी है। होते-होते यह खबर अवध के सूबेदार के कानों तक पहुँची, जो हारकर बदला लेने की फिकर में लगा था। उसने अपने दूतों से अच्छी तरह सुन लिया था कि वह अर्गल की महारानी है। वह इस खबर से प्रफुल्लित हो गया। उसने समझा रानी सुख से पकड़ी जावेगी और इस तरह राजा को उसके घमंड का स्वाद चखाया जावेगा। दीन और अनभिज्ञ रानी पूजा-पाठ के अनन्तर घर की ओर चली। कठिनता से वह दो तीन मील आगे बढ़ी होगी कि उसके चारों हज़ारों मुसलमान लोगों भीड़ नज़र आई और उसी समय उस समुदाय के अधिपति ने आज्ञा दी—

धरि बाँधहु यहि तीय कहँ, कहुँ नहिं जावे भाज।
देखहुँ यहि कर वीरता, मैं निज नैनन आज॥

रानी इन वचनों को सुनकर दंग रह गई, काटो तो शरीर में रुधिर नहीं। चेहरे का रंग उड़ गया। परन्तु वह राजपूतानी थी, क्षण मात्र के अनन्तर वह निर्भयता से मुसलमानों के सम्मुख खड़ी हो गई। उच्च स्वर से कहने लगी—"मुसलमानों! तुम्हारे लिये कैसी लज्जा की बात है कि एक दीन स्त्री को दुःख देने के लिये तुम यहाँ खड़े हो। क्या तुम दीन स्त्रियों के साथ युद्ध करना चाहते हो? याद रक्खो! तुम अवध के हाकिम के सिपाही हो, तुम में मनुष्यों जैसे लक्षण होने चाहियें। उचित यह है कि तुम मेरा मार्ग छोड़ दो। यदि वीरता देखनी है, तो कुछ अर्गल की सेना से मुक़ाबला करो।"

रानी की बातें सुनकर मुसलमानों का सर्दार सहम गया। परन्तु फिर उसने कहा—"कि नहीं नहीं, तुझे पकड़ कर हम हाकिम सूबा के पास ले जावेंगे।" यह वचन सरदार के मुख से कठिनता से निकले होंगे कि रानी ने कमर से खंजर निकाल कर उसके सिर को तन से अलग कर दिया। बाकी मुसलमान आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगे। वह समझते थे कि रानी भाग कर नहीं जा सकती। तीन स्त्रियाँ इतने समूह का क्या सामना कर सकेंगी? वे उनको सुगम शिकार समझ कर आखेट में थे कि बिना युद्ध के जीते ही उनको पकड़ लें। रानी इस अभिप्राय को जानती थी। जिस जगह वह खड़ी थी, दैवात् वहाँ पर ऊँचा टीका था। उसने चारों ओर नज़र घुमा कर देखा। पास एक राजपूतों का झुण्ड खेत काटने में लगा हुआ था। उसके सरदार दो भाई अभयचन्द और निर्भयचन्द वैश्य-जाति के क्षत्री थे। रानी ने उच्च स्वर से उनसे कहा—"वीरों! जल्दी आओ! आर्य्य लोग स्त्री, बालक और गौ की प्रर्थना पर अपने प्राण दे देते हैं। मैं भगंल की रानी हूँ मुसलमान बलात्कार पकड़ने की इच्छा कर रहे हैं। यदि तुमको अपनी माँ, बहिन प्रिय हैं या स्त्री-जाति की प्रतिष्ठा का विचार है या अपनी पुत्री से प्रेम है, तो शीघ्र ही मेरी सहायता करो। मैं इस उपकार के बदले अपनी लड़की तुमको ब्याह दूँगी।" खेत वालों ने इसको सुना, परन्तु आशय अच्छी तरह वह नहीं समझ सके। मुसलमान लोग रानी के इस वचन से भयभीत हो गये। दो चार आगे बढ़े। सहेलियों की चमकती हुई तलवारों ने वहीं उनका सिर उड़ा दिया। रानी ने अपनी तलवार को आकाश में चमकाते हुए खेतवालों को ललकारा—"क्या तुम

में कोई राजपूत नहीं है जो स्त्री की सहायता पर आवे ? क्या क्षत्रियों से संसार खाली हो गया ? क्या जातीय लज्जा जाती रही ? पुरुषो ! मैं तुमको शपथ देती हूं । आओ और अपनी रानी के सतीत्व को बचाओ ।"

रानी के यह उत्तेजक वचन खाली नहीं गये । निर्भयचन्द्र और अभयचन्द्र बिजली की तरह झपटे और अपनी कटारों से भीड़ को चीरते हुए रानी के पास आ गये । उनके साथियों ने अपने सरदारों का अनुगमन किया । राजपूतों ने तीनों स्त्रियों को बीच में कर लिया और लड़ते हुए अर्गल के फाटक तक जा पहुँचे ।

इस प्रकार के प्राण न्योछावरता के वृतांत इतिहासों में कम मिलते हैं । या तो जसवन्त सिंह की रानी देहली के गली कूँचों में लड़ती हुई हुई अपने बच्चे को साफ़ बचा ले गई थी, या इस समय पर रानी अर्गल मे पकड़े जाने से अपने आप को बड़ी वीरता से बचा लिया था कोसों तक बराबर लड़ाई रही और लड़ाके राजपूतों ने एक-एक फुट धरती अपने गले कटा-कटा कर तै की थी । रानी की आवाज़ बीच बीच में सुनाई देती थी इसकी तलवार आकाश में चमकती हुई दिखाई देती थी और उसकी बात बात पर कई पुरुष बड़े उमंग के साथ उछल-उछल कर शत्रुओं का विनाश कर रहे थे । इसके वचनों में जादू था । उसकी निज की वीरता चकि डाती थी । मुसलमान लोग अति विस्मित थे परन्तु इनको आशा थी वह कहां तक लड़ेंगे । दस बीस शत्रुओं को मारकर एक राजपूत मरता था । निर्भय स्वर्गधाम को चला गया, एक अभय बाकी रह गया, वह बराबर स्त्रियों को धैर्य देते हुए लड़ रहा था यह समीप था कि उसकी मृत्यु रानी की आशाओं को समाप्त कर दे ।

इतने में अर्गल की सेना सहायता पर आ पहुँची। अर्गल में यह जनश्रुति उड़ गई थी कि रानी गंगा-स्नान के समय पर मुसलमानों से पकड़ी गई। और गौतम वीर सिपाहियों को साथ लिये हुए समय पर आ पहुँचे और उस समय अभय की जो दशा हुई लिखने में नहीं आ सकती। लाचार मुसलमान भाग खड़े हुए। गौतम रानी को राजी खुशी पाकर बड़ा प्रसन्न हुये। उनकी इच्छा थी कि मुसलमानों का पीछा करें। परन्तु रानी ने कहा—"हिजड़ों का पीछा करना व्यर्थ है। इनको पूरा दण्ड मिल गया।" सब लोग राज महल की ओर आये। रानी ने आँसू भरी आँखों से अभयचन्द का हाथ पकड़ कर राजा से कहा—"यह मेरा पुत्र है, जिसने अपनी माता को आपत्ति से बचाने के लिए प्राण तक देने से भय नहीं किया।" गौतम ने अभय को गले से लगाया।

शहर में इस रिपु-जय की प्रसन्नता से फिर विजय के बाजे बजने लगे। सब लोग प्रसन्न होकर अभय और रानी की वीरता की प्रशंसा करते थे। लोग अभिमान से कहा करते थे—

लश्कर है जरी कौम से लश्कर से हमारे।
थर्राता रुस्तम का जिगर डर से हमारे॥
शेर आँख चुरा जाता है त्योरी से हमारे।
निकला है वीरता का चलन घर से हमारे॥
सया नहीं होते हैं यह पेशा है हमारा।
थे राम लक्ष्मण जिसमें वह है वंश हमारा॥

अभय को पारितोषिक दिया गया। दूर-दूर उसकी कृतज्ञता की स्तुति होने लगी। यद्यपि वह नीची जाति में उत्पन्न हुआ था, तथापि

रानी ने राजा की सम्मति से अपनी लड़की उससे ब्याह दी और गंगा के पास का वह भाग जहाँ लड़ाई हुई थी, उसको दहेज में दे दिया। केवल वह अगंल के राजा का जामात ही नहीं हुआ वरंच गौतम ने उसको राव की पदवी भी दी। हर एक के मुख में उसकी इस वीरता की बात थी। कई पीढ़ियों तक राजपूत अभय और निर्भय के गीत गाते रहे थे। सब को यही वृतान्त सुनाते थे—

कंपहिं वीर जासु सुनि नामा।
देखहु चलि सोई तीय ललामा॥
रैन दिवस जहँ तहँ नर नारी।
गावहिँ गीत मोद अति भारी॥

उस वीर सूबेदार की क्या दशा हुई। जिस समय शाह नसरूदीन को ख़बर मिली, उसने सूबेदार के दुर्वचन कहे और सब के सामने अप्रतिष्ठित किया शत्रु मित्र सब उसको धिक्कारते थे। एक स्त्री के विरुद्ध व्यर्थ लड़ाई करके अपनी प्रतिष्ठा को संदेह में डाल दिया। वृद्धावस्था में जब कोई अगंल का वृतांत उसको सुनाता, सूबेदार लज्जा से सिर नीचे झुका लेता और नेत्रों से आँसू जारी हो जाते क्योंकि उस समय में पुरुष स्त्री के सन्मुख नहीं आता था।

५---तारामती (शैव्या)

तारामती राजा हरिश्चन्द्र की रानी थी। इसका दूसरा नाम शैव्या था। यदि एक नाम इसके सुन्दर रूप को प्रकट करता है, तो दूसरा इस श्रेष्ठ माता के पातिव्रतत्व और अचल बड़ाई तथा सद्भाव की याद दिलाता है।

हरिश्चन्द्र और तारामती यह दोनों ऐसे योग्य पुरुष थे, जिनकी योग्यता को सन्मुख रखकर लोग उच्च पदवी की प्राप्ति के लिये उनका अनुकरण करते हैं।

जहाँ राजा वा रानी ऐसे श्रेष्ठ धर्मात्मा हैं, तो उस भाग्यवान् देश का कहना। ईश्वर जब किसी जाति वा देश पर प्रसन्न होता है, तब उसे न्यायकारी और प्रजापालक राजा देता है।

राजा रानी दोनों प्रसन्न थे, परन्तु उनकी प्रसन्नता अधम प्रकृति के सदृश अधम कामों के विचार में उन्मत्त रहने वालों की सी न थी।

उनका मन दर्पण की तरह शुद्ध था। उनमें दोष तनिक भी न था। उनका जीवन शान्त वा प्रफुल्लित आत्मा का जीवन था परन्तु शोक! यह संसार विचित्र है। इसके गुलाब में काँटा और इसके शहद में मधु-मक्खी हैं। कौन पुरुष है जिसको समय के अनुचित तमाचे खाने नहीं पड़े। राजा हो या रंक, कोई इससे बचा नहीं है, न बच सकता है। काल भगवान् का चक्र सर्वदा घूमता रहता है। कभी ऊपर कभी नीचे। कभी हेमन्त कभी बसंत। कभी हर्ष कभी शोक। समय की दशा एक

जैसे नहीं रहती। हरिश्चन्द्र और उसके सम्बन्धी भी इसमें कैसे रह सकते थे ?

हरिश्चन्द्र सत्यवादी प्रसिद्ध थे। उनको अपनी प्रतिज्ञा पालन का ऐसा ध्यान था कि चाहे कुछ ही क्यों न हो जावे, परन्तु वह कभी अपनी जबान को नहीं पलटते थे उनके इस गुण की प्रसिद्धि ने विश्वामित्र ऋषि को उसका विरोधी बना दिया। उन्होंने वशिष्ठ ऋषि के सामने कहा कि "मैं हरिश्चन्द्र को सत्य-पथ से गिराकर छोड़ूँगा।" और ऋषि ने राजा हरिश्चन्द्र को बुलाकर उससे राज्य को दान में माँग लिया। चूं कि हिन्दुओं में दान के साथ दक्षिणा देने की भी रीति है। जब राजा ने कहा कि—"अब यह राज पाट तुम्हारा है।" तब विश्वामित्र ने कहा—"बहुत अच्छा, अब इसके बराबर की सुवर्ण दक्षिणा भी दीजिये ?" कोष धन-दान के कारण विश्वामित्र का हो चुका था, अब इसका छूना अधर्म था। राजा ने कहा—"मैं एक महीने में बनारस जाकर तुमको दक्षिणा दूंगा, इतना समय स्वीकार करो।" विश्वामित्र ने कहा—"यदि तू अपनी प्रतिज्ञा से टल जावे, तो मैं दक्षिणा के लिये हठ नहीं करता।" परन्तु हरिश्चन्द्र ने कहा—"यह क्या बात है, मैं अपने वचन पर सर्वथा दृढ़-प्रतिज्ञ रहूँगा। प्राण चाहे जावें या रहें, सूर्य चाहे पूर्व को छोड़कर पश्चिम में उदय हो और समुद्र की तरंग चाहे सुमेरु की चोटी पर उछलने लगें, परन्तु हरिश्चन्द्र अपनी बात से कभी नहीं बदलेगा।

चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे जगत् व्यवहार।
तापै दृढ़ हरिश्चन्द्र का, टरे न सत्य विचार॥"

विश्वामित्र ने हँस कर कहा—"बहुत अच्छा, देखा जावेगा। मैं आज से एक मास के अनन्तर तुम से काशी में मिलूंगा और उस दिन तुमको या तो दक्षिणा देनी होगी या अपने राज-पाट को फेर लेना होगा।" यह कहकर विश्वामित्र चले गये और राजा अपने महल में रानी को समझाने के लिये गए। तारामती इस बात से अपरिचित नहीं थी, जब हरिश्चन्द्र ने अपने दान देने या बनारस जाने का हाल सुनाया, तो उसने प्रसन्नता पूर्वक कहा—"राजन्! मेरे शरीर पर जो कुछ भूषण हैं वह भी राज के हैं, इसलिए इनको उतारे देती हूँ और मैं भी तुम्हारे साथ काशी चलूंगी, क्योंकि काशी स्वतन्त्र स्थान है। मैं और मेरा छोटा पुत्र आपके साथ रहकर दुःख में आपके सहाय होंगे।" हरिश्चन्द्र को राज देने का तनिक शोक नहीं था और अब जब कि उसकी रानी ने इस प्रकार निश्चिन्त होकर बात की, तो वह मन में बड़ा प्रसन्न हुआ और उसी समय प्रवास जाने की तैयारी की गई।

संसार में पुरुष किस बात की आशा रक्खे। पल में क्या हो जावेगा कोई नहीं जानता। तारामती अभी दो चार पल पहिले सारे देश की महारानी कहलाती थी, अब उसने सारे भूषण और वस्त्र न केवल अपने शरीर से उतार कर रख दिये, वरंच पाँच वर्ष से न्यून आयु वाले छोटे राजकुमार रोहिताश्व के भी उतार कर रख दिये। क्योंकि वह अब विश्वामित्र के धन थे और उनका साथ ले जाना अधर्म और पाप था। और उन्होंने नग्न शरीर ढाँपने के लिये भिखारियों जैसे वस्त्र डाल लिये थे। रानी ने इस विपर्यय पर हाय तक नहीं किया, न उसके मन में किसी तरह के शोक या दुःख का विचार हुआ। उसका

आश्रय हरिश्चन्द्र थे, वह उसकी सारी प्रीति और मनोरथों के पूरा करने वाले थे और उनकी खुशी में ही उसका सर्वस्व था। रोहिताश्व की आयु यद्यपि थोड़ी थी, परन्तु वह इतना समझ सकता था कि क्या हो रहा है? माता ने गोद में लेकर उसके वस्त्र भूषण उतार दिये और एक सामान्य कुरता उसके गले में डाल कर कहा—"यह सब पराये का धन है।" वह चुपका हो रहा और चूं तक न की।

बनारस अयोध्या से बहुत दूरी पर है। वह तीनों पुरुष दुःखावस्था में उसी समय पैदल वहाँ से चल दिये। आनन्द से पले हुए लड़के और महलों में रहनेवाली रानी के लिए इस तरह प्रवास का दुःख उठाते हुए पाँव घसीटते चलना, उन आपद् में फँसे हुओं के जीवन में नई बात थी। आगे हरिश्चन्द्र और पीछे बच्चे की अँगुली पकड़े हुये उनकी धार्मिक रानी थी। किसी तरह मार्ग के क्लेश को उठाते, दर्द दुःख सहते, यात्रा करते हुए वे बनारस जा पहुँचे।

बनारस आने को तो आ गये, परन्तु विश्वामित्र की दक्षिणा किस तरह दी जाती? केवल एक महीने का प्रण था। कई दिन रास्ते में हो चुके थे। शहर में आए हुए भी कई दिन हो चुके थे। माँगने का साहस नहीं पड़ता था। निदान इसी चिन्ता में करीब करीब वह महीना गुजरने पर आया। हरिश्चन्द्र आश्चर्य में थे कि इक़रार का दिन आ पहुँचा, अभी तक रुपये का कोई प्रबन्ध नहीं हुआ।

पति को चिंतातुर देखकर तारामती ने कहा—"भगवन् आपको किस बात की चिन्ता है। आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये। धर्म-कार्य में घबराने या चिंतातुर होने की क्या आवश्यकता है? धर्मात्मा पुरुषों

के लिये यह परीक्षा का समय है। अन्त में सर्वथा भला होता है। ईश्वर को अपने सच्चे धर्मात्मा पुरुषों की प्रतिज्ञा पूरी करने का स्वयं सोच रहता है। आपने कितने अश्वमेध यज्ञ किये हैं, आप संसार में सत्यवादी प्रसिद्ध हैं, ईश्वर आपकी अवश्य सहायता करेगा।" हरिश्चन्द्र को अपनी [illegible] प्रतिज्ञा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"सुन्दरी! यह सब सत्य है, परन्तु अब तक दक्षिणा का कोई प्रबन्ध नहीं हुआ। समय भी कैसा कठिन होता है। समय के बदलते पुरुष की दशा भी बदल जाती है।" रानी ने उत्तर दिया—"यह सब सच है। समय आता जाता है। पुरुष यदि अपने धर्म पर स्थिर रहे, तो उसको किसी का खटका नहीं है। आप शोक न करें। समय की असमानता को दोष न दें। मैं आपकी दासी हूँ। मैं आपको इसलिये दी गई हूँ कि आपके काम आऊँ। यदि आपको कहीं रुपया नहीं मिल सकता है, तो अपनी तारामती को बेच दीजिये। और ब्राह्मण को दक्षिणा देकर अपना वचन सच्चा कीजिये। यदि आज नहीं तो फिर मैं किस दिन स्वामी के काम आऊँगी?"

इन बातों ने हरिश्चन्द्र के हृदय को अधिक दुखी बना दिया। रानी और बाज़ार में बेची जावे! यह किस तरह होगा? उसकी सारी रात सोच विचार में कट गई। प्रातःकाल का तारा प्रकट हुआ। कुक्कुट ने बाँग दी, वायु चलने लगी। थोड़ी देर के बाद सूर्य की किरणों ने संसार को प्रकाशित किया। उसी समय चिंतातुर हरिश्चन्द्र को विचार उपजा कि आज प्रतिज्ञा का अन्तिम दिन है।

वह बेचारा सोच ही रहा था कि विश्वामित्र आ पहुँचे और बोले —"राजन् ! क्या हाल है ? यदि सायंकाल को सूर्यास्त होने के समय तुम ने दक्षिणा नहीं दी तो कहा जावेगा कि हरिचन्द्र इक़रार का पक्का और वचन का सच्चा नहीं है और मैं तुम्हारा दान भी लौटा दूंगा ।" तारामती घबराई और बोली—"प्राणनाथ ! जल्दी करो, मुझे बाज़ार ले चलो । तारामती आप पर न्योछावर है । संसार को कभी यह कहने का समय न मिले कि हरिश्चन्द्र की बात झूठी पड़ गई कुछ चिन्ता नहीं यदि मुझ पर आपत्ति आवेगी तो मैं सहार लूँगी ; परन्तु आप अपने सच्चे स्वभाव को कलंकित न होने दीजिये ।

हरिश्चन्द्र हक्का बक्का होगया । बात चीत करते करते कई घण्टे व्यतीत हो गये । निदान चुप चापी के साथ वह तारामती और रोहिताश्व को लेकर चौक में आया और अपनी वाणी से कहा—"यह दासी बेचने के लिए है, जो चाहे सौदा करले ।" अयोध्या की रानी और बाज़ार में बिके ! दैव ! तुझ पर किसी का वश नहीं है । कर्म तेरी गति प्रबल है । लोग बेचने वाले की तरफ झुके । राजा और रानी दोनों के मस्तक से राज धर्म का तेज प्रकाशित था । किसी का साहस नहीं पड़ता था कि ख़रीद ले । कौन जाने कहीं वह उपहास न कर रहा हो । लोग एक एक करके अलग हो गये । राजा अतीव विस्मित हुआ । अन्त को कौशिक नाम एक कन्दर्प ब्राह्मण ने कम कीमत लगाकर रानी को मोल ले लिया । रुपया थोड़ा मिला । राजा ने चाहा राजकुमार रोहिताश्व को भी बेचकर न्यूनता को पूरा कर दें । ब्राह्मण ने कहा—"गौ के साथ उसका बछड़ा भी बिकता है, इसकी अलग कीमत नहीं लगाई जावेगी ।" और वह रानी

और राजकुमार का हाथ पकड़ कर घसीटता हुआ ले चला। तारामती ने दृष्टि भरकर हरिश्चन्द्र को देखा—"प्राणपति! अभागी तारा चरणों से अलग होती है। आप इसको भूल न जाना। यदि मैंने दान किये हैं या यज्ञादि किये हैं तो फिर आप का दर्शन व मिलाप होगा।" रोहिताश्व के नेत्र डबडबा आये। निर्दयी ब्राह्मण ने उस पर दो-चार खटी सीधी बातें सुनाईं और बड़े क्लेश के साथ रानी को धक्के देता हुआ वहाँ से ले चला। हरिश्चन्द्र देखते के देखते रह गये। क्या करते रानी पर अब उनका स्वत्व नहीं रहा था। धैर्य का पत्थर हृदय पर रख लिया और क्रोध के वेग को रोक रक्खा। रानी और रोहिताश्व बिक गये। मन्द भाग्य हरिश्चन्द्र से उनकी सच्ची दौलत छीनी गई। इस पर भी दक्षिणा पूरी नहीं हुई। अन्त में इसने अपने आपको एक वीर भद्र काशी चाण्डाल के हाथ बेच दिया और उसने अयोध्या के राजा को यह सेवा दी कि श्मशान में मुर्दे जलाने वालों से कफन का कुछ भाग और नियत कौड़ियाँ लेकर तब उनको दाह कर्म की आज्ञा दे। गरीब राजा ने उस सेवा को स्वीकार कर लिया, परन्तु वचन से न हटा। अयोध्या का सिंहासन और श्मसान भूमि क्या भयानक दुर्गति है!

रानी तारामती ब्राह्मण के घर गई। वह दुष्ट रात दिन उससे सेवा लिया करता क्षण मात्र भी विश्राम नहीं लेने देता था और सदैव झिड़कियाँ दे देकर उसको बड़े दुर्वचन सुनाता रहता। धर्मात्मा रानी सब कुछ सहा करती थी रोहिताश्व से भी खराब सेवा ली जाती थी। कभी-कभी जब उस सुकुमार के कपोल तमाचों से लाल किये जाते, तो दीन रोता हुआ माँ की गोद से चिपट जाता। रात-दिन के काम-

धन्धे से अवकाश पाकर जब रानी अलग बैठती तब अपनी दशा को स्मरण करके रोने लगती। यदि रोहिताश्व जागता रहता तो अपने छोटे छोटे हाथों से आँसू पोंछता और तोतली बातों से धैर्य देता। यह उसकी तसल्ली का कारण था। उसको देखकर रानी प्रति दिन की गालियाँ झिड़कियाँ सहार लेती थीं और ईश्वरेच्छा को प्रबल मान दिन काटती थी। ब्राह्मण अत्यंत ही कंदर्प था। रानी को खाने पीने के लिये भी काफ़ी नहीं देता था, ग़रीब फटे पुराने कपड़े लपेटे रहती थी। भूमि पर लेट कर रात बिता देती। प्रातःकाल होते ही घर की टहल सेवा में लग जाती। रोहिताश्व प्रातः उठते ही सब से पहिले ब्राह्मण के वास्ते बाग़ से फूल तोड़ लाया करता और जो कुछ और काम कहा जाता उसे शान्ति से पूरा कर देता। यह उन दोनों के प्रति दिन के काम का चित्र था। एक तो रानी को आपत् का दुःख, दूसरी ओर ब्राह्मण की क्षण-क्षण में कठोरता, इस पर जब वह निर्दयता से रोहिताश्व को मारने लगता, तो उसके कलेजे पर छुरी चलने लगती। पाठको! संसार में माता की दया प्रसिद्ध है। यदि पुत्र को तनिक दुःख पहुँचे तो माता का हृदय विदीर्ण हो जाता है। परन्तु लाचार रानी जो कुछ कठिन क्लेश आते उन्हें सहा करती। क्या करती कुछ वश नहीं था। ईश्वर शत्रु को भी ऐसे बुरे दिन न दिखावे।

वह घर में मन्द-भागिनी, जन्म-जली और निकम्मी कहलाती थी और अच्छे दिन आने की उसको आशा नहीं थी। यदि पुरुष को अपने अच्छे दिन आने की आशा हो, तो उसके दिन सुगमता से कट जाते हैं। परन्तु वह जानती थी कि स्वामी ने उसे दूसरे के हाथ बेच

दिया है, मृत्यु के बिना और कोई दुःख से बचने का उपाय नहीं रहा था। तारामती जितनी तू श्रेष्ठ थी, संसार ने वैसा ही तुझको दुःख दिया। एक दिन सायंकाल के समय जब रानी बर्तन माँज रही थी, पड़ोस के लड़के जो रोहिताश्व के संगी साथी थे और फूल चुनने के लिए बाग में जाया करते थे, रोते हुए आये और बोले—"माई रोहिताश्व को काले नाग ने डस लिया। वह वृक्ष के नीचे मरा पड़ा है। चल, उसको उठा ले आ।" अरे यह क्या हो गया? तारामती के होश जाते रहे। कलेजा धक से रह गया। भगवन् यह क्या बात है।

बेचारी रानी रोती पीटती नंगे सिर ब्राह्मण के पास आई—"महाराज रोहिताश्व को साँप काट गया। मेरे अन्धे की आँख फूट गई। आज्ञा दीजिये उसको उठा लाऊँ।" ब्राह्मण कठोरता से कहने लगा—"मन्द-भागिनी! रोती क्यों है? मरना था मर गया। बनारस में रोज सैकड़ों मरते रहते हैं, जा श्मशान में जलाकर शीघ्र ही लौट कर आ। ऐसा न हो काम काज में हरज हो।" रानी रोती हुई बाग में आई, रोहिताश्व सचमुच मुर्दा पड़ा था। उसकी साँस बन्द थी। नाड़ी का पता नहीं था। शरीर शीतल हो चुका था। हाय ईश्वर! इस आपत् का कहीं ठिकाना है? रानी ने मुर्दे को छाती से लगा लिया—"प्यारे रोहिताश्व! मेरा कलेजा! मेरा प्राणांश! क्या इसीलिये मैंने तुझको पाला था परमात्मन्! मैंने क्या अपराध किया था कि यह दिन देखने में आये?" रानी आहें मार-मार कर रो रही थी, कि ब्राह्मण वहाँ पहुँच गया—"अरे तू अभी यहाँ ही चिल्ला रही है! देखा अँधेरी रात है। काली-काली घटायें छाई हैं। जल्दी श्मसान में ले जाकर लाश

को जलाकर चली आ।" वह बेचारी बेटे को छाती से लगाये उस स्थान की ओर चली जिसे ब्राह्मण ने बताया था। वह पहिले अकेली कभी नहीं निकली थी। सायंकाल के समय सूर्यास्त हो चुका था। अँधेरा हो चुका था। साथ न कोई आदमी न आदमजात। अयोध्या की रानी अकेली श्मशान की ओर चली। घण्टों के अनन्तर भटकती-भटकती और राह पूछती हुई जिस समय वह नदी के किनारे पहुँची, सारा घाट सुनसान पड़ा था। कुत्ते आदमियों की लाश की तलाश में इधर उधर भौंक रहे थे। वह थक गई थी सामने एक मुर्दे को जलते देखकर उसने समझा कि यहीं श्मशान है, ज़रा साँस ले लूं फिर लड़के का कार्य्य करूँगी। लाश को उसने उतार कर भूमि पर रख दिया। बिजुली की चमक से मुर्दे रोहिताश्व की सूरत पर फिर दृष्टि पड़ी। माता का हृदय फट गया। उस समय कोई रोक टोक करने वाला नहीं रहा था। वह फिर खूब दिल खोलकर रोने लगी—"रोहिताश्व! रोहिताश्व! बेटे! तूने माता को छोड़ दिया। अब कौन मेरे आँसू पोंछेगा? कौन गले से लिपट कर मुझे धैर्य्य देगा? तू राजा का स्मारक था। तुझको देखकर आपत्ति कटती थी। हाय! तू भी छिन गया। मेरे हाथ का तोता उड़ गया। पति-वियोग का दुःख क्या कम था कि लड़का भी मुझ से अलग कर लिया गया। मेरे दुःख वा पीड़ा की समाप्ति हो चुकी।

चल बसा आँखों का तारा हाय हाय।
था वही माँ का सहारा हाय हाय॥
राज छूटा बन्धु भाई सब छुटे।
लुट गया सामान सारा हाय हाय॥

किसका शिकवह किससे कहिये हालदिल ।
डूबा किस्मत का सितारा हाय हाय ॥
ग़म ग़लत करती थी इसको देख कर ।
दैव ! तेरा क्या बिगाड़ा हाय हाय ॥
रात अँधेरी बड़े तूफ़ान का है जोर शोर ।
है किधर यारो ! किनारा हाय हाय ॥
मौत ! क्यों लेती नहीं अब तू ख़बर ।
कौन है यहां अब हमारा हाय हाय ॥
गोद ख़ाली हो गई किस्मत फूटी ।
तू किधर बेटा सिधारा हाय हाय ॥
आँखें पथराई हैं, लब हैं तेरे खुश्क ।
माँ से कहदे किसने मारा हाया हाय ॥
चूर है मेरा कलेजा दर्द से ।
सबर अब कैसे हो यारो ! हाय हाय ॥
बाप को इस दम कहाँ होगी ख़बर ।
बेटा स्वर्ग को है सिधारा हाय हाय ॥

आवाज़ आई—"ख़बरदार ! कौड़ी वा कफ़न दिये बिना मुर्दे को आग न लगाना।" रोती हुई रानी चौंक पड़ी। सामने एक लम्बा चौड़ा जवान कंधे पर लाठी रक्खे हुए हाँक लगाता चला आ रहा था—"ख़बरदार ! कौड़ी वा कफ़न दिये बिना मुर्दे को आग न लगाना।" वह थोड़ी देर में रानी के पास आ पहुँचा—"सौभाग्यवती ! तेरी आवाज़ सुनकर हृदय फटा जाता है, तू कौन है जो इस तरह रो रही है ?" रान

फिर चौंकी, यह तो किसी ऐसे पुरुष की आवाज़ है जिससे प्रीति थी। इसने शोक ढाँप करके कहा—

"राज छोड़कर प्रवासी बनकर यहाँ आई। प्रिय पति से वियुक्त हुई। आज मेरे दुःख का प्याला छलक गया। मेरी गोद का पाला रोहिताश्व भी संसार से चल बसा।"

इतना सुनना था कि वह पुरुष एकाएक चीख़ उठा और पृथ्वी पर गिरकर बे-सुध हो गया। रानी घबराई। यह कौन पुरुष है? इतने में बिजुली चमकी और उसने उस अचेत पुरुष के स्वरूप में अपने पति की आकृति देखी। हाय दैव! आज ही सारी आपत्ति का पहाड़ मुझ पर टूट पड़ेगा। उसने पानी में धोती तर करके मुँह पर छींटे दिये। हरिश्चन्द्र ने नेत्र खोले और दूसरे क्षण में स्त्री पुरुष दोनों एक दूसरे के गले मिल कर ऐसे रोने लगे कि उनके वस्त्र तर हो गये। थोड़ी देर बाद हरिश्चन्द्र ने रानी से उसकी आपत्ति की कथा पूछी और जब वह सम्पूर्ण वृतान्त सुना चुकी, राजा ने अपना सिर पीट लिया। कर्म पर किसका अख्त्यार है। आधी रात का समय आ गया। राजाने कहा-- "रानी कफ़न वा कौड़ी देकर अपने पुत्र का दाह-कर्म करदे।" रानी ने रोकर कहा—"महाराज, मैं कौड़ी और कफ़न कहाँ से लाऊँ। मुझ पर क्षमा करो।" परन्तु हरिश्चन्द्र ने कहा—"धर्म आज्ञा नहीं देता कि स्वामी की रसम लिये बिना तुमको दाह कर्म की आज्ञा दूँ।"

वह इस तरह बात चीत कर ही रहे थे कि इतने में चाण्डाल कई पुरुषों को साथ लिये हुए आ पहुँचा। वह आदमी ज़ोर से कहते आते थे कि काशीराज के राजपुत्र को एक स्त्री श्मशान की ओर उठा लाई है,

क्या आश्चर्य है उसने मारडाला हो। उसकी तलाश में हम घण्टों से परेशान हैं।' यह कहते हुए वह उस स्थान पर पहुँचे जहाँ राजा रानी कौड़ी कफ़न के लिये तकरार कर रहे थे। पुरुषों ने मशाल की रोशनी में स्त्री और बालक देखकर कहा—"बस वह स्त्री यही है। इसी ने ही राजपुत्र को मारा है। अब इसको भी यहाँ मारना चाहिये।" रानी ने कहा—"भाइयो, कुशल तो है यह मेरा अपना लड़का है, जो मर गया है; मैं इसको जलाने आई हूँ" हरिश्चन्द्र ने भी साक्षी दी। परन्तु वहाँ कौन सुनता था। पुरुषों ने कहा—"अच्छा यदि तेरा ही पुत्र था तो कफ़न वगैरह कहाँ है?" रानी क्या जवाब देती चुप हो गई। चाण्डल ने कहा—"निःसन्देह यह डायन है। इसको अभी मार डालो" हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल को समझाना चाहा। परन्तु उसने कहा—"तू क्या विवाद करता है? तेरा धर्म है कि तू मेरी आज्ञा माने। तू मेरा दास है। सेवा करने की शपथ की है। ले इस खड्ग से अभी इस स्त्री का सिर काट दे।" हरिश्चन्द्र चुप हो रहे, आखिर तलवार उन्होंने अपने हाथ में ले ली।

आपत्ति ग्रस्त रानी ने कहा— 'महाराज, जल्दी करो ऐसा भाग्य फिर न आवेगा। आपके हाथ से क़त्ल होने में मेरा जन्म सफल होगा मेरे दुःखों की समाप्ति करो प्राणपति, सोच विचार न करो। मेरी ओर देखो, पुत्र भूमि पर लेट रहा है। इससे बढ़कर क्या आपत्ति होगी?" हरिश्चन्द्र जानते थे कि रानी निर्दोष है, परन्तु स्वामी की आज्ञा मानना धर्म था। इसने तलवार उठाई। रानी ने सिर झुका दिया और निकट था कि उसका सिर एक ही वार में तन से अलग हो जाता कि

इतने में दस बीस पुरुष चारों ओर से दौड़ पड़े—"हाँ हाँ ! ऐसा न करो ।" और दूसरे क्षण में एक पुरुष ने तलवार उसके हाथ से छीन कर फेंक दी । यह विश्वामित्र था और उसने कहा—"हरिश्चन्द्र ! तू धन्य है ! पर्वत हिल सकता है, परन्तु तुम दोनों अपने धर्म में दृढ़ हो । तुम्हारा नाम संसार में सर्वदा जीता रहेगा । लोगों को इस में ऋद्धि मिलेगी । यह दुःख मैंने जान बूझकर तुम्हारी परीक्षा के लिये दिये हैं । रोहिताश्व मरा नहीं, परन्तु बेसुधकारक औषधि से मुर्दा बनाया गया है । मैं अभी इसे जीवित किये देता हूँ ।" यह कहकर उसने रोहिताश्व को अच्छा कर दिया । माता पिता पुत्र तीनों गले मिले । विश्वामित्र ने राज्य लौटाना चाहा, परन्तु दिया हुआ दान कौन फिर ले सकता था । इस लिये उनके न मानने पर रोहिताश्व को राज्य-सिंहासन पर बैठाया गया ।

ईश्वर करे तारामती का चरित्र हमारी बहू बेटियों को धर्म की शिक्षा दे और वह भी अपने धर्म और कर्तव्य को इसी तरह सीखें ।

सती

ब्रह्मा ने सृष्टि करने के लिये सब से पहले मानसी सृष्टि की, मरीचि अत्रि अङ्गिरा वशिष्ठ आदि महर्षि तथा दक्ष नारद धर्मदेव आदि राज ऋषियों को उन्होंने उत्पन्न किया, ये प्रजापति कहे जाते हैं। दक्ष प्रजापति की बहुत सी कन्याएं हुईं। दक्ष प्रजापति ने सत्ताइस ताराओं का विवाह चन्द्रमा से कर दिया, धर्म से अन्य दस कन्याओं का विवाह हुआ। इन्हीं धर्म की स्त्रियों से देव और मनुष्यों के अनेक गुणों के अधिष्ठाता दिव्य पुरुष उत्पन्न हुए। दक्ष प्रजापति की अदिति, दिति, दनु आदि तेरह कन्याएं कश्यप मुनि को ब्याही गयी थीं। इन्हीं से देव दैत्य दानव मनुष्य गन्धर्व किन्नर अप्सरा पशु पक्षी आदि चराचर की सृष्टि हुई।

सती दक्ष प्रजापति की छोटी कन्या थीं, सती के प्रत्येक गुण आदर्श थे। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि संसार की स्त्रियों को पातिव्रत धर्म की शिक्षा देने के लिये ही सती उत्पन्न हुई थीं। दक्ष प्रजापति के घर स्वयं आद्याशक्ति सती के रूप में उत्पन्न हुई थीं।

दक्ष प्रजापति ने महादेव से सती का विवाह किया। महादेव बड़े शक्तिमान योगी और महापुरुष थे। भोग और वैराग्य, स्वर्ग और श्मशान, रत्नजटित सिंहासन और कीचड़मय भूमि, देवता और पिशाच, रत्न भूषण और मृतकङ्काल तथा चन्दन और श्मशान की

सती और महादेव

[बे]लवेडियर प्रेस, प्रयाग।

राख को महादेव एक समान देखते हैं। श्मशान उनका घर है, बाघ का चर्म उनका कपड़ा है, हड्डियों की माला और साँप उनके भूषण हैं, बैल सवारी और चिताभस्म उनका सुगन्धलेप है और भूत प्रेत आदि उनके साथी सङ्गी हैं।

पति का ऐसा भयङ्कर और घृणा योग्य वेश और आचरण को देख-कर राजर्षि-पुत्री सती के हृदय में कुछ भी भय या घृणा उत्पन्न नहीं हुई, किन्तु स्वामी की विलक्षणता पर वे अत्यन्त प्रसन्न हुईं। बड़ी भक्ति के साथ उन्होंने पति के गुण और धर्मों का अनुकरण करके सह-धर्मिणी होने का परिचय दिया। पति के साथ वह भी श्मशानवासिनी योगिनी हुईं। जिन अङ्गों में अब तक वे सोने के गहने पहनती थीं अब उन्हीं अङ्गों में चिता का भस्म लगाने लगीं। वे स्वामी के अनुचर भूत प्रेत आदि का माता के समान स्नेहपूर्वक पालन करने लगीं। पति के समान बनकर उनके कार्यों में योग दान करना ही उनके जीवन का सब से बड़ा व्रत हुआ।

भृगु महर्षि आदि महर्षियों में से हैं। किसी समय उन्होंने एक बहुत बड़ा यज्ञ करना आरम्भ किया। उस यज्ञ में देवता ऋषि प्रजापति आदि सभी निमन्त्रित किये गये थे। जिस समय दक्ष प्रजापति उस यज्ञ में उपस्थित हुए उस समय सभा के सभी लोगों ने उठ कर उनका अभिनन्दन किया। परन्तु अपने रङ्ग में मस्त और लोक व्यव-हार के प्रति उदासीन महादेवजी ने उनको देख अभ्युत्थान नहीं दिया। उन्हों ने कुछ भी अपने ससुर दक्ष का सम्मान नहीं किया।

यह देख दक्ष को क्रोध आना स्वाभाविक ही था; उन्होंने क्रोध पूर्वक महादेव को बहुत सी कड़ी बातें सुनायीं। दक्ष प्रजापति की बातों से महादेव का चित्त कुछ भी विकृत नहीं हुआ। महादेव के सामने आदर अनादर, प्रिय वचन, अप्रिय वचन, भक्ति, द्वेष आदि एक समान हैं। अतएव दक्ष की कड़ी बातें भी महादेव के हृदय में विकार उत्पन्न नहीं कर सकीं। परन्तु महादेव के अनुयायियों के साथ दक्ष और सभास्थ कतिपय मनुष्यों का विवाद होने लगा। इस विवाद को बढ़ते देख महादेव वहाँ से उठ कर चले गये। उन्होंने सोचा कि यदि यह विवाद और बढ़ा तो व्यर्थ ही इतने मनुष्यों का नाश हो जायगा। यज्ञ में विघ्न न हो इस लिये अब मेरा यहाँ से चला जाना ही अच्छा होगा यही सोच कर श्री महादेव अपने सङ्गी साथियों के साथ वहाँ से उठ कर चले गये थे। परन्तु दक्ष के हृदय में किसी प्रकार शान्ति नहीं हुई। उनका हृदय क्रोध और द्वेष से जल रहा था।

दिन जाते विलम्ब नहीं लगता, बहुत दिनों के बाद दक्ष के यहाँ यज्ञ आरम्भ हुआ, उस यज्ञ में बड़ी तैयारियाँ की गयीं। त्रिलोक के समस्त वासियों को उस यज्ञ में आने के लिये निमन्त्रण दिया गया था। परन्तु पूर्व अपने अनादर की बात याद कर के दक्ष ने महादेव और सती को निमन्त्रित नहीं किया।

दक्षने निमन्त्रण का भार अपने भाई नारद को सौंपा था। त्रिलोक पूजित महादेव के इस अनादर से नारद को बड़ा कष्ट हुआ। नारद की इच्छा थी कि, शिव के अनादर का फल दक्ष को अवश्य मिलना चाहिये। शिव के बिना अविवेकी दक्ष के इस अपूर्णयज्ञ में विघ्न

अवश्य हो नारद यही चाहते थे। उन्होंने यह समाचार सती से कह दिया।

यह समाचार सुन कर निमन्त्रण नहीं आने पर भी सती का शुद्ध हृदय पिता के यज्ञ में उपस्थित होने के लिये उत्कण्ठित हुआ। अनादर का कुछ भी उन्होंने ध्यान नहीं किया। सती ने अपने पिता के घर जाने के लिये नम्र हो कर अपने पति की अनुमति माँगी। शिवजी ने उन्हें समझाया कि इस समय, जब कि उन्होंने निमन्त्रण भी नहीं भेजा है—जाने से तुम्हारा बड़ा भारी अपमान होगा। तुम्हारे सामने दक्ष मेरी निन्दा करेंगे और उससे तुमको बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा, परन्तु सती ने कुछ भी नहीं समझा। अन्त में लाचार हो कर शिवजी को सती के पितृगृह जाने की आज्ञा देनी पड़ी।

बैल पर चढ़ कर भूत प्रेत पिशाच आदि अनुचरों के साथ सती पिता के घर जाने के लिये प्रस्थित हुईं।

दक्ष का यज्ञ प्रारम्भ हुआ है। त्रिभुवन के देवता ऋषि सती की माता, और भगिनीगण यज्ञ मण्डप में बैठी हुई थी उसी समय सती वहां जाकर उपस्थित हुईं।

सती की माता और उनकी भगिनियों ने उनका आदरपूर्वक सन्मान किया, परन्तु दक्ष और दक्ष के भय से वहाँ उपस्थित अन्य लोगों ने सती का कुछ भी आदर सम्मान नहीं किया। सती को देखते ही दक्ष मारे क्रोध के घी डाली हुई आग के समान जल उठे, क्रोध और घृणा से युक्त कठोर शब्दों से महादेव की उन्होंने निन्दा की, दक्ष जितना कह सकते थे उतना अनाप सनाप बकने लगे।

महापुरुष स्वामी की निन्दा सती से सही नहीं गयी उन्होंने पिता से कहा ।

सती—पिता ! इस त्रिभुवन में जिससे श्रेष्ठ कोई दूसरा नहीं है, जिसका किसी से विरोध नहीं है, प्रेम और द्वेष, मित्रता और शत्रुता, आत्मीय और परकीय आदि संसार के भावों से अतीत महापुरुष योगी के साथ तुम्हारा विरोध क्यों हुआ है। जिसके नाम जपने से प्राणियों की अज्ञानता दूर होती है, देवगण नित्य जिसके प्रसाद की अभिलाषा करते हैं, श्मशानवासी पिशाचसङ्गी चिताभस्म और कङ्कालमाला से भूषित होने पर भी जिसका निर्माल्य देववृन्द अपने सिर पर धारण करता है, आज तुम उन्हीं की ऐसी निन्दा कर रहे हो। जो आत्मज्ञान में मग्न हैं, वैदिक तथा शास्त्रीय विधियों से जो अतीत हैं, कर्मबन्धन जिनको न तो कभी बाँध सका है और न बाँध सकेगा, देहधारी होने पर भी जो मुक्त हैं, हर्ष विषाद, श्रद्धा, अश्रद्धा, अनुराग विराग आदि किसी से भी जिनका चित्त विकृत नहीं होता, उन्हीं महापुरुष, योगीश्वर की, पिता ! आप निन्दा कर रहे हैं। वह यज्ञों के प्रधान पूज्य यज्ञेश्वर हैं, और यज्ञ की आराधना करना तुम्हारा धर्म है। जिन धन-रत्नों को उन्होंने मिट्टी के समान फेंक दिया है, उन्हीं रत्नादिकों से तुम्हारी प्रतिष्ठा है, तुम्हारा आदर है। जो देवता सर्वदा उनकी पूजा किया करते हैं, तुम उन्हीं देवों को पूजा कर के

कृतार्थ होते हो, जो कर्म तुम्हारे जीवन के आश्रय हैं, वह महापुरुष उन कर्मों से परे हैं। कर्म ही उनको आश्रय देते हैं। धिक्कार, उन्हीं महापुरुष की सहधर्मिणी भार्या-मैं तुम्हारे जैसे उनके शत्रु अधम पिता की पुत्री हूँ। इससे मेरा जीवन बड़ी ही घृणा के योग्य मालूम होता है। ऐसे जीवन को धिक्कार! तुमसे उत्पन्न हुए पापी शरीर को धारण करने में मुझे घृणा होती है। मेरा प्राण मेरी आत्मा उन्हीं के चरणों के आश्रित है और अनन्त दिनों तक आश्रित बने रहेंगे। परन्तु तुमसे उत्पन्न पापी शरीर के स्पर्श से उस देववान्छित चरण को छूकर कलङ्कित करना मैं नहीं चाहती। स्वामिद्वेषी, स्वामिनिन्दक पिता का दिया हुआ शरीर लेकर, अब मैं अपने पति के घर जाना नहीं चाहती। तुमने जिस शरीर को दिया है उसे तुम्हारे ही घर छोड़ कर, मेरा पवित्र आत्मा अपने गति, अपने आराध्य उन भगवान् के चरणों में लीन होगा।

इतना कह कर पतिनिन्दा से मर्मपीड़िता सती ने योगासन पर बैठ कर देहत्याग किया।

इस घटना से दक्ष के यज्ञमण्डप में कुहराम मच गया। रुद्रतेज से तेजस्वी वीरभद्र आदि रुद्र के प्रधान अनुचरों ने दक्षयज्ञ को तहस नहस करना आरम्भ कर दिया। देखते ही देखते दक्ष का सिर कट कर अग्निकुण्ड में भस्म होगया। महर्षि भृगु की मूँछें उखाड़ ली गयीं। नारद का चाहा हुआ सत्य हो गया। शिव के अनादर का फल दक्ष को

मिल गया। अनन्तर दक्ष की स्त्री प्रसूति ने शिव की बड़ी स्तुति की इसका समाचार जब ब्रह्मा ने सुना तो वे भी आ कर शिव की स्तुति करने लगे। शिवजी ने कहा, दक्ष का सिर तो भस्म हो गया, उसका मिलना असम्भव है; किन्तु बकरे का सिर उनके शरीर से लगा दो वह जी उठेंगे। ब्रह्मा जी ने वैसा ही किया, दक्ष पुनर्जीवित हुए। दक्ष ने शिव की अनेक प्रकार से स्तुति की और अपने अपूर्ण यज्ञ को उन्होंने पूर्ण किया। शिवजी भी महायोग में निमग्न हुए।

देहत्याग के अनन्तर सती हिमालय-राज के घर उत्पन्न हुईं। इनका नाम रखा गया उमा, इन्होंने शिवजी को पति वरण करने के अर्थ बड़ी कठोर तपस्या की, अन्त में उनकी तपस्या से शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने उमा का पाणिग्रहण किया।

पार्वती

पार्वती किस माता पिता के यहाँ उत्पन्न हुई। किस जननी के कोख से इस पवित्रात्मा का प्रादुर्भाव हुआ। वह कौन सा पवित्र स्थान था जहाँ इस देवी ने जन्म लिया। पाठक इसके जानने के लिये बड़े उत्कंठित तथा लाला-यित हो रहे होंगे।

किसी महान् व्यक्ति का जन्म कोने में व दूर स्थल में ही होता है और जहाँ किसी का यातायात न हो वहाँ होता है। उसी प्रकार इस महान् देवी का जन्म हिमालय के एक भाग में जहाँ पर अत्यन्त तेजस्वी ओजस्वी प्रतापी राजा राज्य करता था। उस जननी का नाम सुनैना था उसकी कोख धन्य थी जिसकी कोख से ऐसी देवी उत्पन्न हुई।

कोई राज्य कितना ही समृद्ध शाली तथा धन्य शाली क्यों न हो, परन्तु बिना संतति के सब सूना ही है। इसी प्रकार इतना बड़ा राज्य निसंतति के सूना ही था। राजा दिन रात इसी चिन्ता में डूबा रहता था कि कब कोई संतान उत्पन्न होती है। कालान्तर पश्चात उस सर्वान्तर्यामी प्रभु की कृपा से निराश्रय को सहारा मिला। सुनैना की कोख से एक देवी ने जन्म लिया जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है। बस अब क्या था सारे राज्य में यह समाचार विद्युत के समान फैल गया। सारा नगर खुशी से गूंज उठा। जगह जगह खेल तमाशे होने लगे

राजा ने भी हीन दीन गरीबों को तथा विप्रों को धन धान्य से सन्तुष्ट किया।

माता के सर्वगुण संपन्न तथा सर्वशास्त्र वेत्ता होने के कारण पार्वती भी सर्वगुण संपन्ना थी। उसकी बुद्धि इतनी तेज थी कि थोड़े ही काल में सब विद्याओं का अध्ययन कर लिया उसकी बुद्धि की तीव्रता को देखकर समीपस्थ ऋषि भी आने लगे और उसकी बुद्धि की मुक्तकंठ से सराहना करने लगे। एक दिन बातचीत करते हुए नारदजी से गिरिराज ने विवाह का ज़िक्र छेड़ दिया। उन्होंने अत्यन्त सोच विचार करने के पश्चात पार्वती के योग्य वर शिव को बतलाया। पार्वती यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई और अपने हृदय पटल में निजपति का नाम व प्रतिमा अंकित कर ली। नारद के जाने के बाद पार्वती वर आई और दिन रात शिव की अराधना में लग गई। माता पिता यह नया भाव देख घबरा गये और उसे बहुत मना किया। परन्तु सत्यवीर क्या एक बार कहने को टाल सकते हैं। बस जिस बात को एक बार कह दिया वो पत्थर की लकीर के तुल्य है। क्या हरिश्चन्द्र को भूल गये "प्राण जायँ पर बचन न जाहीं" अन्त में पार्वती ने निज गृह को भी छोड़ एक कन्दरा में जा शिवजी की अराधना करने लगी। किसी प्राणी का साहस न हो सका कि उसे मना कर सके। दिन रात शिव की भक्ति में लीन रहने के बाद एक दिन बहुत से ऋषि पार्वती को समझाने के लिये आये। पर उस दिव्य देवी के उत्तरों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सब के सब शिव के पास गये। शिव ने भी अपनी समाधि तोड़ी और ऋषिवृन्द को सामने देख आने का कारण पूछा। ऋषियों ने सब बात कह

डाली और उस देवी के गुणों की तथा तपश्चर्या की मुक्तकंठ से सराहना की।

शिवजी ने भी सब वृत्तान्त सुन भस्म लगा देह पर मृगचर्म धारण कर झट गिरिराज के राज्य की ओर चल दिये। प्रजा इस विचित्र बरात को देख कुछ विस्मित तथा भयभीत हुई। राजा ने सब समान पहले ही से तैय्यार करा रक्खा हुआ था पर वहाँ ओकर मामला ही और हुआ। माता का रंग बदला और पुत्री को देने में आना कानी करने लगी। अन्त में नारद के बहुत समझाने के बाद पार्वती की आकांक्षा सफल हुई और शिव के साथ सकुशल विवाह हो गया।

इधर शिव के साथ हिमालय पर्वत पर आ पार्वती ने भी नये राजकीय वस्त्रों (वल्कल) को धारण किया तथा आठों पहर पति सेवा में लीन रहती थी और अपने गुणों से पति को सदा प्रसन्न रखती थीं।

पाठकवृन्द! हमें भी चाहिये कि पार्वती की तरह अपने वचनों पर दृढ़ रहें जब एक स्त्री जाति अपने वचनों पर दृढ़ रह सकती है तो क्या मनुष्य जाति नहीं? यदि आप देश को उठाना चाहते हैं तो अपने दिलों को मज़बूत कर वचनों को अदा करने का यत्न कीजिये। उसी में तुम्हारा, तथा देश का, तथा व्यक्ति व्यक्ति का कल्याण है। यदि इसपर न चलोगे तो जगह २ ठोकरें खाओगे।

चन्द्रकान्ता ।

नीतिशास्त्र निपुण सकल शास्त्र वेत्ता पंडित देवशर्मा के नाम को कौन नहीं जानता। उनकी पुस्तकों को पढ़कर सारा संसार शतशः उन्हें धन्यवाद देता है और देता रहेगा। उनका नाम सारे संसार में सदा उज्वल तथा आदरणीय रहेगा। उस समय के हर एक राजा उनकी विद्वता के सिक्के को मानते थे। ऐसा कौनसा सौभाग्यशाली राजा था जहाँ उनका निवास स्थान था। वह राजा भी अवश्य विद्या प्रेमी तथा विद्या शाली होगा। पंडित देवशर्मा जी राजा चेतसिंह की विद्वत मंडली के मुख्य विद्वान् तथा आदरणीय पंडित थे। हर एक जगह इनका नाम था "विद्वान् सर्वत्र पूज्यते" इस वचन से साफ़ है कि विद्वान जहाँ जाये उसका आदर होता है न कि केवल निवास्थान में ही। इनकी स्त्री सावित्री थी। ये भी पंडित जी की तरह विद्यासागर थी सब गुण जो स्त्रियों में होने चाहिये सब उस दयालु प्रभु ने इसमें दिये थे। विद्या पात्र को ही मिलती हैं न कि कुपात्र को। अतः सर्वगुण संपन्न होने के कारण इनकी संतति भी सर्वगुण संपन्न हुई।

सब पाठक चन्द्रकान्ता के नाम से परिचित ही होंगे। कौन नर या नारी ऐसा होगा जो इस देवी के नाम से परिचित न हो। जिस देवी ने अपने जीवन में अनेक कष्टों को सहते हुए पतिव्रत धर्म को न छोड़ा उसके लिए दर २ भटकी यहाँ तक कि घर बार भी छोड़ अंत में अपने

मनोरथ को सफल कर सकी। यह देवी सावित्री की ही कोख से उत्पन्न हुई थी। उपरोक्त नियमानुसार वह बड़ी रूपवती तथा विदुषी थी। इसने अपने गुणों से सर्वजन को मोह लिया था वैद्यक-शास्त्र में भी अति चतुर थी। इसका विवाह भी एक सुयोग्य काशी के विख्यात पंडित श्रीकृष्ण शास्त्री के लड़के बाल शास्त्री से हुआ। इन्हें विद्याप्रेमी राजा-चेतसिंह से कितनी ही जागीरें प्राप्त थी अतः इन्हे धनधान्य का किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। घर में आते ही इसने अपनी दवाई से सर्वजन को प्रिय बना लिया था सब इसकी मुक्त कंठ से सराहना करते थे। जिसके कारण इस देवी का नाम अजर अमर हो गया वह काम क्या था। वह क्या जादू का खेल था, नहीं वह एक बड़ी पर्वत की माला थी जिस को पार करना था—वह कोई साधारण सा खेल नहीं था। उसमें प्राणों की बाजी थी।

संसार चक्र बदला—रंग में भंग हुआ—समय सदा एक सा नहीं रहता। सन् १७८० में आपत्ति का पहाड़ बनारस में आटूटा। उस समय वार्नहेस्टिंग्ज़ साहब गवर्नर जनरल थे। उन्होंने भी इनके धनधान्य की बड़ी प्रशंसा सुनी हुई थी। इनसे साढ़े बाईस लाख रुपयों तो लेना ही था, झट तृष्णा का लोभ बढ़ा और पांच लाख रुपया और मांगा। वे परतंत्र थे, परतंत्रताकी बेड़ियों में भारत जकड़ा जा चुका था—कोई उसकी दुःख कहानी सुनने वाला नहीं था। बेबस था, लाचार था। जो कोई कुछ भी करता सब सहता—न सहता तो क्या करता— उसने सब दे दिया—परन्तु तृष्णा और बढ़ी, और २० लाख रुपया मांगा—वह न दे सका झट झूठा दोष आरोपण कर राज्य च्युत

कर दिया। "यह था सजा हुक्म न मानने का"—"यह थी सजा बे कसूर की"—इसे कैद में डाल दिया गया परन्तु वहाँ से किसी तरह निकल वह महाराज सिंधियाँ की शरण में आया। परन्तु जब आपत्तियाँ आती हैं तब आती ही चली जाती हैं—उनका कोई ओर नहीं रहता। विश्वासघाती नौकर गंगागोविन्दसिंह ने रुपये के लोभ में इन्हें फिर पकड़वा दिया। इन्हें ज़ेल में डाल दिया गया, जहाँ से छूटना बड़ा कठिन तथा असंभव था। परन्तु किस तरह पत्नी अपनी लाज बचाती हुई अनेक दुर्गम मार्गों को तै करती हुई अनेक कष्टों को सहती हुई उस ज़ेल के दरवाजे तक भी अपनी आवाज पहुंचा देती है।

क्या विचित्र समय है पति कैद में पड़ा हुआ है, पत्नि उसके लिये तड़प रही है, खाना पीना सब छूट चुका है, आठोंपहर उसकी ही चिन्ता में गुज़रता है, कोई तरीका, कोई, सहारा उस दीन दुखियों को नहीं सूझता। परन्तु ईश्वर दयालु है वह अपने दीनों की दुखियों की आह को सुनता है और उन्हे उससे तरने का मार्ग भी बता देता है। अंत में चन्द्रकान्ता अपने घर वालों को बहुत समझा बुझा, घर से भी बाहर हुई और पति देव को खोजने चली।

चलते चलते अनेक वनों नदियों को तै करते हुए मार्ग में आये विघ्नों को इस सती ने किस तरह उनका सामना किया। यह कोई साधारण काम नहीं था, इसमें प्राणों की बाजी थी। इसे इस देवी ने किस तरह तहस नहस किया। यह सुन कर पाठक अवश्य घबरा तथा भयभीत हो जायेंगे। प्रारंभ ही प्रारंभ में एक शिकारी इस पर मोहित होता है और यह सती उसे अपने तेज़ से विजय करती है।

इसी प्रकार एक मत्त अधम राजा को भी अपनी ओजस्विनी गिरा से उसे तिरस्कृत करती है। इस प्रकार अनेक कष्टों को सहती हुई वीर चन्द्रकान्ता अपने रूप लावण्य को ही राह में विघ्नकारी समझ देह पर भस्म लगा योगिनी का वेष बना अंत में अपने इष्ट स्थान तक आही पहुंची।

कलकत्ते में आकर इस देवी ने दीनों, गरीबों, दुखियों को दवाई देना और धर्म ग्रन्थ, धर्म पुस्तक सुनाना आरंभ किया। इसकी दवाई और धर्मग्रन्थों की चर्चा सर्वत्र फैल गई। कोई उसकी दवाई की प्रशंसा कर रही है कोई उसकी धर्म गाथा की। सर्वत्र ही उसके यश का नाद ही सुनाई पड़ता था। इस प्रकार जो कोई रोगी व दुखिया होता इसके यहाँ ही दवाई लेने आता और ईश्वर की दया से बड़ी जल्दी अच्छा हो जाता।

सुख जाते भी देर नहीं लगती धीरे धीरे समय बदला। एक प्रतिष्ठित सरदार की स्त्री बीमार हुई उसने भी उसकी प्रसंशा सुनी हुई थी। वह भी इसके यहाँ आया और दवाई ले गया इस प्रकार नित्य प्रति दवाई सेवन करने से उसका रोग अच्छा हो गया। अच्छा होने के उपरांत उसने उसे कुछ लेने के लिये कहा—परन्तु वह तो केवल दान स्वरूप व रक्षास्वरूप में ही दवाई गरीबों को देती थी न की धन की चाह से। पर 'हाँ, खिन्न अवश्य हुई। उसके खिन्न होने के कारण को सुन वह भी उस विश्वासघाती सेवक पर बड़ा कुपित हुआ और निश्चिन्त रहने के लिये कह दिया।

उधर उसने सब वृतान्त हेस्टिंग्ज़ से कहा जिसे सुन कर वह ब
बड़ा दुखी हुआ और बाकखाखी को छोड़ने का एकदम हुक्म दे दिया
वह छूटने का शब्द सुन बड़ा उसका कृतज्ञ हुआ परन्तु वह कुछ न बोल
और चुप रहा। जब वह वहाँ पहुंचा जहाँ वह योगिनी दवाई बांट रही थ
तो एकदम सन्न रह गया। वह नहीं समझ सका कि ये चन्द्रकान्ता
या अन्यवेषधारी कोई योगिनी। पर अंत में मामला साफ़ हो गया औ
सब वृतांत सुन दोनों बड़ी खुशी से मिले।

इधर हेस्टिंग्ज ने अपने मकान पर बुला इन का बड़ा मान त
अतिथि सत्कार किया और मुक्त कंठ से इस देवी की वीरत्व की धै
की तथा पतिव्रत धर्म की प्रशंसा की और बड़ी अच्छी तरह इन्हें अप
मकान में भिजवा दिया। घर पर पहुंच कर सब गृह वासी तथा कु
वासी बड़े खुश हुए और फिर सब के मन में सुख का स्रोत ब
लगा। बहुत दिनों से बिछुड़े पति तथा पत्नि फिर मिल कर
आनन्द के साथ रहने लगे और अपनी बीती कहानी सुनाने लगे जि
सुन कर कभी २ दोनों ही बड़े चकित तथा कभी क्रोध से लाल हो जाते थे

पाठक ! आपने सती चन्द्रकान्ता के जीवन को सुन लिया। अ
केवल गाथारूप में पढ़ ही न जाइये अपितु उसमें से कुछ लेने का
यत्न कीजिये तभी आपकी यह गाथा सफल होगी। न कि एक कान
सुन दूसरे कान से रफ़ू चक्कर कर दीजिए। अगर आप भारत
कल्याण चाहते हैं तो कुछ न कुछ इसमें से शिक्षा अवश्य लेते जाइये
तभी आपके सुनने का व पढ़ने का कुछ फ़ायदा है, पढ़ने को तो बच
भी गाथा के तौर पर दो दो बार पढ़ जाते हैं।

इस देवी ने किस लिये इतने कष्ट इतने दुःख सहे, केवल—भारत का नाम उज्वल रहे। भारत का यश उज्वल रहे उस पर कोई कलंक का टीका न लगा सके। तभी तो इस देवी को सर्वत्र भारत का बच्चा २ पूजता है। उसे अपने हृदय में रखता है और उसके पतिव्रता पति सेवादि गुणों की प्रशंसा से अपना मुख तथा भारत का मुख उज्वल समझता है।

विमला

विमला गुजरात अधिपति जयशेखर राजा की भगिनी थी। इसके रूप लावण्य का तो कहना ही क्या—पर साथ साथ वेद पुराण काव्य आदि सब विद्याओं की भी लक्ष्मी थी। इस के रूप पर सारे राजकुमार लोट पोट थे। सब की यही चाह थी "कि मेरे गले वर माला पड़े" सब की आँखें उस पर लगी हुई थीं। परन्तु पता नहीं किस सौभाग्य शाली के गले में वह वर माला डालेगी। "वह नर धन्य होगा—उसका जीवन धन्य होगा"—जिस के गले में यह वर माला डालेगी। उसका सारा जीवन सुखमय होगा। इस तरह वे देख देख कर ही अपनी तृष्णा को बुझाते थे।

इधर जयशेखर को भी चिन्ता पड़ी—दिन रात इसी चिन्ता में रहते थे कि कौन सा वर इस के योग्य है। दुनियाँ का कोई स्थान नहीं था जो छीना न गया हो। परन्तु कोई योग्य वर नहीं मिला। वाहिन भी बड़ी हो गई थी अतः चिन्ता ने और भी जोर पकड़ा "अंत में ईश्वर ने इच्छा पूर्ण ही की और योग्य वर मिल गया"। सच तो यह खोजते खोजते समुद्र में से मोती मिल ही जाता है।

मुल्तान के महाराजा प्रवास क्षेत्र सपरिवार किसी देश को जा रहे थे। रास्ते में गुजरात देश भी पड़ता था अतः इन को इच्छा हुई कि यहाँ कुछ दिन रह चले। इन्होंने भी गुजरात अधिपति के यशो गुण शंकर कवि से सुन लिये थे अतः कोई गुण ऐसा नहीं था जो

इन से छिपा हो। उधर जयशेखर भी सहर्ष अपने यहाँ रहने के लिये अपने आप को कृत्य कृत्य समझा और बड़ी अच्छी तरह अतिथिसत्कार किया।

महाराजा की राजधानी पंजापुर थी। इसकी स्थिति को देख कोई जन नहीं कह सकता था कि वह पहले छोटा नगर था। इस विशाल नगरी को देख अवाक क्षेम बड़े खुश हुए। सचमुच जो कुछ शंकर कवि ने अपनी कविता में लिखा था वो अक्षर २ सत्य था। राजधानी धन धान्य, व्यापार और सरस्वती से पूर्ण थी। इनकी प्रजा सेवा, प्रजा रक्षा, सर्व लोक प्रियतादि गुणों की प्रसिद्धी सुन दूर २ के राजा यहाँ आकर रहने लगे थे। सचमुच पृथ्वी लोक में इन्द्रपुरी थी। अत्यधिक प्रशंसा करना इस के लिये नाम मात्र था।

एक दिन महाराजा तथा उन के लड़के सुरपाल उनका शस्त्रागार देख रहे थे। कि अचानक रानी के मुँह से ये शब्द निकल गये कि मैंने कभी शेर का शिकार नहीं देखा। बात कुछ नहीं थी कोई साधारण प्राणी होता तो इसे हँसी दिल्लगी में ही टाल देता—परन्तु उस बात में जो सार था वो दोनों ही समझ सके।

दूसरे दिन सिंह के शिकार के लिये तैयारियाँ होने लगी। राजा अपनी रानियों को साथ ले वन की ओर चले वहाँ पहिले ही से सेवकों ने उनके बैठने के लिये वृक्षों पर मचान बना दिये थे। केवल जयशेखर और सुरपाल ही हाथी पर सवार थे। शिकारियों ने शेर का पता लगाया—कि अमुक स्थान पर शेर निद्रादेवी की गोद में सो रहा है। बस दोनों ने ही उस ओर हाथी हाका। जयशेखर ने सिंह को देख एक

तीर छोड़ा। सिंह भी तीर के लगने से एक दम झिलमिला कर उठा और भयंकर गर्जना करता हुआ अपने शत्रु की ओर चला। दोनों ही अपने अपने देश के राजा थे यह अरण्य का, वह मनुष्यों का, दोनों को ही अपनी शानशौकत का पूरा ख्याल था अतः विचारने का समय न था। इतने में शेर के एक और तीर लगा शेर कब चोट खाने वाला प्राणी था। झट वायुवेग से उधर ही झपटा और एक ही प्रहार से जयशेखर को नीचे दे मारा। जयशेखर ने बहुत चाहा कि भाले का वार करूँ परन्तु अब की बार सिंह की बारी थी कुछ न कर सका। बड़ा कठिन काल उपस्थित हुआ किसी को कुछ न सूझा कि क्या किया जावे—विचारने का भी समय नहीं था—परन्तु इतने में ही विद्युतवेग के सदृश सुरपाल के तीखे तीर ने सिंह को ढीला कर दिया वह होश में भी न होने पाया था कि उसके भाले ने उसका काम तमाम कर डाला। यह सब काम क्षण भर में ही हो गया—सब के सब उस शूरमा की प्रशंसा करने लगे—विमला की भी इच्छापूर्ति पूर्ण हो गई तथा सब की आंखों से प्रेममय अश्रुधारा बहने लगी।

इधर महाराजा प्रजासक्षेम इनके यहाँ कुछ दिन रह अपने देश की ओर जाने की तैय्यारी करने लगे। राजा ने भी बड़ी खुशी से आज्ञा दे दी और साथ ही साथ सगाई के लिये भी कह दिया। दो दिन के बाद सगुन भेज दिया गया। कुछ काल बाद दोनों का विवाह हो गया। दोनों बड़े आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करने लगे। आप सुरपाल के जीवन से परिचित ही होंगे—प्रकृति माता जितने गुण किसी को दे सकती हैं वह सब इनमें मौजूद थे। वीरता

का उदाहरण आप देख ही चुके हैं कि किस वीरता के साथ इन्होंने सिंह का मुकाबला किया तथा सब प्राणियों को हक्का-बक्का कर दिया। ये रणविद्या में अर्जुन के समान थे तथा सरस्वती में भी विद्या सागर थे। इनके यहाँ रहने से गुजरात देश और भी वृद्धि और संवृद्धि शाली हो गया।

इधर लाट देश के राजा "भूवड़" ने अपनी विशाल सेना तथा विस्तृत राज्य की शान में आ, गुजरात में युद्ध का संदेशा भेज दिया। परन्तु धीर वीर जयशेखर ने युद्ध व्यर्थ समझ अपने सेनापति को संधि के लिये भेजा। परन्तु नशे में चूर्ण उस अधम राजा ने उस सेनापति को मार दिया और मुट्ठी भर सेना को भी बरबाद करना सोचा। उसे क्या पता था कि मेरे से भी कोई शूरमा है वह केवल अपनी टिड्डी दल के ऊपर ही नाच रहा था कि इतने में एक धीर वीर शूरमा ने रणभूमि के रंग को बदल दिया। जहाँ अभी खुशी का डंका बजने वाला ही था, जहाँ अभी खुशी की विजय पताकायें फहराने वाली ही थी—वहाँ उलटा ही हुआ। उसका सब कराकराया मिट्टी में गया। वह दिव्य पुरुष कौन था—कोई नहीं था "सुरपाल" था "जिसने अपनी दिव्यवाणी से भागते हुए, पैर उखड़े हुए, हौसला टूटे हुए भट्टों के अन्दर फिर से नया उत्साह नया जोश भर दिया इस थोड़ी सी प्रतापी सेना ने टिड्डी दल को अपने नये उत्साह से गाजर मूली की भांति कतरना शुरू किया—बस क्या था शत्रु इस वेग को न रोक सके उनके पैर उखड़ गये उनके छक्के छूट गये और विजयश्री ने सहर्ष उन वीरों को विजय माला पहना दी।

इधर इस तरह विश्वासघात को सुन राजा भी क्रोध से अंगारा हो रहा था। परन्तु विजय के हाल को सुन बड़ा प्रसन्न हुआ और सुरपाल की अगवानी के लिये स्वयं आगे गया। विजय नाद को सुन सारे शहर में खुशी के बाजे बजने लगे। विमला भी पति की बड़ाई सुन फूले अंग न समायी।

इस तरह बड़े आनन्द के साथ इनका काल व्यतीत होने लगा जो कोई आता यह ही कहता कि विधाता ने ठीक जोड़ी दी है। पति पत्नि का वर्णन शंकर कवि ने बड़ी अच्छी तरह दर्शाया है। उसने लिखा है कि विवाह के बाद गुजरात देश की दिनों दिन उन्नति होने लगी। किसी का साहस न होता था कि इस राज्य पर उंगली उठावे—सब इसके ऐश्वर्य को देख दिलों दिल जलते थे। सब समीपस्थ राजा इसी ताक में थे कि कब मौका मिले, इसे नीचा दिखावे।

शिकस्तीय भूलह राजा ने अपने को नीतिका अच्छा समझ, बड़ी चालाकी से एक पत्र सुरपाल को लिखा कि तुम अगर जयशेखर से अलग हो जाओ तो तुम्हें इतना राज्य तथा इतना धन देंगे। उसने वह पत्र समीपस्थ बैठी अपनी प्राणप्यारी को भी दिखलाया जिसे पढ़ उस वीर क्षत्राणी का मुंह क्रोध से तमतमा उठा और कहने लगी "हे वीरवर! भूल कर भी कभी अपने पैर पर कुल्हाड़ी न मारना, जिस वृक्षको अपने हाथों से सींचा हो उसे भूलकर भी मत काटना, अपने हाथ से फूले फले राज्य को कभी मत विध्वंस करना" निज प्रिया के मर्म भरे तथा हृदयस्पर्शी शब्दों को सुन उस वीरवर ने कहा—हे प्राण प्यारी ये तो मैंने केवल परीक्षा के लिए ही पूछा था। मैं भूल कर
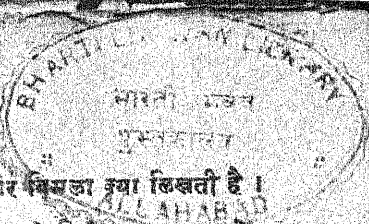
भी ऐसा नहीं करूँगा" इस पत्र के उत्तर में वीर विमला क्या लिखती है। "राजन्! आप ने जो उपकार करना चाहा उसके लिये शतशः आप को धन्यवाद है आप की नीति वास्तव में गंभीरतम है परन्तु नीतिज्ञ चाणक्य ने उसके भावी पते को देख लिया है अतः वह अपने पैर नहीं काट सकता"।

इस उत्तर को सुन भूवड़ का राजा बड़ा झमाया और स्वयं ही पंजापुर प्रांत पर चढ़ाई करनी ठानी। अपनी अक्षोमसेना को ले, फिर एक बार वह आ धमका—वीर जयशेखर और सुरपाल ने उसका कई बार सामना किया परन्तु इतनी विशाल सेना पर विजय पाना आसान नहीं था। इस तरह कई बार युद्ध हुआ और उसमें इनकी प्रायः सारी सेना तहस नहस हो गई। अतः आगे का सोच जयशेखर ने अपनी रानी तथा विमला को बचाने के लिये सुरपाल से कह, स्वयं रण भूमि की ओर प्रस्थान किया।

सुरपाल भी दोनों को वन में लेजा, वहाँ विश्वसनीय भीलों को सौंप, स्वयं रणभूमि की ओर चले—परन्तु रास्ते में ही राजा की मृत्यु का संवाद सुन—रानियों को बचाने के लिए चल पड़े।

उधर शत्रुओं ने भी उनका पता पा, झट उन पर धावा किया वीर भीलों ने भी बड़ी अच्छी तरह अपना हाथ दिखाया परन्तु अंत में सब से सब युद्ध में काम आगये। बस केवल एक भील संवाद सुनाने के अभिप्राय से अपने को बचाये रहा। नीच कर्ण की दृष्टि एकदम स्त्री पर पड़ी—बस वह सब कुछ भूल गया—विमला को जान के और भी खुश हुआ और अपने मन में तरह २ के विचार सोचने लगा। मन को न

संभाल, झट उस रमणी के पास आया और उससे अपना अभिप्राय कहा "हे सुन्दरी अब राजमहलों में चलो वहाँ सुख से जीवन व्यतीत करो—वहाँ किसी प्रकार का कष्ट न होगा—सब सुख सामग्री हर वक्त तैय्यार रहेगी।" परन्तु उस पतिव्रता स्त्री ने कहा—"हे कर्ण ये सब आशायें तू छोड़ दे, तू क्षत्रिय है, तुझे दीनों की हीनों की रक्षा करनी चाहिये, तेरे मुँह से ऐसी बातें शोभा नहीं देती।" परन्तु वह तो अपने नशे में ही मस्त था— समय न देख सिपाहियों को उसे ले चलने के लिये कह उसे एक महल में रखवा दिया और दिन प्रति दिन नियम पूर्वक उसके पास आता परन्तु निराश होकर चला जाता।

उस पतिव्रता स्त्री ने कई बार आत्म-घात करना सोचा परन्तु वह उसमें सफल न हो सकी अंत में जब कर्ण ने उससे बहुत कहा 'हे सुन्दरी मैं तेरा जीवन भर दास रहूँगा, तू मुझे स्वीकार कर बस मैं इतना ही चाहता हूँ—तेरा पति तुझे अब नहीं पा सकता। पता नहीं वह कहाँ कहाँ भटक रहा होगा—तुझे यहाँ किसी प्रकार की तकलीफ न होने पावेगी।" परन्तु उस वीर पत्नी ने यही उत्तर दिया कि "हे कर्ण तू अपना विध्वंस क्यों कराना चाहता है। द्रौपदी के अपमान से सारा कुरुकुल, सीता पर बुरी निगाह रखने से लंकेशपति का कुल-विध्वंस हुआ उसी प्रकार हे कर्ण प्रत्येक पतिव्रता स्त्री के ओज में यह ताकत होती है कि वह बड़े २ राज्यों को खेल ही खेल में मिट्टी में मिला सकती है। अतः अब भी तू संभल जा—कर्ण ऐसा निरुत्तर सुन दंग रह गया। उसकी सारी आशायें तथा मनोकामनायें काफ़ूर हो गईं। उसे कोई उपाय न सूझा। रावण की तरह उसने भी

विमला को ठगना चाहा। उसने उसी देश के एक आत्मीयजन को लोभ दे उसे उसके पास भेजा वह मूढ़ भी लोभ में फँसा अपनी लोभ-रूपी जिह्वा को न रोक सका और बड़ी दुखभरी अवस्था में आया मानों उस पर वास्तव में आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा हो। बस छलिये का दांव भी ठीक लगा। विमला उसके दुःख को देख और भी दुखित हो गई और उससे पूछने लगी—भाइया—कहो क्या बात हुई उसने भी बड़ी दुखभरी आवाज़ में कहा—क्या कहूँ, अब तो जीना दुराशा मात्र है—सुना है राजा का जंगल में किसी हिंसक प्राणी ने काम तमाम कर डाला यह सुनते ही एक दम पति के विरह में पागल सी हो गई और उससे कहा भैय्या! मेरा जीवन भी व्यर्थ है इसे अब धरा पर रखना अच्छा नहीं। दया कर चिता तैयार करा दो। वह छलिया भी अपना जाल पूर्ण देख झट वहाँ से खिसक गया और सब वृतान्त कर्ण से कहा—कर्ण भी अपना मोहनास्त्र सफल देख उसके पास आया और उससे कहने लगा "कि हे सती तेरे लिये आत्म-हत्या करनी अच्छी नहीं, यह बड़ा पाप है दुनियाँ में इससे बढ़कर और कोई पाप नहीं है"। परन्तु उस वीर रमणी ने बड़ा उत्तर दिया—उसने कहा दुनियाँ में मेरा पति ही था जब वह दुनियाँ में नहीं है तो पत्नि का जीना भी व्यर्थ है—पति ही पत्नि की लाज—पति के बिना पतिव्रता स्त्री के लिये कुछ भी नहीं है।

कर्ण वहाँ से हताश हो लौट आया और उधर रमणी अपनी चिता की तैय्यारी करने लगी। उसने उस वक्त अपनी वाणी से मनुष्यों पर ऐसा जादू कर दिया था कि चिता एक दम तैयार होगई।

सारे शहर में धूम मच गई कि आज सती विमला चिता में भस्म होगी। मनुष्यों के झुण्ड के झुण्ड उसे देखने के लिये आने लगे। सब उसके पति प्रेम और पति सेवा की प्रशंसा करने लगे। थोड़ी ही काल में वहाँ नरमुण्डों के सिवाय वहाँ और कुछ दीखता ही न था—धीरे धीरे समय भी नजदीक आने लगा।

आइये आपको ज़रा सुरपाल की दशा भी सुनायें—भील के मुख से विमला की कैद की खबर सुन वह बड़े दुखित हुए। भील ने इतना संवाद कह अपना काम पूरा समझ तलवार से अपना शिर काट डाला। राजकुमार उस वीर की स्वार्थ त्याग, निष्कपट प्रेम तथा भक्ति को देख दंग रह गया। अब वह कुछ न समझ कुछ देर किंकर्तव्य मूढ़ हो गया। अनन्तर प्राणप्यारी की खोज में चल पड़ा।

इस तरह इधर उधर पूछते पाछते अन्त में उसे पता लगा कि वह कर्ण के यहाँ कैद है। अब इसे उसके छुड़ाने की सूझी परंतु कोई तदबीर उस समय न सूझ पड़ी। एक दिन ग्रामीण आदमियों से यह सुना कि विमला चिता में आज जलेगी। यह शब्द उसके मन में तीर के समान लगे—वह नहीं समझ सका कि क्या किया जाये समय थोड़ा है, सोचने का समय नहीं—झट एक विश्वासी घोड़े पर सवार हो चिता की ओर रवाना हुए।

जाना बहुत दूर था—समय बहुत थोड़ा था—जरा अपने मन में सोचिये—कौन ऐसा मनुष्य है जो ऐसा दुस्तर तथा कठिन काम को कर सकता हो। पर धीर वीर जन समय की कुछ परवाह नहीं करते वह अपने लक्ष पर पहुँचना ही जानते हैं। अर्जुन ने भी शाम तक ऐसा

दुस्तर काम जो असम्भव था कर दिखाया था। नैपोलियन ने तो असम्भव शब्द को ही डिक्शनरी से निकाल दिया था। केवल मन के विचार ही दृढ़ होने चाहिये आगे रास्ता साफ़ है उसमें आने वाली बड़ी २ आपत्तियाँ भी आप के रास्ते में विघ्न नहीं डाल सकतीं।

उधर सर्व जनवृन्द उस सती की धूल को अपने सिरों पर चढ़ा रहे थे—सभी इसी जल्दी में थे कि कहीं समय न बीत जाये—समय ... बिना विघ्न बाधा के बीता जा रहा था। केवल नाम मात्र का ही समय अवशिष्ट था। अग्नि चिता में लगाने ही वाली थी कि इतने में मनुष्यों का कोलाहल सुन पड़ा "ठहर जाओ" कोई सवार आ रहा है।

यह सवार कोई नहीं था यह आप का परिचित हो सवार था—सब मनुष्य भौचक्के से रह गये—आदमी ने घोड़े से कूद झट विमला को चिता से बाहर निकाला और सर्वजनों को अपना परिचय दिया कि "मैं सुरपाल हूँ" कर्ण के इस निन्दनीय काम की खूब अवहेलना की। चारों ओर शोर सा मच गया। सुरपाल ने भी ठहरना उचित न समझा खुद घोड़े पर चढ़ उसे पीछे बिठला वहां से नौ दो ग्यारह हुआ। कर्ण ने बहुतेरा पकड़ने का यत्न किया पर सब विफल हुआ। पंक्ति के शुरू से इधर राजकुमार अपने जंगली स्थान में आ गया और भीलों की सेना एकत्रित करने लगा। रानीके भी एक खूबसूरत लड़का पैदा हुआ था। धीरे २ सेना इकट्ठी कर सुरपाल ने अपने पुराने राज्य को फिर हस्तगत कर लिया। प्रजा सुरपाल को पा बड़ी प्रसन्न हुई और धीरे २ फिर वही देश पूर्ववत् हो गया।

आप ने विमला के चरित्र को सुन लिया—"किस तरह वह अपने वचनों पर डटी रही; इतने प्रलोभन और लालच दिये गये पर वह साध्वी अपने वचनों से न डिगी"—क्या कोई आज तक भारत में ऐसा नर, नारी है जो हृदय पर हाथ रख कर कह सकता हो—उत्तर यही मिलेगा, नहीं, यह सब आप की ही कमज़ोरी का फल है—आप इतने कमज़ोर हो गये हैं कि कुछ कर नहीं सकते। आप अपने मन को बलवान बनाइये—जब कि आप के देश में ऐसे २ दृष्टान्त मौजूद हैं कि जिनके द्वारा आप अपने देश की शान बचाते हैं। जिनके द्वारा आप अपने को सब देशों का सिरताज-शिरोमणि कहते हैं—अब कहने से काम न चलेगा कुछ करके भी दिखाइये—वे तो हो गये—उन्होंने तो अपने जीवन से देश का मुख उज्वल कर दिया—विमला का पति प्रेम, पति भक्ति को देख क्या किसी माता के मन में भी ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—"आप भी उसे अपनाने का यत्न कीजिये—उसे अपने अन्दर लेने का यत्न कीजिये—जिससे देश में फिर से ऐसी भारत जननियाँ उत्पन्न हो सकें, कि जिनके द्वारा देश की शान, देश का गौरव और भी बढ़ सके। तभी आपके सुनने का व पढ़ने का लाभ है।

महारानी विदुला

भारत में विदुला जैसी माताएं इस वक्त मौजूद होतीं तो
भारत इस वक्त परतंत्रता की श्रृंखला में न जकड़ा
जाता, उसके हाथ पैर हथकड़ियों से न बंधने पाते,
वह इस वक्त भी स्वतंत्रता की गोद में ही रहा होता। परन्तु भाग्य
चक्र बड़ा प्रबल है, उसका कोई पार नहीं पा सकता, उसे यही
अभीष्ट था।

महारानी विदुला जन्म से क्षत्राणी थी। इसका जन्म शाश्वत कुल
में हुआ इसलिये ये स्वाभाविक था कि जो गुण क्षत्रियों में होने चाहियें
वे सब इसमें हों। आजकल के क्षत्रियों के नहीं—प्राचीन क्षत्रियों
के। आजकल के होते तो बेड़ा पार ही था? अतः विदुला में सब क्षत्रिय
गुण कूट कूट कर भरे हुए थे। कोई गुण ऐसा नहीं था जो इसमें न
था—एक प्रकार से सब गुणों की निधि देवी ही थी।

इसका विवाह एक शूरवीर तथा प्रतापी सुवीर राजा से हुआ।
जो एक मारवाड़ी प्रदेश का राजा था। ये भी किसी गुण में कम
न थे। इनके मरने पर इनका लड़का संजय राजगद्दी पर बैठा। ये
उदयसिंह के समान था अर्थात् डरपोक था। अतः संसारीय
लोकोक्ति प्रसिद्ध होने के कारण कि "जिसकी लाठी उसकी भैंस"
बलवान सदा निर्बल को हड़पने का सोचता है। अवसर पा सिन्ध
देश के राजा ने इस पर चढ़ाई कर देश जीत लिया। संजय डर के मारे

जंगल में भाग गया। उसे अपनी जान का डर था, न कि राज्य तथा अपमान का।

पति के जीवन लीला त्याग करने पर विदुला राजकीय बन्धनों को छोड़ वन में आकर निशिदिन हरि ध्यान में रत रहती थी। उसे किसी प्रकार की संसारीय चिन्ता न थी—हाँ कभी २ राज की खबर इधर उधर से सुन लेती थी। जब कि उसने यह वृतान्त सुना तो उसका चेहरा क्रोध के मारे तमतमा उठा। एकदम संजय के पास आई जहाँ वह जंगल में रहता था और इस प्रकार समझानी प्रारम्भ किया।

हे संजय! तू मेरा पुत्र नहीं। तू किस बांझ मां के कोख से उत्पन्न हुआ। तेरा घराना क्षत्रिय कुल नहीं। अगर तू मेरा पुत्र होता – अगर तू मेरी कोख से उत्पन्न हुआ होता—अगर तूने मुझ जैसी क्षत्राणी शेरनी का दूध पीया होता—तो रणभूमि से इस तरह भाग कर न आता—इस तरह मृत्यु का मोह न करता—इस तरह मेरा नाम तथा कुल का नाम कलंकित न करता बल्कि शत्रुओं को मैदान से भगाकर आता अथवा स्वतंत्रता देवी के गीत गाता हुआ रणभूमि में ही अपने प्राणों की आहुति दे देता। जिससे तेरा नाम सदा के लिये अमर हो जाता और कुल का नाम भी उज्वल हो जाता। अगर जीत के आता तो तेरा यश चहुँदिशि में फैल जाता—तेरा राज्य बढ़ता—कुल का नाम चमकता और साथ में माता पिता का नाम रोशन होता। परन्तु जो तू इस तरह रणांगण से भाग कर आया है, इससे तूने कुल का तथा अपना नाम कलंकित कर लिया है। इसका प्रायश्चित यही है कि एक बार फिर रणांगण में जाकर युद्ध का डंका बजा दे, उसमें शत्रुओं

का विध्वंस करदे या स्वयं वीर गति को पाकर नर्कंकुल में चला जा। जिससे तेरा यह कलंक का टीका धुल जाये, जिसके धुले बिना यह तुझे तथा कुल को तमाम उम्र भर कलंकित करता रहेगा। अतः अगर तू मेरा पुत्र है तो जा फिर युद्ध को, यही मेरा तेरा प्रति संदेशा है।

मोह निद्रा में वशी भूत संजय निज जननी के इस प्रकार के वचनों को सुन बड़े ही आश्चर्य में हो गया—वह एक दम निस्तब्ध हो गया—उसे मन में यह विश्वास ही न था—कि मेरी माता मुझे इस तरह कहेगी। मोह निद्रा में सुप्त संजय कहने लगा "कि हे माता मेरे पास सेना नहीं—मेरे पास दौलत नहीं—किस वस्तु के द्वारा मैं शत्रुओं का सामना करूं—मैं केवल तुझे ही अपना सहायक तथा रक्षक समझता था—परन्तु तुमने भी मुझे कोरा जवाब दे दिया। अब मैं किस के पास जाऊँ।"

विदुला पुत्र के ऐसे भीरु वचनों को सुन उसे फिर कहने लगी। हे पुत्र! तेरे पास सेना इतनी बड़ी है कि उसके आगे कोई शत्रु सेना नहीं ठहर सकती। तेरे पास धन इतना है कि जो कभी समाप्त नहीं हो सकता। वह कौन २ से हैं साहस तथा धैर्य—"तू साहस करके फिर एक बार अपनी बिखरी हुई सेना को एकत्रित कर ले। उन्हें धैर्य रूपी धन से प्रसन्न कर दे। बस तेरी मनो कामना पूर्ण हो जायेंगी। अगर न हो, तो स्वर्ग का द्वार तेरे लिये खुला है। उसमें पहुंच कर तुझे किसी प्रकार का क्लेश न होगा। मरना सबको है—ये संसार का चक्र है, इससे कोई नहीं बच सकता। परन्तु भेद इतना ही है कि किसी के मरने पर मनुष्य उसके गुणों को याद करता है और किसी को पूछता भी नहीं। अतः तू इन संसारीय बातों को समझ, मोह की नींद तोड़

है । अब वीरता का रस पान कर । जिससे तेरे शरीर में पिता के समान वह ओज वह उत्साह व साहस आवे कि तेरे मन में यही भर जाये कि संसार में जो कुछ है वह यही है ।

इस प्रकार माता की ओजस्विनी तथा वीरता मयी वाणी को सुन सचमुच संजय के हाथ पैर फड़कने लगे । पता नहीं रुधिर का कहाँ से संचार हो गया, आँखों में खून टपकने लगा । बस एक दम माता के चरणों पर गिर परा । और कहने लगा मां क्षमा करो मैं अंधकार सागर में डूबा हुआ था अब मेरी मोहनिद्रा टूटी । अब मुझे संग्राम में जाने के लिये आज्ञा दीजिये ।

माता भी पुत्र के वचनों को सुन बड़ी प्रसन्न हुई और अपने हाथ से उसे कपड़े तथा तलवार बांधी । तदन्तर विजय के आशीर्वाद के साथ उसे विदा किया ।

इधर संजय ने आकर, अपनी बिखरी हुई सेना को एकत्रित किया । सैनिकगण निज नायक में इस प्रकार साहस तथा उत्साह को देख, उनका भी खू उबलने लगा । सब के मन में साहस का संचार हुआ धीरे २ वहाँ सेना एकत्रित होने लगी और कुछ दिनों में ही युद्ध लायक सेना इकट्ठी हो गई ।

जासूसों द्वारा उधर के राजा ने भी युद्ध का हाल सुना वह भी सतर्क था । परन्तु भेद केवल इतना ही था "एक की सेना के प्रत्येक सूरमा में उत्साह साहस का नव संचार था वे प्राणों की बाजी लगा कर लड़ने आये थे "। बड़ा लोमहर्षण युद्ध हुआ परन्तु इस प्रकार संगठित सेना ने अपनी वीरता और धीरता से शत्रुओं को खदेड़ ही दिया शत्रु उनके

अतुक आक्रमण को सहन न कर सके और रणभूमि से भाग गये। विजय की खबर सुन विदुला स्वयं रणभूमि में आई और पुत्र के माथे को चूमा और उससे कहा हे पुत्र तू मेरा सच्चा पुत्र है। सारे शहर में विजय-खुशियाँ मनाई जाने लगी। प्रत्येक प्राण आग में नया जोश दीखता था। इस तरह सारा शहर खुशी-नाद से गूंज उठा और संजय बड़ी अच्छी तरह राजकार्य करने लगे। सब प्रजा जन उन से प्रसन्न थे।

पाठक! देखिये किस प्रकार एक हताश जन के अन्दर जिसका हौंसला बिलकुल टूट गया हो उसके अन्दर फिर से नया उत्साह तथा साहस भरना उस देवी विदुला का ही काम था। जिसने अपनी ओजस्विनी वाणी से उसकी मोहनिद्रा तोड़ दी। अगर आजकल की तरह कोई पुत्र होता तो वह अपनी माता को क्या जवाब देता यह आप स्वयं ही अपने मन में सोच सकते हैं। तथा किस प्रकार उस अकेले व्यक्ति ने इतना हौंसला कर जब कि वो बिलकुल निराश हो चुका था फिर एक बार आग में अकेला कूद पड़ा। अगर आजकल की तरह किसी प्राणी से अकेला वन में रहने के लिये कहें, तो उसमें इतनी हिम्मत तथा साहस भी न होता कि वह इसका उत्तर भी दे सकता। यही तो कारण है कि भारत वासी दिन प्रति दिन परतंत्रता की श्रृंखला में जकड़े जा रहे हैं। वह अपने पैर खड़े नहीं हो सकते—उन्हें सरकारी नौकरी करना ही पसन्द है। वे इतने दास व गुलाम हो गये हैं कि वे अपने आप इसका ज्ञान भी नहीं कर सकते "कि हम गुलाम हैं" करें क्यों नौकरी ने ही भारत को तबाह कर दिया। जब एक अमेरिकन लड़का १

वर्षे में ही माता पिता से बिलकुल अपना सम्बन्ध छोड़ सकता है और अपने पैर खड़ा हो सकता है तो एक भारत का लड़का जो कि अपने आपको राम कृष्ण आदि की संतान कहते हैं तथा अपने आपको भारत का सुपूत कहते हुए नहीं हिचकते—तमाम उम्र भर वृद्ध पिता का आश्रय देखते रहते हैं। उन्हें यह देखकर शर्म नहीं आती। यह आप स्वयं ही सोच सकते हैं। अगर आती होती तो इस दृढ़ निश्चयी संजय की तरह "शत्रु का नाश करना है या युद्ध में मर जाना है इस का ख्याल क्यों नहीं मन में जागृत होता" ?

या यों कहिये कि नौकरी करते करते उनके दिल ऐसे हो गये हैं कि उनके दिलों पर चोट ही नहीं लगती कि हम गुलाम है! कि हम दास हैं !! कि हम परतंत्र है !!! उनके दिल पत्थर से भी कठोर से कठोर हो गये हैं। हे वीर संजय ! तेरे जैसे सुपूतों की ही भारत में आवश्यकता है तेरा जीवन धन्य है! तेरा कुल धन्य है !! तू अपना मूल मंत्र क्यों नहीं देश में एक बार फूंक देता—"कि हे भारतवासियों हताश होने पर भी, आपत्तियाँ आने पर भी, इनसे बचना और इनका सामना करना सीखो। तभी ये भारत भूमि स्वतंत्रता का गीत गा सकेगी। तभी ये रामभूमि, कृष्ण भूमि कहा सकेगी।"

सुकन्या

एक बार महाराजा ययाति रानी तथा कन्या सुकन्या और नौकर चाकरों के साथ एक सघन वन में जा निकले। वहां एक सुन्दर बाग तथा लता कुञ्जों को देख सब वहीं आनन्द क्रीड़ा तथा जल क्रीड़ा के लिये ठहर गये। उस से कुछ ही दूरी पर एक सुन्दर कुटी बनी हुई थी।

इसी वन में इसी स्थान पर भृगु ऋषी के पुत्र च्यवन ऋषी का आश्रम था। दिन रात तपस्चर्या में रहने के कारण इन को अपनी देह की बिलकुल सुध बुध नहीं थी। वर्षों एक ही तपस्चर्या में बीत जाता था। इस वक्त भी ये कई वर्षों से घोर तपस्या कर रहे थे शरीर पर मिट्टी ने अपना राज्य कर लिया था। कोई नहीं कह सकता था कि यहां कोई नर बैठा हुआ तपस्या कर रहा है। और ये ख्याल भी आना कठिन था जब कि वह स्थान बिलकुल धरा ने अपनी ही तरह कर लिया हो।

पाठक वृन्द। आइये पता नहीं क्या दुर्घटना होने वाली है। क्या गुल खिलने वाला है। उधर आनन्द क्रीड़ा करती हुई सुकन्या अपनी सहेलियों सहित उस स्थान से कुछ दूर पहुंची वहां मिट्टी के ऊँचे ढेर में दो मोती से चमकते देख सुकन्या ने तिनके से निकालना चाहा—चुभाने की देर थी कि उस में से रुधिर की धरा बह निकली। दुर्भाग्य ने अपना खेल कर ही दिखाया। सुकन्या एक दम चकित हो गई उसे क्या मालूम था, कि ये मोती किसी ऋषी की आखें होंगी—उसने अज्ञातवस ऐसा

कुकर्म किया था। बालिकाओं का खेलना तथा चंचल स्वभाव होना स्वाभाविक ही है। झट दौड़ती हुई अपने पिता के पास गई और सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

राजा वृत्तान्त को सुन समझ गया कि अज्ञानवश कुमारी से च्यवन मुनि के नेत्र फूट गये हैं जल्दी से घटना स्थल पर पहुंचे। वहां जाकर देखते हैं कि आँखों से रुधिर झर झर बह रहा है मुनि वेदना से पीड़ित हैं। राजा ने बड़ी कंपित स्वर में कहा—हे मुनिवर! मेरी पुत्री से अज्ञानवश यह भीषण कांड हो गया है—यह अभी अबोधा है। इसे अभी संसार का कुछ पता नहीं है। अतः आप इस पर क्रुद्ध न होइये दया दृष्टि कीजिये—गलती से हुए अपराधों को मुनि जन क्षमा करते हैं।

राजा के इन वचनों को सुन ऋषी ने कहा हे राजन्! आप का कहना अक्षरसः सत्य है। मुझे कुमारी पर क्रोध नहीं है, परन्तु मेरा भी सोचिये—कि मेरा साहारा कौन—अब मैं असहाय हो गया हूं। राजा ने कहा—मुनिवर! मैं इस का सब प्रबन्ध करा दूंगा। इसके लिये आप कुछ चिन्ता न करें। परन्तु ऋषि ने कहा हे राजन् आपको यदि वास्तव में मेरी चिन्ता है तो कुमारी को ही मेरे हाथ सौंप जाइये। जिससे मैं उम्र भर निश्चिन्त हो जाऊँ। राजा मुनि के ये वचन सुन आपत्ति सागर में डूब गया—वह कुछ समझ न सका कि क्या करूँ—परन्तु पुत्री अपने पिता को इस तरह दुःख सागर में डूबते देख बड़ी खुशी से बोली—हे पिता आप कुछ चिन्ता न कीजिये मैं बड़ी खुशी से मुनि की बात मानने को तैय्यार हूँ। राजा और रानी अपनी सुन्दरी कन्या को एक जंगली बनवासी के हाथ सौंपना बड़ा

कष्टप्रद प्रतीत हुआ—वे अपनी लाड़ली पुत्री को छोड़ना नहीं चाहते थे—परन्तु क्या करें, बेबस थे, लाचार थे, भावीचक्र ही ऐसा था, उसे कोई मेट नहीं सकता था। कुमारी बड़ी खुशी से मुनि के पास चली गई। राजा ने बहुत मना किया परन्तु वह अपने वचनों पर सावित्री के समान अचल रही। हताश हो राजा और रानी अपनी राजधानी को लौट आये।

इधर सुकन्या दिन रात पति सेवा करने में न चूकती ठीक समय पर सब सामान तैयार रखती। पति भी उसकी सेवा से संतुष्ट था। इस तरह से बड़े आनन्द के साथ वह अपने दिन बिताने लगी।

एक बार जब कि सुकन्या हवन के लिये लकड़ियाँ चुन रही थी—अकस्मात् उसने देखा कि सूर्य पुत्र देव चिकित्सक दोनों अश्विनी कुमार इधर ही आ रहे हैं। सुकन्या एक दम उठ खड़ी हुई और इतने में वे भी आ गये। आते ही उन्होंने बड़े मधुर तथा मीठे स्वर में पूछा—हे सुन्दरी तू कौन है तेरा निवास्थान कहाँ है—तू क्यों वन में भटक रही है! चल हमारे साथ—हम तुझे आनन्द से सुख संपति का भोग करायेंगे। परन्तु वह पतिव्रता स्त्री इन चिकनी चुपड़ी बातों में कब आने वाली थी। उसने कहा हे सूर्य पुत्र! तुम्हारे मुंह से ये बातें शोभा नहीं पातीं—तुम एक पतिव्रता स्त्री को छलने आये हो—उसे अधर्म पथ में गिराना चाहते हो—उसे सत्य पथ से हटाना चाहते हो—ये नहीं हो सकता। तुम अतिथि रूप में मेरे यहाँ आये हो—अतः मेरा कर्तव्य है कि तुम्हारी अतिथि सेवा करूँ परन्तु तुम्हारे इस व्यवहार को देख बड़ी लज्जा आती है"।

कुमारी के इन वचनों को सुन कर ये बड़े खुश हुए और उसने कहा "हे पुत्री वर मांगो हम तुम्हारी मनोकामना को पूर्ण करेंगे।" उनके इन वचनों को सुन कुमारी बड़ी खुश हुई और उन्हें अपने आश्रम में ले गई। वहाँ मुनिवर से सब वृतान्त कहा। वे सुन कर बड़े प्रसन्न हुए और वैद्यराज ने उनके दोनों नेत्रों को फिर ज्योतिमय कर दिया तथा देह को भी नीरोग कर दिया अब उनका वह ही शरीर एक सुन्दर राजकुमार के सदृश हो गया। कोई नहीं समझ सकता था कि ये वे ही च्यवन मुनि हैं। माता पिता भी इस वृतान्त को सुन बड़े खुश हुए और अपने आप को सौभाग्य शाली समझा। सारे शहर में खुशी के बाजे बजने लगे। और सुकन्या बड़े आनन्द के साथ अपना जीवन व्यतीत करने लगी।

आपने इस रानी साध्वी नारी के चरित्र पर एक (नजर) झलक फेर डाली। इसे अब आप अपनी माताओं में लाने का यत्न कीजिये ताकि इस गाथा का लिखना सुनना और पढ़ना सफल हो सके ताकि भारत में फिर से ऐसी विदुषी शिक्षित पतिव्रता स्त्रियाँ उत्पन्न हो सकें। सुकन्या में त्याग आदर्श था—राज्य सुख पर लात मारना एक राम जैसे दिव्य पुरुष का तथा सुकन्या जैसी एक देवी की ही ताकत थी।

गोपा
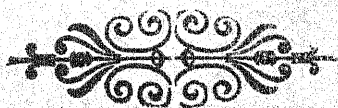
पाठक ! आइये आप को कुछ पीछे पीछे का समय दिखलाये। उस समय हम आर्यावर्त की क्या दशा थी। किस तरह अंधकार के गड्ढे में गिरा हुआ था। और दिनों दिन अवनति पथ की ओर जा रहा था। यदि उस समय इस दिव्य महान् व्यक्ति का प्रादुर्भाव न होता तो दुनियाँ का निराला ही रंग होता — इतिहास के सुवर्णीय पत्रे पता नहीं किन अक्षरों में भरे पाते।

उस समय सारा जगत हिंसा पथ पर आरूढ़ था। छोटी जातियों के साथ उच्च जाति वाले नीचता का व्यवहार करते थे। अगर हम ठीक आधुनिक संसार की तुलना उस समय से करें तो अनुचित न होगा। आजकल भी भारत की यही दशा है "छोटी जातियों से उच्च जाति वाले जिस बर्बरता व पशुता का व्यवहार करते हैं वह आप सब की आंखों से छिपा नहीं," वे अपने भाइयों को अपने में मिला नहीं सकते—उनको पढ़ने का अधिकार नहीं दे सकते—उन की परछाई पड़ने से अपने को अपवित्र समझते हैं। इत्यादि कारण जो हम इस वक्त आंखों से देख रहे हैं, ठीक उस वक्त भी आर्यावर्त की यही शोचनीय दशा थी। उस समय सच्चा मार्ग सच्चा धर्म बतलाने के लिये गीता के वचनानुसार "यदा यदाहि धर्मस्यग्लानिर्भवति भारत—

अर्थात् धर्म के नाश होने पर मैं देह लेकर पृथ्वी पर अवतरण करता हूँ। किसी महान् व्यक्ति के अवतरण की आवश्यकता थी।

ऐसे कुटल चक्र के समय कपिल वस्तु नगर में शाक्य वंशीय-वंश में राजा शुद्धोदन के यहाँ महामाया के गर्भ से महात्मा बुद्धदेव का अवतरण हुआ। गर्भ से कुछ दिन बाद ही माता स्वर्ग लोक सिधारी परन्तु गौतमी देवी ने बड़ी अच्छी तरह पालन पोषण किया। इनका प्रथम नाम सिद्धार्थक था। जन्मते ही ये कमल की तरह बढ़ने लगे। जो मनुष्य इसे देखता था प्रभावित हुए बिना न रहता था। प्रारंभ से ही ये दीनों के दुःख में, दुखियों के दुःख में भाग लेते थे। अतः सब प्रजाजन इनसे प्रसन्न थे।

शुद्धोदन पुत्र के वास्तविक स्वभाव को देख बड़े दुखित थे। उन्होंने कितना ही चाहा कि पुत्र राज-सुख भोगों में फँस जाये—तरह तरह के लालच दिखाये—यहाँ तक कि राजा दण्डपाणि की सुन्दर कन्या गोपा के साथ छोटी ही उम्र में इनका विवाह भी कर दिया। परन्तु उसके विचारों में कुछ अन्तर नहीं आया।

एक दिन शाम के समय एक वृद्ध मृतक के शव को देखकर बुद्ध ने अपने मंत्री से पूछा—कि हे मंत्रीवर! ये क्या लेजा रहे हैं—मंत्री ने उत्तर दिया हे राजन्—यह एक वृद्ध मृतक का शव है। श्मशान लेजा रहे हैं। राजा उसके वचनों को सुन अपने मन में सोचने लगा कि "यह क्या सब की दशा होती है तो इस भयंकर वस्तु से तो अवश्य बचना चाहिये" उसी वक्त मंत्री से कहा "कि रथ को वापिस ले चलो"। बुद्धदेव महल में आकर इसी सोच में डूब गये। रात को जाने का

अच्छा अवसर देख राजकीय वस्त्रों को त्याग घोड़े पर चढ़ जंगल की ओर प्रस्थान किया।

प्रातःकाल राजमहल में बुद्ध को न देख सारे शहर में कोलाहल मच गया। सब प्राणी शोकसागर में डूब गये। गोपा के दो एक दिन में ही पुत्र उत्पन्न हुआ था—अतः वह बन न जाने को लाचार थी। परन्तु फिर भी पति धर्म में दीक्षित गोपा ने अपने राजकीय वस्त्रों का त्याग कर दिया और एक सन्यासिनी के सदृश रहने लगी। इस तरह वह निशि-दिन पति ध्यान में ही रत रहती थी। राजकीय सब सुखों को वह छोड़ चुकी थी। बस केवल पति के ही सुख में अपने को सुखी समझती थी।

उधर भगवान् बुद्धदेव अनेक धर्मात्मा तथा साधुओं से मिलता हुआ उनसे सच्चा ज्ञान प्राप्त करता हुआ अंत में वह बोधी वृक्ष के नीचे ६ वर्ष तक कठोर तप किया। अनन्तर देश देश में जाकर बुद्ध धर्म का प्रचार करने लगा। इस धर्म में मनुष्य स्वतः ही आने लगे। जैसे चुम्बक लोहे को खींच लेता है वैसे लोग भी इसमें लोहवत् खिंचे आने लगे। थोड़े ही काल में इस धर्म में बहुत जन हो गये और दूर दूर इस धर्म का प्रचार होने लगा।

प्रचार करते २ एक बार बुद्ध देव अपने राज्य में जा निकले। पिता बुद्ध के आगमन को सुन बड़े प्रसन्न हुए उनकी इतने दिनों की विरहाग्नि आज शान्त हुई। सकल प्रजा खुशी के मारे कुप्पा हो गई। किसी के खुशी का आर पार न था सब का मन इसी ओर लगा हुआ था।

गोपा ने पति देव के चरणों में मस्तक रखा और अपने पुत्र राहुल को भी पिता के दर्शन के लिये भेज दिया। राहुल पिता के पास जा

पितृधन माँगने लगा। संन्यासी पिता ने उसे अपने धर्म में दीक्षित किया।

इसके बाद कुछ दिन वहाँ रह बुद्ध देव घूम घूम कर नये धर्म का प्रचार करने लगे। लोगों को बतलाने लगे "हे प्रजाजनों! इस सच्चे धर्म में आओ, इसके द्वार खुले हुए हैं, इसमें किसी को आने की रोक टोक नहीं, यह राजा, महाराजा और दीनों और कंगालों के लिये एक समान है।" इस तरह बुद्ध धर्म का प्रचार करते हुए एक बार फिर अपने राज्य में जा निकले। उस समय उन के पिता इस लोक से विदा हो चुके थे। सारे देश में बुद्ध धर्म की नींव खूब लग चुकी थी—गोपा तथा अन्य स्त्रियों ने भी इस धर्म में दीक्षा ले ली और बड़े उत्साह के साथ धर्म प्रचार करने लगी।

इस तरह इस धर्म में दीक्षित होकर गोपा ने यत्र तत्र इस धर्म की आवाज फूंक दी। बुद्ध के इस धर्म में लोग टिड्डीदल की नाईं आने लगे। पता नहीं इस धर्म में क्या विद्युत खैचाव था कि मनुष्य खिंचे बिना न रह सकता था। सारे शहर में "अहिंसा परमो धर्मः" की आवाज गूंज उठी। बड़े २ राजा तथा महाराजा अशोक आदि इस धर्म की दीक्षा में आगये सारे भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का डंका बजने लगा।

पाठक वृन्द! आइये मैं आप के सामने बुद्ध का इतिहास बताने नहीं आया। आइये दृष्टि बदलिये विदुषी गोपा की ओर दृष्टि घुमाइये। जिसने पति के संन्यास लेने पर स्वपथ को किस तरह निभाया। उस में कोई त्रुटि न होनी पाई। समस्त राज सुखों और ऐश्वर्यों के उपस्थित होते हुए उसी जगह एक सन्यासिनी की तरह

रहना कितना कठिन है। यह आप स्वयं सोच लीजिये। इसे ज़रा अपने मन में गम्भीरता से विचार कीजिये।

इतने भोग विलासों के बीच में रहते हुए किस का मन डगमगा नहीं जाता। किस की आँखें लुभा नहीं जाती। किस की जिह्वा में पानी नहीं आ जाता—जिसे छोड़ कर योगी मुनिजन, ऋषि वन की राह लेते हैं। वहां उस सती ने समस्त सुखों के उपस्थित रहते हुए एक संयमी धीरता के सहारे सन्यासिनी व्रत को निभाया। यह उस सती गोपा जैसी ही सच्चरित्र रमणियों का हस्तकौशल हस्तलाघव था।

उस में आजकल की तरह कि कोई बाहर से आया झट पर्दा कर लिया—या मकान में चला जाना इन आदतों का बिलकुल अभ्यास न था। वह हर एक के मकान में निर्भय चली जाती और स्त्री धर्म की सच्ची बातें बताती। उस समय भी पर्दा करने का रिवाज था। पर आज कल की तरह भर मार न थी। "पर्दे से कुछ लाभ नहीं जब मन साफ नहीं, जब मन साफ है तो पर्दे की आवश्यकता नहीं, पर्दा पाप के लिये, स्वर्ग के लिये पर्दा कहाँ" चाहे आप कितना पर्दा करें कितनी अपनी धर्म शीलता और सजीलापन दिखायें परन्तु जब मन साफ नहीं तो ये सब करना वाह्याडम्बर है, धोखा है, नहीं नहीं विश्वासघात है इस से आप अपने को दूसरों को तथा बन्धबान्धव बन्धु वर्गों को ठगो, परन्तु उस सर्वव्यापक प्रभु की आँखों में धूल नहीं झोंक सकती, उसके सामने अपना सच्चा बयान देना ही पड़ेगा और उसे भी सच्चा न्याय करना पड़ेगा। क्यों कि वह न्यायकारी है। अतः "हे भारत की लाज बचाने वाली माताओं इस पर्दे को अपने कुक

में से निकालो—उस सती गोपा की तरह मन को अन्दर और बाहर से साफ कर लो", फिर पर्दे की क्या आवश्यकता। फिर उस गोपा की तरह कहीं भी जाने में पाप व डर न लगेगा। हर एक जगह स्वच्छन्दता पूर्वक स्वछन्द विहार कर सकोगी। इस पर्दे के ही कारण भारत इतनी अवनति को पहुँच गया है। अगर माताओं भारत की लाज बचानी है अगर भारत की शान बचानी है तो इस पर्दे को अपने अंदर से निकाल दो। पर्दा पाप के लिये—सुख के लिये पर्दे की अवश्यकता नहीं।

इस पर्दे ही के कारण इस आधुनिक समय में जो जा अत्याचार हो रहे हैं वह आप सब की आंखों से छिपे नहीं। पर्दे का मतलब यह नहीं कि स्त्रियें निर्लज्ज हो जाये धर्म विमुख हो जाये—और स्वछन्दता पूर्वक जहाँ चाहे वहाँ विहार करें। बल्कि मन को सोने की तरह साफ कर पर्दे रूपी आडम्बर को निकाल उस साध्वी गोपा की तरह देश की हाल को जान अपने कर्तव्य पथ पर चलती हुई देश को जाति को उठाने में सहायक बन सकें।

चाँदबीबी

कुछ समय पूर्व बहमनी राज्य संपूर्ण दक्षिण में व्याप्त था समस्त राजा उसकी धाक को मानते थे और उस समय बड़े बड़े राज्यों में उसकी गणना होती थी। पर संसार चक्र के फेर में आ उस विशाल राज के भी कितने हिस्से हो गये जिनमें से एक प्रसिद्ध भाग अहमद नगर भी था। वहाँ के सुल्तान की पुत्री का नाम चाँद था। यह चाँद वास्तव में चाँद-ही थी इस पुत्री को पा सुल्तान अपने को धन्य समझता था।

आज इसी चाँद की जीवनी पर कुछ झलक डालनी है। चाँद समस्त गुणों की खान थी, कोई गुण ऐसा नहीं था जो इस वीर रमणी में न हो—इसमें सुशिक्षता, सच्चरित्रता सहिष्णुता धीरता, वीरता, राजकुशलता, नीतिपटुता, तथा संगीत कला में सिद्धहस्त थी। इसी के कारण ये देश इतने दिनों तक स्वतंत्रता के गीत गा सका इसी के कारण इस देश का नाम आजकल सुनाई पड़ता है तथा इतिहास के पृष्ठों पर सुवर्णीय अक्षरों में लिखा हुआ है। यह सब इस देवी का आत्मत्याग-स्वार्थत्याग था। जिसने मुगल सम्राट दिल्लीश्वराधिपति अकबर के तमाम जीवनी में कलंक का टीका लगा दिया! जो कभी दुनिया से मिट नहीं सकता उसके मुँहको काला कर दिया!! यह कौन रमणी थी यह वीरचाँद ही थी !!!

इसका विवाह बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह से हुआ। जिससे बहमनी राज्य की और भी उन्नति हुई। परन्तु दुःख है कि इस जननी से कुल विधाता ही रुष्ट थे शुरू से आखिर तक इस रमणी ने कष्टों का जिस धीरता और वीरता से सामना किया उसे देख दांतो तले उंगलियां देनी पड़ती है मुँह बन्द कर देना पड़ता है।

निसन्तति होना स्त्री के लिये कितनी दुःख की बात है परंतु इस पर भी भाग्य को रहम न आई सन् १५८० ई० में इसे प्राणपति का भी वियोग देखना पड़ा जो जले हुए पर नमक की तरह हुआ। परन्तु इस वीर रमणी ने दिलको मज़बूत कर अपने भतीजे इब्राहीम आदिलशाह को राज्यगद्दी पर बैठा स्वयं राजकाज देखने लगी। जिससे हृदयाग्नि कुछ शान्त हुई। परन्तु अभी कुछ काल ही राजकाज चलने पाया था कि बड़ी भयंकर विश्वासघात की आंधी चली। जिसने कीया कराया सब स्वाहा कर दिया जितने विश्वास पात्र नौकर चाकर तथा सैनिक, थे सब के मुंह में तृष्णा का लालच आया सब के सब यही सोचने लगे कि यह राज्य मेरे हाथ लगे इसका उपभोग मैं करूँ फिर क्या था सब अपने कर्तव्य पथ से विमुख हो गये। सब अपना अपना मौका देखने लगे। सरदार किशवर खाँ ने तो न्याय को चकमा ही दे दिया था धर्म तो उसके लब पर था ही नहीं उसने विश्वासघात के कौशल से चाँद और सुल्तान को कैद कर सितारे के दुर्ग में भेज दिया और स्वयं राजकाज देखने लगा पर इसे भी कटी ही खानी पड़ी अभी कुछ काल ही श्री का उपासक बना था कि अपने कुकर्म के कारण इसे भी मृत्यु से हाथ धोना पड़ा।

इस तरह राज में चारों ओर गृह लड़ाई ने ज़ोर पकड़ा। सब अपने अपने समुदाय को बढ़ाने की कोशिश करने लगे। गृह युद्ध को देख आस पास के राजाओं को संग्राम करने का अच्छा अवसर मिला। ठीक चीन की तरह गृह युद्ध का हाल था' ठीक जिस तरह आजकल वहाँ गृह युद्ध ने आपस में कलह मचाई हुई है वैसे ही उस वक्त अहमद नगर का हाल था। परन्तु फिर भी ही ईश्वर की कृपा से ये अपने स्वदेश नाश को नहीं देख सकते थे जिसके कारण इतना गृहकलह होते हुए भी इसने अपनी सत्ता को कुछ काल तक कायम रखा और फिर अपने ही द्वारा अपना विनाश किया। परन्तु चीन में राष्ट्र शक्ति का ज़ोर है उसने अपने स्तत्व को जान लिया है यही कारण है कि गृह कलह होते हुए भी अन्य राष्ट्र उससे युद्ध करने में हिचकते हैं और वह दिनों दिन उन्नति के शिखर पर जा रहा है, और कोई समय आयेगा कि वह परतंत्रता की बेड़ियों को काट देगा।

कितनी बार बाहरी शत्रुओं ने अपना दाव चलना चाहा परन्तु स्वदेश प्रेमी स्वामिभक्त इकलासख़ाँ सरदार ने किसी की दाल गलने न दी इसने प्राण प्रण से देश की रक्षा की। परन्तु अकेला कब तक कर सकता था जब कि गृह फूट ने भीतर भीषण कांड मचाया हुआ हो। बाहरी राजाओं ने फिर सिर उठाया परन्तु वीर सुल्तान ने जिस तरह रण कौशल दिखाया कि शत्रुओं को उलटी मुंह की खानी पड़ी। सेना ने अपनी नायिका के इस उत्साह को देख रण करने में पीछे न रह सके। वे भी प्राणों की आशा त्याग लड़ने लगे, फिर क्या था शत्रुओं के पैर उखड़ गये वे इस वीर रमणी की सेना के आगे न ठहर

सके । इस तरह इतने कष्टों के उपस्थित होते हुए भी इस रमणी ने किस तरह डूबते हुए देश को बचा लिया । सब सैनिक इसके उत्साह साहस को देख दंग रह गये । किसी की हिम्मत न पड़ी कि राज काज में दखल दे । इस तरह राज्य में कुछ शान्ति हुई । परन्तु दुष्ट कब मौका छोड़ते हैं उन्होंने देश भक्त देश प्रेमी वीर इकलासख़ाँ की आखें फोड़ दी जिससे वह सदा के लिये बेकाम हो गया । पर चाँद ने राज की नींव को संभाल लिया । गिरते हुए राज्य को तिनके का सहारा मिल गया—इसने बड़ी दक्षता और नीति परायणता से सब राज की लगाम अपने हाथ में कर ली । देश में सर्वत्र शान्ति हो गई । कोई युद्ध का बखेड़ा न रहा । देश की उन्नति दिन प्रति दिन होने लगी, जिससे आस पास के शत्रु मन ही मन जलने लगे । परन्तु वे करते क्या बेवश थे उस वीर रमणी के आगे किसी की नहीं चलती थी । यह जो आप आज तक बीजापुर का नाम सुनते हैं । उसके गुणगान सुनते हैं । यह सब उस चाँद की ही करामात थी । कि जो आज भी भारत के बड़े बड़े राज्यों में उसकी गणना होती है जिसका साक्षी इतिहास अपने सुवर्णीय अक्षरों में दे रहा है ।

चाँद ने इब्राहीम आदिलशाह को राज योग्य समझ तथा राज अवस्था देख उसे राज काज सौंप दिया और स्वयं शान्ति से अपना जीवन व्यतीत करने लगी । पर चाँद के जीवन में आनन्द कहाँ । सुख कहाँ—उसे तो आफ़तों से ही सामना करना था । राज काज से अलग होते हुए भी वह इब्राहीम को राजकाज में पूर्ण सहायता देती थी । इस तरह वह राजकाज चलाने लगा ।

परन्तु इसी बीच में अशान्ति की लहर ऐसी उठी कि उसे शान्त करने में सुल्तान ने अपनी जान ही गवाँ दी। बस अब क्या था फिर पहले जैसा जमाना आगया—लोग मनमाना काम करने लगे कोई किसी की सुनता न था। इस अराजकता का यह कारण उपस्थित हुआ कि शत्रुओं के हौंसले बढ़े और इस अवसर पर अकबर के मुंह में भी पानी आगया। उसने एक विशाल सेना मुराद की अध्यक्षता में दक्षिण की ओर चालान की।

यह सब गृह युद्ध का ही कारण था इसमें मुख्यतः दो पक्ष बड़े २ हो गये थे। एक तो वह था जो कि मृत सुल्तान के लड़के को ही राज्य पर बैठाना चाहता था और दूसरा पक्ष अन्य को चाहता था इसी पर यह सब बखेड़ा चल रहा था जिस के कारण उन्हें अपनी किसी प्रकार की सुधबुध न थी। परन्तु बाहर से शत्रु को आते देख इनकी आखें खुली और अपने पैर अपने आप कटते देख अब पछताने लगे परन्तु अब पछताने का समय नहीं था। अब तो यहाँ कुछ समय में रणचंडी का नाच होने वाला था। शुक्र हुआ कि ईश्वर को इतनी जल्दी अधः पतन अभीष्ट न था इतनी बार ये दशा उपस्थित हुई परन्तु इनकी आखें न खुली। यह सब परीक्षा का ही अवसर था बच चाहो तो बच जाओ नहीं तो सदा के लिये हथकड़ी पहन लो।

ये कुअवसर देख दोनों समुदाय बड़े चक्कर में पड़े सब ने मिल कर उस शेरनी चाँद को आने का सहर्ष निमंत्रण दिया। उस देवी ने भी उस सच्ची देवी सेवा देश रक्षा करने वाली देवी ने संकटावस्था देख मातृ भूमि की रक्षा के लिये अपने आप को बलिदान

कर दिया और उनके निमंत्रण को नहीं बल्कि युद्ध निमंत्रण को सहर्ष स्वीकार किया।

चाँद के आगमन के हाल को सुन सब नगरवासी खुशी में डूब गये सारे देश में एक बार फिर शान्ति का स्रोत बहगया। इसने अपने भतीजे को राज गद्दी पर बैठाया और सेना का नियन्त्रण करना शुरू किया थोड़े ही अरसे में इसने बिखड़ी हुई सेना को एक सूत्र में संगठित कर दिया। सेना के प्रत्येक वीर में उत्साह था, साहस था तथा रगरग में खूं उबल रहा था भुजायें फड़क रही थीं, तलवारें खूं की प्यासी थी, बस केवल जंग छिड़ने की देर थी।

चाँद बड़ी नीतिज्ञ तथा दूरदर्शी थी। इसने अपनी नीतिज्ञता की दक्षता से आस पास के समस्त राजाओं को इस समय एक सूत्र में पिरो दिया। सबके मनमें यह भर दिया कि अहमद नगर की जीत व हार पर ही तुम्हारा कुछ भाग्य आश्रित है इसकी विजय में ही तुम्हारा कल्याण है। यही कारण था कि थोड़ी सेना होते हुए भी इस छोटी सी सेना ने उस विशाल सेना का सामना किया और उसे जंग से भागना पड़ा।

जब की प्रत्येक शूरमा के दिल में देश सेवा, देश रक्षा के भाव उदित हो तब वह क्यों न विजयी हो? जापान का रूस पर विजय पाना मुख्यतः यही कारण था। उनके प्रत्येक सैनिक के मन में देशप्रेम देश रक्षा के भाव जागृत थे। अतः वे प्राणों की आहुति देकर देश के वास्ते तलवारों पर खेल गये और अंत में दिखा गये कि "देश प्रेम देश रक्षा किसे कहते हैं" इसी प्रकार अगर चाँद के बरखाहो सैनिक रण में विशाल

सेना से विजयी हों तो इस में उनका क्या दोष ? सेना को खूब सुसज्जित करलेने पर चाँद ने मुराद के पास पत्र भेजा, कि "दिल्लीश्वराधिपति अकबर का एक छोटे से प्रदेश पर धावा करना बड़ी लज्जा की बात है। हार व जीत ईश्वराधीन है, परन्तु अगर किसी तरह आप की सेना को उलटी ही खानी पड़ी तो आप का मुँह कहीं छिपाने लायक न रहेगा"। मुराद कब किसी पत्र को देखने वाला था उसे अपनी सेना पर गर्व था पत्र का उत्तर बड़ी अभिमानता पूर्वक दिया। बस फिर क्या था रण दुन्दुभि बज उठी।

बड़ा कठिन समय उपस्थित हुआ पता नहीं कुछ देर में क्या होने वाला है जहाँ अभी शान्ति का राज्य विराजमान था वहाँ अशान्ति के बादल गगन में मंडराने लगे। तोपोंके शब्द से सारा नभो मंडल गुन्जायमान होने लगा सैनिकों की प्यासी तलवारें अपनी प्यास को बुझाने लगी थोड़े ही देर में लहु की नदी बह चली। सारा स्थान लाल ही लाल दीख पड़ता था। मानों वसुन्धरा पर खून की वर्षा हुई हो। बड़ा भयंकर संग्राम था। एक ओर दिल्लीश्वर की फौज और दूसरी ओर सामान्यसेना जो उन के सामने बहुत थोड़ी थी। पर दिलों के हौंसले उनसे कितने गुने बढे चढे थे। तुमुल युद्ध हो रहाथा पता नहीं विजय लक्ष्मी किस को विजय माला पहनायेगी।

वीर चाँद रणभूमि में रणचंडी के समान रुद्ररूप धारण किये हुए थी। जिस ओर एकबार निकल जाती थी, भगदौड़ मच जाती थी। शत्रु भी वीरता को देख प्रशंसा किये बिना न रह सके। इसी प्रकार वीर जोहरा ने अपनी खड्ग से लाखों के शिरों को रुण्ड मुण्ड किया। सैनिक

गण भी अपनी नायिका के उत्साह को देख दुगुने उत्साह से लड़ने लगे संग्राम ने और जोर पकड़ा। हल्दी घाटी के समान भयंकर जंग छिड़ गया। किसी को कुछ सूझ नहीं पड़ता था। सब की आशा एक ही ओर लगी हुई थी उसी के लिये इतने प्राणी जीवनाशा को छोड़ जी जान से कोशिस कर रहे थे।

मुराद की भी आखें खुली उसने भी देख लिया कि इनसे जीतना कोई सरल काम नहीं है-लोहे के चने चबाना है। उसकी सारी आशा दुराशा मात्र रही। उसकी सारी शान धूल में मिल गई। इतने ही में चाँद की सेना का ऐसा भयंकर आक्रमण हुआ कि मुगुल सेना उसे सहन न कर सकी और मैदान से भाग खड़ी हुई। वीरों ने अपनी विजय देख और तेज़ी से आक्रमण किया और इस तरह वीर रमणी ने डूबती हुई नैया को एक बार फिर बचा लिया।

उधर मुराद ने इस तरह सेना का तहस नहस होते देख झट संधिपत्र भेज दिया। अब क्या था खुशियां मनाई जानें लगीं। सारा देश खुशी के आनन्द में गूंज उठा। नीतिज्ञ चाँद ने भी अपना भला इसी में समझ संधि-पत्र स्वीकार कर लिया।

आपने स्त्रियों की रणाङ्गण परीक्षा देख ली-उनकी हस्त कुशलता देख ली कि "उनके हाथों में कितनी शक्ति होती है। हम जितना उन्हें कोमल समझते हैं वह हाथ नाज़ुक समय में फौलाद के तुल्य हो जाते हैं,एक ढाल का काम देते है"। ये इन दो देवियों की ही हिम्मत थी कि इस प्रकार एक निराशावादी देश, जिसकी कि सारी आशायें छिन्न भिन्न हो गई थी उन्हें फिर से हरा भरा कर दिया।

आप समझते होंगे कि स्त्रियाँ बड़ी कोमलाङ्गी तथा रणभीरु होती हैं। इस भ्रम को अपने दिल से हटा दीजिये, यह प्रत्यक्ष उदाहरण देख लीजिये कि स्त्रियाँ ही देश की लाज को बचाने वाली हैं। स्त्रियें ही देश को स्वतंत्र कर सकती हैं। क्या आप वीर लक्ष्मीबाई के के जीवन चरित्र को भूल गये-उसके पन्ने पन्ने को उलटा दीजिये उसमें युद्ध के सिवाय और कुछ आप को मिलेगा ही नहीं।

इधर तो खुशी के बाजे बज रहे थे। उधर अकबर का हाल सुनिये नींद आनी कठिन हो गई थी। जब कि उसने ये सुना कि "एक स्त्री से उसने भयंकर शिकस्त खाई"। उसके पेट में चूहे कूदने लगे-उसे अपना मुंह छिपाना कठिन हो गया। बुढ़ापे का जीवन भारभूत प्रतीत होने लगा। बस दिल में यही आग जल रही थी कि कब इस अपमान का बदला लूँ। अगर कोई उसके मन इच्छा थी तो बस एक यही थी। इसी के दिन रात वह स्वप्ने लिया करता था।

भाग्यचक्र पलटा-चाँद ने यद्यपि राज्य में पूर्णअमन स्थापित कर ली थी परन्तु वह चिरस्थायी न रह सकी। वह थोड़े काल के पश्चात क्षण भंगुर हो गई। विश्वासघात की आंधी फिर बह चली। देश में फिर तरह तरह के मत उपस्थित हो गये। सब अपनी सुधबुध भूल गये सभी अपने २ मार्ग को ठीक बताने लगे। फूट ने खूब ज़ोर पकड़ा देश की स्थिति पूर्ववत् हो गई। अकबर के चालाक भेदियों ने तत्काल इसकी सूचना दी अकबर भी इस खुशखबरी को सुन बड़ा खुश हुआ और यथेष्ट इनाम दे उन्हें बिदा किया।

अकबर की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। उसे अब अपनी आशा सफल होती नज़र आई। जिसे उसे स्वप्न में भी ख़्याल न था वह अंत में हो ही गया। अब देर क्या थी झट सेना को सुसज्जित कर स्वयं दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और बुरहानपुर में डेरा डाल दिया तथा अब्दुल रहीम मुख्य सेनापति को अहमद नगर की ओर विशाल सेना के साथ भेजा। इधर चाँद ने भी युद्ध तैयारी के लिये कोई कसर न छोड़ी जी जान से देश की शान बचाने के लिये निज जननी का गौरव बचाने के लिये अपने आप को अर्पित कर दिया। सेना का संगठन करना, अस्त्र शस्त्र का संचय करना, खाने पीने की सब वस्तुओं का संग्रह करना तथा अन्य चीज़ों का भली प्रकार से इन्तजाम कर लिया। कोई ऐसी वस्तु न छोड़ी जो युद्ध के समय में आफ़त डाले—तथा अपने स्वार्थत्याग, उत्साह और साहस से सैनिकों के मन में भी नवीन साहस का स्रोत बहा दिया इस प्रकार क़िले को हर एक प्रकार से सुरक्षित कर सेना से क़िले को सुशोभित कर दिया। अब वहाँ वीर सैनिकों के सिवाय और प्राणी नज़र ही नहीं आता था चारो ओर से रण दुन्दुभी का शब्द कानों में सुनाई पड़ रहा था। वीर भट्ट इस शब्द को सुन कर वीरता से नाचने लग जाते थे जोश के मारे बाजुये फड़फड़ाने लगतीं थी। इस तरह युद्ध की पूरी तैयारी हो गई थी चांद अपने सेनापति का काम अपने विश्वस्त तथा स्वामि भक्त नौकर हमीदखां पर सारा भार डाल दिया। स्वयं तथा वीर आब्बस के साथ क्षेत्रका नियन्त्रण भी करने लगी। बस अब केवल बिगुल के बजने की देरी थी। यवन सेना भी लाल लाल आंखें किये एक मस्त शराबी की तरह उनकी ओर घूर रही थी और अपनी लाल लाल आंखों

से उन्हें डरा हुआ सा समझती थी। कुछ ही क्षण में रण का बिगुल बज उठा। बस फिर क्या था दोनों ओर के शूर वीर भूखे बाघ की तरह एक दूसरे पर टूट पड़े और इतने दिनों की प्यासी तलवारों की, प्यास को बुझाने लगे। तलवार भी अपना दाव देख पार होने में कुछ विलम्ब न करती थी। बस घुसी कि पार हुई। इसी का सिलसिला बन्धा हुआ था थोड़े ही समय में रणाङ्गण लहू से और लाशों से लहू लुहान हो गया। युद्ध ने और भीषण रूप धारण किया चांद के वीरों ने बड़ी बहादुरी के साथ दुश्मनों का सामना किया और दिखा दिया कि लड़ाई करना कोई चने चबाना नहीं अपितु लोहे के चने चबाना है। परन्तु इतने थोड़े वीर कब तक उस अगणित सेना का सामना कर सकते थे। धीरे धीरे सब ही शूरवीर सैनिक युद्ध में काम आ गये। चांद ने भी अपनी फ़ौज को इस तरह कटते देख यवनों से संधि करना ही उत्तम समझा। और इस पर विचार करने के लिये अपने विश्वस्त नायक हमीद ख़ां को बुलाया और उससे सब अपनी हृदयी भावना कह दी। परन्तु यहाँ तो मामला ही और था। जो नियम हम अपने बड़े युद्धों में पाते हैं वही हवा इसमें भी थी। इससे बचना किसी बड़े भाग्यशाली तथा भाग्यवान का ही काम है—जो इससे बच जाता है उसे फिर अपने विजय में कुछ संशय नहीं रहता प्रायः हारने का मुख्य कारण प्रत्येक युद्ध में विश्वासघात ही मिलता है—ये जिधर हुआ उधर ही पराजय का राज है। पाठक यही हाल चांद की सेना में था, इधर भी एक नमक हराम देश द्रोही सरदार था जिसने एक युवती के वशीभूत होकर इस द्रोह की चिंगारी को लगाया था। इसी ने ही देश द्रोही हमीद को और भी भड़का दिया यह एक तो

पहले ही चांद और अब्बास से जला भुना करता था उसमें इसने और भी सहायता दी—यह देश द्रोही जाति द्रोही विश्वास घाती उसमानबेग था। जिसने चांद को हराने में कुछ कसर न छोड़ी देश को तबाह करके ही छोड़ा—अहमदनगर जो इतने दिनों से स्वतन्त्रता के गीत गारहा था अपनी ही मूर्खता के कारण परतंत्रता की बेड़ियों में बांधा गया।

उधर तो चांद ने उसे परामर्श के लिये बुलाया था। उसे क्या पता था कि "मुँह में राम राम बगल में छुरी"। इस लोकोक्ति के अनुसार इसके हृदय में कालनाग छुपा बैठा है जो इस सारे राज्य को डंसना चाहता है। भारत तेरे दुर्भाग्य ही ऐसे है जिसे इतने यत्न से सींचा साँचा—जिसे इतने लाड़ प्यार से पुत्र की तरह पाला पोसा उसने भी अन्त में चकमा दिया उसने भी अंत में अपने छिपे हुए भावों को इतने दिनों से दबोचे हुए विचारों को संसार के सामने स्पष्ट (खोल) कर दिया-कि "मैं भारत जननी का सुपूत हूँ"-वाह! भारत तेरे ही में जयचन्द्र जैसे देश द्रोही कुपूत उपजे। हमीद ने शीघ्र ही जाकर ये सब तैयार की हुई सामग्री अपने सैनिकों के सामने जाकर बड़े दुःखमय शब्दों में पढ़ने लगा-हे वीरों! जिस के लिये हम इतना लहू बहा रहे हैं, जिसके लिये हम अपनी जानों का संहार कर रहे हैं उसी देश को देश द्रोही चाँद यवनों के सुपुर्द करना चाहती है। यह कितनी धोखे की बात है यह देश के साथ विश्वास घातता है-यह देख कर किस देश प्रेमी के हृदय में खूँ नहीं उबल पड़ता किस के रग रग में खूं नहीं खौलता। उसे जीती छोड़ना कौन शूरमा चाह सकता है। उसकी इन चिकनी चुपड़ी बातों को सुन सब के चेहरे क्रोध से लाल हो गये और म्यानों से तलवार निकाल उधर ही दौड़

पड़े, बस फिर क्या था। दुष्ट पापी हमीद का मक्सद हल हो गया वो भी बड़ी तेज़ी से दौड़ता हुआ उधर ही गया। वीर चांद जिसने कि कोलाहल को सुन कर यह समझा कि शत्रुओं ने क़िला जीत लिया और अन्दर घुस कर तबाह करना शुरू किया है। अतः वो भी रण के लिये तैयार हो गई पर यहां और मामला देख हैरान हो गई कहने का कुछ समय नहीं था सेना बाज़ के समान उस वीर रमणी पर झपट पड़ी और वीर हमीद ने अपनी तलवार से उसका सिर काट अपनी बहादुरी की वीरता देने लगा? शोक है भारत! जिस रमणी ने देश के लिये जाति के लिये नहीं नहीं प्रत्येक प्राणी मात्र के लिये इतने कष्टों इतने आपत्तियों को झेला उसी पर ही अंत में देश ने कुठारा घात किया। वह विश्वासघात करने वाला कौन था—स्त्री नहीं थी आदमी था जो नर समाज अपने आप को स्वतंत्रता देवी का उपासक बताता था जो अपने ऊपर देश का मान मर्यादा व प्रतिष्ठा का भार समझता था—वह ही ये काम कर सकता है, अन्य नहीं। योंही को समाज को कलंकित तथा दूषित करते फिरते हैं कि स्त्रियों ने देश को डुबो दिया। इन्हीं के कारण देश की ये स्थिति हुई उन्हें ये कहते हुए शर्म नहीं आती कि इतिहास के पन्ने पन्ने पलट जाओ कहीं भी इतिहास के पृष्ठ पर ये मिल जाये कि अमुक स्त्री ने देश के साथ विश्वासघात किया—ये आप को कहीं भी नहीं मिल सकता चाहे आप लाखों बार सिर पटक जाये। उस देवी ने हँसते २ अपने प्राणों को देश की रक्षार्थ देश की सेवार्थ दे दिया और मरते वक्त भी देश को स्वतंत्रता की ही गोद में देखा—धन्य है वह नारी! धन्य है वह देश!!

उधर हमीद और उसमान को भी अपनी उद्दंडता का पुरस्कार मीर अब्बास ने बड़ी अच्छीतरह दे दिया और बतला दिया कि देश के साथ द्रोह करने से क्या मज़ा मिलता है चाँद के मरने पर अहमद नगर से स्वतंत्रता देवी ने भी मुँह मोड़ लिया। सूर्य भी दिन भर का थका मांदा अब अस्त होने को ही चाहता था, इधर अहमदनगर की स्वतन्त्रता भी सूर्य के साथ ही साथ अस्त हो गई।

उस पर दिल्लीश्वर की पताका लहलहाने लगी—अकबर को यद्यपि अपनी विजय से खुशी थी, परन्तु वह सब खुशी वास्तविक खुशी न थी वह केवल दिल की—आह मिटाने के लिये ही थी।

रूपवती बेगम

स्वतंत्रता देवी के उपासक महाराजा मालेश्वर बाज़-बहादुर की बेगम का नाम रूपवती था। जिस समय सारे भूपाल अपने मस्तकों को दिल्लीश्वर सम्राट अकबर के चरणों पर झुका चुके थे। उस समय कुछ गिने चुने ही राजा थे जिन्होंने अकबर की आधीनता को स्वीकार न किया था, उन में मालेश्वराधिपति भी थे। इन्होंने अपने सामर्थ्य तथा बाहुबल के प्रताप से अपना राज्य उसके पंजुल से सुरक्षित बचाया हुआ था।

रूपवती का निवासस्थान काली नदी के तीर सारंगपुर गांव में था जो उज्जैन नगर से ५५ मील पर था। यह जन्म से वैश्या थी अतः गायन विद्या में निपुण तथा रसिक होना स्वाभाविक ही था जो माता ने इसे भली प्रकार सिखाया था। अन्य गुणों के होते हुए भी इसमें गान विद्या का गुण विशेष था। यह विद्या ऐसी है कि मरे हुए को जिला दे-अनुत्साही जन के मन में फिर एक बार उत्साह का संचार कर दे—इसके द्वारा जो मनुष्य जो कुछ करना चाहे सो थोड़ा है—इसके आगे किसी का वश नहीं चलता। यही कारण था कि जिसके कारण मालेश्वर इन पर इतने अनुरक्त हो गये थे कि दिनरात इसकी बनाई हुई गीतिकाओं का ही रसास्वादन करते थे। और यही प्रेम पाश अंत में इतना फला कि जो प्रणयिनी रूप में परिवर्तित हो गया।

जिस स्वतंत्रता के लिये महाराणा प्रताप पहाड़ों में भटकता फिरा और अंत तक उस मुगल सम्राट अकबर की आधीनता स्वीकार

न की—उसके आगे सिर झुकाना अपमान नहीं बल्कि मृत्यु समझा। यह सब दिव्य पुरुष इस भारत वर्ष में ही हो गये हैं। जिनका कि सिद्धान्त प्रारंभ से ही यही था कि प्रत्येक बच्चा चाहे वह हिन्दू, मुस्लिम हो और कोई हो "स्वतंत्र है" उस पर किसी का अधिकार नहीं है कि उसे दासत्व में बांध सके—हर एक प्राणी मुक्त है प्रकृति माता ने अपने राज्य में किसी को परतंत्र नहीं उत्पन्न किया जिसे लोकमान तिलक ने बतलाया और जिस मंत्र का पाठ वह हरवक्त देश के सामने जाति के सामने मरते दम तक रखते रहे। "देश के बच्चो! देश के नौनिहालो! तुम स्वतंत्र हो, स्वतंत्र हो, स्वतंत्र हो" "पराधीन सुख स्वप्ने नाहीं" इस मूल मंत्र को बतलाते रहे—कि "पराधीन आदमी कितने ही आनन्द में कितने ही सुख में क्यों न हो वह उतना सुखी नहीं हो सकता जितना कि एक स्वतंत्र मनुष्य है"।

इस मंत्र का उपासक मालेश्वर भी था—परन्तु रूपवती के अब प्रणयिनी होने पर, आंखों से थोड़ी देर के लिये ओझल करना इसे दुसाध्य प्रतीत होता था—क्षण भर भी अपनी आंखों के सामने से दूर नहीं कर सकता था। गायन विद्या के साथ साथ वह बड़ी सुन्दरी बुद्धि-मती तथा जन्मतः कवि थी। इत्यादि कारणों से मालेश्वर अपने कर्तव्य पथ को बिलकुल भूल गया था। राज्य की बिलकुल सुध ही नहीं रही थी इस तरह इन का सुखकाल ७ वर्ष सानन्द कटा। उसका राज्य, उसका सुख, अगर कोई दुनियां में था तो वह रूपवती ही थी। उसी के सुख के लिये उसने बड़े सुन्दर सुन्दर ऊंचे ऊंचे महल खड़े कराये—अगर कोई चिन्ता उसके मन में रहती थी तो वह यही थी कि "रूपवती को जरा

कष्ट न होने पावे"—उसके आराम के लिये ही उसे हर वक्त चिंता लगी रहती थी और इसे उसने पूरा निभाया। संसार में जब दो जन जिन के गुण स्वभाव आपस में मिलते हों वो एकबार मिल जाये फिर उन का अलग होना सर्वथा असंभव है—फिर उन की मित्रता—प्रेम, दिन रात बढ़ता ही जाता है—और जिसे लोग अंत में दो शरीर में एक प्राण वहाँ तक कह सकते हैं। इसी ही श्रेणी में ये दोनों प्राणी पहुँच चुके थे। जो बाज़बहादुर अकबर की आंखों में काँटे सा खटकता था—अब वह उसे एक साधारण प्राणी दीखने लगा—जिसने अपनी बाहुओं से अकबर को दिखा दिया था कि "मेरे जीते जी तू इस राज्य को हस्तगत नहीं कर सकता—जिसने अब तक देश को परतन्त्रता की बेड़ी से बचाया था—अब वह ही विलासिता के भोग में फंसने के कारण स्वकीय पथ से भी च्युत हो गया—उसकी उन बाजुओं में उन हाथों में पहले सा पराक्रम पहले सा ओज नहीं रहा। जिन बाजुओं ने कितनी बार कितने वीरों का गर्व खंडित किया था। उन बाजुओं में अब वह शक्ति, विलासिता के व्यसन में फंसने के कारण सब काफ़ूर हो गई थी बस दिन रात बेगम के ही साथ में मस्त रहता था।

अकबर भी उसकी राज्य के प्रति इतनी विरक्ती देख, विलासिता के अवगुण में फंसे देख, सरदार अहमदख़ां को विशाल सेना के साथ सन् १५६० ई० में मालवे की ओर भेज दिया।

बाज़ बहादुर भी रण का समाचार सुन अपनी सेना को तैयार करने लगा। परन्तु यह सब तैयारी उसकी व्यर्थ थी—"उसके देह पर वह तेज़ नहीं था जिसे देख कर दुश्मन डर जाये, दुश्मनों की तलवारें हाथ

से गिर जाये अब तो वह विलासिता का चोला पहन चुका था"। रूप-वती भी अब अन्तिम मिलन को देख उसकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। मुँह से कोई शब्द नहीं निकला, एक प्रकार कठपुतली सी हो गई और बड़ी कठिनाई से अपने पति को रणभूमि जाने के लिये कहा।

रणभूमि में जाना न जाना एक सा था। यवनों की सेना के सामने इसकी सेना न टिक सकी और बुरी तरह मारी गई स्वयं बड़ी कठिनाई से भाग कर प्राण बचाये। विजय का नाद करते हुए अहमदखाँ ने नगर में प्रवेश किया और रूपवती को पाने की चाह से बड़ी खुशी में जल्दी जल्दी जा रहा था। परन्तु वहाँ तो पहले ही से मालेश्वर ने सब बन्दोबस्त कर दिया था। जब वह वहाँ पर गया और देखा कि सब स्त्रियें कत्ल हुई पड़ी हैं और रूपवती भी कत्ल है प्रेम के अन्धे अहमद ने उस शव को अपनी गोद में ले लिया और छाती से चिपटा लिया अचानक उसका हाथ उसकी नाड़ी पर पड़ गया उसे कुछ चलती हुई देख उसे कुछ जीवन में आशा का संचार हुआ। और तत्काल ही उसे वहाँ से उठवा कर तम्बू में ले गया और वैद्य डाक्टर आदि आकर उसकी चिकित्सा करने लगे। औषधि से कुछ लाभ हुआ उस पतिव्रता ने नेत्र खोले, सामने अहमद को देख कर वह कहने लगी कि मुझे क्यों ज़िन्दा करते हो मुझे मरने दो मैं पति विहीन होकर इस दुनियां में जीवित रहना नहीं चाहती। परन्तु उस दुष्ट अधम ने कपटमय शब्दों से कहा हे सुन्दरी! तू इतना क्यों घबराती है अच्छा होने पर तुझे पति के पास ही भेज देंगे। इस आश्वासन से वह और भी जल्दी अच्छी हो गई। परन्तु उस रमणी को क्या पता

था कि वह अन्त में विश्वासघात करेगा। जब इसने उसे भेजने के लिये कहा, तब उसने उससे अपना अभिप्राय साफ़ कह दिया जिसे सुन वह सती स्त्री अवाक् रह गई और सोचने लगी "कि उस वक्त ही मर जाती तो अच्छा था"। इसने रूपवती से बहुत कहा "कि मेरे साथ आनन्द में रहो" परन्तु उस पतिव्रता स्त्री ने कहा कि मैं जब एक पति कर चुकी हूँ दूसरा पति नहीं कर सकती जिसने मेरे कारण राज्य को गँवाया—मुझ जैसी वैश्या को बेगम बनाया उसके साथ मैं विश्वासघात नहीं कर सकती। मैं जिसे एक बार प्रेम दे चुकी उसे ही जीवन दे चुकी। इस तरह वह सती के यहाँ प्रति दिन अपनी मनोकामना को पूर्ण करने के लिये आता, परन्तु वह सदा यही उत्तर देती रहती। अन्त में उसने हार कर उसे वचन दे ही दिये।

उस दिन उसने सारे शरीर को खूब सुगन्धी आदि द्रव्यों से स्नान कराया सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहने और चन्दनआदि का लेप कर एक सुन्दर रेशमी गद्देदार बिछौने पर सदा के लिये सोगई। उधर जब वह प्रेमांध बड़ी बड़ी आशाओं से उस गृह में घुसा और अपनी इच्छा को पूर्ण होता देख मन ही मन सुख का पान कर रहा था, परन्तु जब वह उस कमरे में घुसा और उसे बिस्तरे पर लेटी देख उसने समझा कि मुझे आने में देर होने के कारण यह सोगई। उस कामान्ध को पता नहीं कि तुझ जैसे नीच का स्पर्श न हो उसके पूर्व ही सदा के लिये गहरी नींद में सोगई" अतः एक दासी को उसके उठाने को कहा वो जाकर जब उसके शरीर को छूती है—तो एकदम वहाँ से दूर हट जाती है। वह अधम उसे ऐसा करता देख एकदम घबरा गया और उससे पूछा कि क्या हुआ—

उसने कहा कि इसका शरीर तो ठंडा पड़ा है। वह यह सुन कर अवाक् रह गया—और सोचने लगा कि "इसने अपने सतीत्व रक्षा के लिये पातिव्रत धर्म को बचाने के लिये विष खा अपने सच्चे प्रेम को दिखला दिया कि मुझे अगर प्रेम था तो वह उस मालेश्वर से ही था।

जहान आरा

संपत्तिशाली वैभवशाली सम्राट् शाहजहाँ की पुत्री का नाम जहानआरा था। जो जन्म से ही उदारता पितृभक्ति, पितृसेवा, मधुरभाषण, सुशीलता, सहनशीलता, तथा विद्यादि गुणों की अवतार स्वरूपा थी। जिस तरह हिन्दू धर्म में सीता दमयन्ती आदि स्त्रियें पति सेवा के लिये प्रसिद्ध हैं उसी तरह इस महिला का नाम भी भारत वर्ष में पतिसेवा के लिये मशहूर है। जिसने पति के सुख दुख में अपना पूरा हाथ दिया। "उसकी सेवा के लिये कैद में रहना, राज सुखों पर लात मारनी, निंदा का न लेना स्वीकार किया" उस देवी का जन्म धन्य हैं। सचमुच शाहजहाँ ने भी अपनी पुत्री को आरम्भ से ही सुयोग्य देख उसे उत्तम शिक्षा तथा बड़े लाड़ प्यार से पाला था। यही कारण था कि वह उसे अन्तः हृदय से चाहते थे—उस के बिना अपना एक क्षण भी नहीं काट सकते थे तथा इसने भी अपना जीवन पितृसेवा के लिये न्योछावर कर दिया था।

सम्राटेश्वर के दारा-शुजा-औरङ्गज़ेब और मुराद चार पुत्र थे—जिनमें दारा बड़ा उदार तथा पितृ भक्त था। जिससे उसे दरबार के सब लोग बड़ी आदर की दृष्टि से देखते थे। जहान आरा तथा इसकी छोटी बहिन रौशन आरा दोनों ही दारा को प्रेम भरी निगाह से निहारते थे तथा दोनों के स्वभाव भी परस्पर मिलते थे। जिससे सम्राट इनसे प्रसन्न रहता था और जो कुछ राज प्रबन्ध में अपनी सलाह देते थे उत्तम

समक्ष उसे तत्काल करने को कहते थे। परन्तु औरङ्गज़ेब का स्वभाव दारा से बिलकुल विरुद्ध ही था। उसकी जिह्वा पर दया का नाम मात्र भी न था। वह बड़ा कपटी, विद्वान, चतुर, राजकाज पटु, तथा ज़ालिम धोखेबाज़ था। वह सदा येन केन प्रकारेन सब भाइयों का अधिकार दबा स्वयं राजगद्दी हासिल करना चाहता था। यही इसका वास्तविक उद्देश था—और इसी के लिये इसने अपनी तमाम आयु लगा दी और अपने अभिप्राय को धोखेबाज़ी और चालाकियों से पूर्ण किया। इसने जो अत्याचार ज़ुल्म बेदर्द, बेकसूर गरीब प्रजा पर किये वह तो किये ही, वह इतिहास के पृष्ठों से मिट नहीं सकते, वह तो इस ज़ालिम की नज़र में थोड़े हैं—परन्तु जो इसने अपने पिता के साथ दुर्व्यवहार तथा दुशीलता का परिचय दिया वह किसी की आंखों से छिपा नहीं रह सकता। जहाँ एक ओर राम पितृ भक्त पितृ सेवा के चमकते तथा दमकते संसार में उदाहरणस्वरूप हैं—वहाँ दूसरी ओर ऐसा कुपुत्र है जो अपने जीवन दाता पिता को कैद में डाल कर, दुःख से तड़पा कर, पानी से व्याकुल कर, दुःख की आहे छुड़वा कर अपने जीवन को धन्य समझता है! धन्य है ऐसा पुत्र जिस ने इस रत्नगर्भा भू में जीवन लिया? जिसने इस आर्य भू के मुख को सदा के लिये कलंकित तथा दूषित कर दिया।

१६५८ ई० में औरङ्गज़ेब की मुराद पूर्ण हुई। पिता रोगग्रस्त हुआ। अच्छा अवसर देख इस दुष्ट ने अपने बूढ़े पिता को कैद में डाल दिया। उसे इसमें ज़रा भी दर्द न हुआ। अगर दुनिया में किसी का बेदया दया शून्य हृदय था तो वह इस औरङ्गज़ेब का ही था। कौन ऐसा

पत्थर दिल का दिलेर होगा जो इस कुकृत्य को देख आंखों से अश्रुधारा न छोड़े। हा विधाता तेरी माया तेरी लीला बड़ी विचित्र है जहां एक ओर जहानआरा सी पितृ-भक्ति दयावती पुत्री उत्पन्न की वहां उसी कोख में औरङ्ग़ज़ेब जैसा कठोरात्मा उत्पन्न किया। इतनी वृद्धावस्था वाले पिता को कैद में डालना जो कि उस समय अपने दिल में यह स्वप्न ले रहा होगा कि "अब मेरे पुत्र मुझे सुख की नींद में सुलावेंगे यह मेरे राज्य को अपने यश से ऊँचा करेंगे, अपना नाम दुनियां में रौशन कर जायेंगे। वहाँ उसकी बुद्धि यहां तक न पहुंची कि "कैद में भी सड़ना पड़ेगा। इस वक्त अगर कोई उसके कष्टों को दूर करने वाली, गर्म आंसुओं को पोंछने वाली, दर्द बातों को सुनने वाली, गर्म आहों को देखने वाली थी। तो एक मात्र उसकी प्राणप्रिया जहान आरा थी" जिसे देख उसके मन में ज़रा तसल्ली होती।

जहान आरा ने कितना ही औरंगज़ेब को समझाया,—उस पर कितनी ही शान्ती की वर्षा वर्षायी—परन्तु वह वेहया औरङ्ग़ज़ेब गर्म घूंट की तरह सब पी गया-उस पर इन बातों ने ज़रा भी असर नहीं किया। बल्कि उस ज़ालिम ने उस जहान आरा को भी उसी कोठरी में बन्द कर दिया जहाँ उसका पिता पड़ा २ तड़प रहा था। इस दुख मय कहानी का चित्र आप अब स्वयं ही खींच सकते हैं उसने इतना ही नहीं किया बल्कि कोठरी के चारों ओर हर वक्त के लिये नङ्गी तलवार का पहरा भी करवा दिया। उसके मन में इतना खौफ़ था, इतना डर था कि कहीं कैद में से ही न भाग जायें उसकी आत्मा अन्दर से भय के मारे कांप रही थी। परन्तु वह स्वार्थी, कृतघ्नी तथा

बेरहमी काला इतना बेशर्म हो गया था कि उसका दिल ज़रा भी न पसीजा।

जहना आरा ने कैद में रहना सहर्ष स्वीकार कर लिया उसे तो केवल संसार में पितृ सेवा ही करनी थी। जेल जाते वक्त उस दया स्वरूप जहान आरा ने अपने सारे कीमती आभूषणों तथा रेशमी वस्त्रों को दीनों दुखियों को दान में दे दिये और स्वयं एक दीन जैसे वस्त्रों को पहन उसी पितावाली कैद कोठरी में बड़े आनन्द के साथ पिता की सेवा करती हुई रहने लगी। इसने कितनी बार औरङ्गज़ेब को बड़े प्यार के साथ समझाया "हे भाई तुम यह क्या काम कर रहे हो—इस काम को कर अपने ऊपर कलंक का टीका न लगाओ—अपने ऊपर धब्बा न लगाओ—यह धब्बा तुम्हारे जीवन पर सदा के लिये अरोपित (लगा) रहेगा। इस प्रकार कितना ही उस देवी ने पितृ भक्ति का पाठ पढ़ाया—पर उस के पत्थर वाले दिल में एक भी बात का असर न हुआ। वह तो उस वक्त यह सोच रहा था कि किस तरह अपने राज्य को और बढ़ऊँ—किस का ख़ून कर राज्य में वृद्धि हो सकती है। अन्त में हार कर वह भी चुप हो गई। औरङ्गज़ेब ने जो कष्ट अपने पिता को दिये वह उंगुलियों पर नहीं गिने जा सकते। उसने यहाँ तक किया था कि जब वह कहीं पत्र भेजे तो भी एक निश्चित मुंशी को दिखा कर भेजे। उसके बिना दिखाये वह पत्र कहीं भी नहीं भेज सकता था। अच्छे वस्त्रों की तो अलग बात रही उसके फटे पुराने रेशमी वस्त्रों को भी उसके उस बेरहमी औरंगज़ेब ने बिकवा दिये थे और फटे पुराने वस्त्र ही बदन पर रहगये थे—यह था सुलूक (व्यवहार) एक पुत्र का पिता के

साथ। जिसने इसे इतनी बड़ीबड़ी आशाओं से पाला पोषा था। उसी के साथ विश्वास घात—वाह विश्वास घात तेरा कहीं ठिकाना नहीं जिसे चाहे उसे पल भर में ही डुबो देवे। तेरे चक्र से सभी डरते हैं। तू जिस के पीछे पड़ जाता है उसे समूल जड़ से नष्ट भ्रष्ट ही कर डालता है। तूने ही एक सम्राट् शाहजहाँ को कैद का भागी बनाया। जो कुछ समय पहिले सारे भारत का सम्राट था जिस के आगे बड़े बड़े राजा और महाराजा आकर मस्तक झुकाते थे और हाथ जोड़े खड़े रहते थे। लाखों नौकर चाकर सेवा करने को हरवक्त तैयार रहते थे—वो ही आज सम्राट ज़ेल की हवा खा रहा है। धन्य है तेरा खेल !

इस प्रकार नाना कष्टों को सहते हुए वृद्ध शाहजहाँ कब तक ज़ेल में रह सकता था। शीघ्र ही मृत्यु ने उन्हें अपनी पवित्र गोद में लिया। उस के समारोह के साथ जनता की भीड़ भाड़ न थी शान शौकत न थी—केवल थोड़े से मनुष्य ही थे जो उसके जनाज़े में जा सके। सब औरंगजेब की खूनी और प्यासी तलवार से डरते थे। किसी में सामर्थ्य नहीं थी कि उसके आगे चूं तक कर सके।

इस तरह दयावान् वैभव शाली सम्राट् शाहजहाँ इस संसार से चलागया परन्तु उसके गुणों को सारा संसार याद करता है। उसी का बनाया हुआ आगरे में ताज़महल है जिसे बड़ी दूर दूर से लोग देखने आते हैं और उस की बनावट तथा सजावट को देख दंग रह जाते हैं। उसी का सोने का मयूरासन भी था जो बहुत ही कीमती था। उस पर जब यह बैठता था तो उसके शानशौकत का आर पार नहीं रहता था दर्शकों की आँख चका चौंध हो जाती थी उस के मूल्य का अन्दा जन

लाख करोड़ रुपया बतलाते हैं जो आज कल सारे जहाँ में ऐसा सिंहासन मिलना कठिन है जो आजकल पता नहीं किस के पास है। इसी प्रकार उसने कितने ही ऐसी ऐसी मशहूर चीजे बनवाईं जो संसार भर में प्रसिद्ध हैं दिल्ली में मोतीमसजिद आगरे में जामामसजिद इसी के नाम के शोभित करती हैं जो संसार में सब से सुन्दर हैं। यह दानी भी बड़ा था—एक बार जब उसकी पुत्री जहान आरा रोगी हो गई—तो उसके अच्छा होने के लिये २ लाख रुपया गरीबों को बाँटा गया और कितना ही धन सरदारों तथा बड़े बड़े अफ़सरो को दिया गया। जिससे स्पष्ट है कि शाहजहाँ को अपनी पुत्री से कितनी मुहब्बत थी और जहानआरा भी उसकी कितनी सेवा करती थी जिसे हम इतिहास के पृष्ठों से स्पष्ट देख सकते हैं। पिता की सेवा के लिये राजसुख को त्याग कर कैद में सड़ना किस रमणी का हौसला हो सकता था! आजकल तो किसी से करने को कहिये? जहानआरा ने अपनी तमाम जीवनी पिता की सेवा में लगा दी थी।

पिता की मृत्यु के पश्चात् जहानआरा का भी स्वर्ग से बुलावा आ गया। उसे भी बुख़ार ने आ घेरा। जब वह खाट पर पड़ी हुई थी—तब एक दिन उसके पास औरंगज़ेब भी आया—उस पत्थर दिलवाले औरंगज़ेब का भी मन पसीज गया—उसकी भी आंखों में आसू आ गये और उसे अपने किये हुए पर पश्चाताप होने लगा, और बड़े कष्ट कंठ से बोला—परन्तु उस देवी की आत्मा तो देह से निकल चुकी थी मरने से एक दो मिनट पहले औरंगज़ेब ने अपने गुनाहों की माफी मांगी उस वीर रमणी ने अपनी ओर से तो उसे क्षमा किया परन्तु ख़ुदा की ओर से वह कैसे माफ़

कर सकती थी। औरंगजेब ने जितना कष्ट दिया था सब शुरू से आखिर तक याद आने लगे। इस पापी का भी हृदय अन्त में अपने पापों से कांप उठा—जिसकी आखों से सदा रुधिर धारा बहा करती थी वह भी आज अपने किये हुओं पर आखों से गर्म गर्म आंसू बहा रहा है—इसे देखने वाला भी यद्यपि उस वक्त कोई न था केवल एक खुदा ही था जो हर एक मनुष्य के पल पल भर के कार्यों की ओर निगरानी करता है।

वीर जहानआरा की देह अब पृथ्वी पर नहीं है। उसका नश्वर शरीर इस संसार से विदा हो चुका है। परन्तु उसकी कीर्ति, उसका यश संसार भर में व्यापक है—इसे कोई दुनियां से मेट नहीं सकता उसकी त्यागशीलता और सेवा भाव की सारे लोग तारीफ करते हैं।

पाठक! इस प्रकार इस कथा को पढ़कर लेखक के उत्साह को बढ़ाने का यत्न करेंगे।

सुल्ताना रज़िया बेगम

आरम्भतः संसार चक्र ही ऐसा चला आया है कि जिसे अपने हाथों से पाला पोसा, उसी ने अंत में दगा किया। ये मुसल्मानी राज्य में स्पष्ट तौर से देख सकते हैं। जिस समय कुतुबुद्दीन ऐबक १२१०ई० में पोलो खेलते वक्त घोड़े से गिर कर परलोक सिधारा और उस का बेटा आरामशाह राज्य सिंहासन पर बैठा परन्तु वह असमर्थ होने के कारण राज्य को भली प्रकार न चला सका। तब कुतुबुद्दीन के गुलाम शमसुद्दीन अल्तिमश ने उसे राजगद्दी से उतार स्वयं राजगद्दी पर बैठ गया। वह अपनी योग्यता के कारण बड़े ऊँचे पद तक पहुंच गया था अतः कुतुबुद्दीन ने अपनी लड़की भी इसे ब्याह दी थी।

अल्तिमश अपनी योग्यताके कारण बड़ा ऐश्वर्य शाली तथा धनशाली राजा हो गया है। इसने अपने राज्य की हर प्रकार उन्नति की, इसी वीर की बेटी का नाम रज़िया था।

रजिया बड़ी रुपवती, विद्यावती दयावती थी किसी गुण की इस में न्यूनता न थी। वह रणविद्या राजनीति में भी धुरन्दर थी। नित्य प्रति स्वाध्याय पाठ करती। इन्हीं गुणों से भरे हुए होने के कारण अल्तमश को उस से विशेष प्रेम हो गया था और जब कभी राज्य से बाहर जाता तो राज्य भार पुत्रों को न देकर रजिया को ही राज्य भार संभालने का काम] दे जाते। क्योंकि उन्होंने प्रारंभ से ही उसे राज काज विद्या

राजनीतिकला में निपुण कर दिया था। और जिसे इस विदुषी ने बड़ी अच्छीतरह संभाला।

अल्तिमश ने अपने बाहुबल से दिल्ली के राज्य को और बढ़ाया और गुलामवंश का बड़ा मशहूर और विख्यात सम्राट हो गया। गुलामवंश के पौदे को जिसे की कुतुबुद्दीन ने लगाया था—उसे और हरा भरा कर गया। यही एक राजा ऐसा हुआ जिसने कि गुलाम वंश को उज्वल किया।

एक बार अल्तिमश को बाहर जाने का मौका मिला। राज्य अवस्था ठीक रहने के लिये उसने राज्य भार रजिया को सौंप दिया। जिस पर सरदार लोग बहुत बिगड़े और कहा कि हमारे ऊपर एक स्त्री जाति शासन करें कितना लज्जा की बात है अतः आप कृपा कर के किसी राजकुमार को राज्य भार सौंप जायें। चाहे रजिया कितनी ही राज कुशल क्यों न हो? राजा ने कहा कि रजिया के सिवाय मैं और किसी को ऐसा योग्य समझता ही नहीं जो राज्य का संचालन कर सके, राज की बागडोर अपने हाथ में रख सके।

इस तरह अल्तिमश बहुत देर तक राज्य के बाहर रहा। वीर रमणी रजिया ने राज भार सुचारुरूपेण चलाया। जिसे देख कर सरदार लोग भी चकित हो गये और उसकी प्रशंसा की गाढ़ी बांधनी शुरू कर दी। मुल्तान की ओर दौरा लगाते वक्त वीर अल्तिमश का रास्ते में ही १२३६ ई० में मृत्यु हो गई। जिसे सुनकर विदुषी रजिया बहुत दिनों तक शोक ग्रस्त रही। मरते वक्त अल्तिमश ने अपनी हार्दिक इच्छा यह प्रकट की थी कि मेरे बाद रजिया ही राजसिंहासन पर बैठे।

यदि रज़िया राजगद्दी पर बैठती तो हमें इतिहास के पृष्ट और ही शक्ल में दीख पड़ते । यह वास्तव में ठीक भी था कि अल्तिमश के मरने के बाद राज भर एकदम रज़िया के हाथ आ गया होता तो पता नहीं इतिहास पृष्ट किन रंग बिरङ्गी अक्षरों में नज़र आते ।

अल्तिमश की मृत्यु के बाद उसका बेटा रुकनुद्दीन फ़ीरोज़ शाह गद्दी पर बैठा । वह बड़ा क्रूर तथा ज़ालिम था । प्रजा को बहुत सताता और लूटता था । जिससे एक दम प्रजा इससे विमुख हो गई और माँ बेटा दोनों को ही पकड़ कैद में डाल दिया ।

सब लोग रज़िया के राज संचालन से बड़े खुश थे । अतः सब ने मिल कर रजियां को ही राजगद्दी पर बैठाया । रजिया भी राज्य को भली प्रकार चलाने लगी—अपनी ओर से किसी प्रकार की कमी न रखती । दीनों और दुखियों की कथा सुनती और उनके कष्टों को हटाने की हर प्रकार से कोशिश करती । राज्य के ऊटपटांग नियमों को बदल नये क़ानूनों को ज़ाहिर किया और उस पर चलने के लिये सब को बाधित करती । लड़ाई के समय खुद सबसे आगे रहती और सेना में किसी प्रकार का बखेड़ा उत्पन्न न होने देती । इन्हीं विशेषताओं के कारण ये राज्य चिरकाल तक चला सकी और प्रजा को प्रसन्न रख सकी ।

इतनी देर तक वीर रज़िया कुंआरी ही रही । जिस प्रकार पुराने समय में स्त्रियें स्वयं अपना पति चुन लेती थीं । उसी प्रकार इस वीरां-गना ने भी एक वीर याकूत को चुन लिया था । परन्तु प्रजा ने इसे स्वीकार न किया—उसकी इच्छा थी कि किसी राज घराने की उच्च कर्मचारी से इस का विवाह हो । परन्तु वह जिसे दिल दे चुकी थी उसे

लेकर दूसरे को नहीं दे सकती थी। अतः राज्य में झमेला उठना स्वभाविक ही था। राज्य में एक प्रकार से बगावत हो गई। वीर रज़िया ने याकूत के साथ मिल कर बड़ी वीरता के साथ उन द्रोहियों का सामना किया। परन्तु स्वल्प सेना होने के कारण वह उनसे पार न पा सका। तथा इसी युद्ध में याकूत के भी प्राण विसर्जन हो गये, और स्वयं भी बन्दी हुई। अच्छा अवसर देख द्रोहियों के सरदार अल्तूनिया को उस पर तरस आया और उसे कैद से मुक्त कर दिया। उससे यह भी कहा कि अगर तू मुझ से विवाह करले तो मैं तेरे दुश्मनों को नाश कर तेरा राज्य तुझे ही सौंप दूंगा उसने इसे स्वीकार कर लिया।

इस समय राजगद्दी पर रज़िया का भाई बहराम था। जो राज्य संचालन के सर्वथा अयोग्य था। वीर रज़िया और उसके पति अल्तूनियां ने मिल कर कितनी बार अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त करने के लिये दुश्मनों पर चढ़ाई की। परन्तु दुर्भाग्य से वह उसमें सफल न हो सके।

अंत में इस रमणी का भी अन्त काल आ पहुंचा। सन् १२४० ई० में इस की पवित्रात्मा देह से निकल स्वर्ग लोक सिधारी। रज़िया ने जिस हस्त कुशलता से राज्य का कारबार किया। वह बड़े २ राजा ही कर सकते हैं, साधारण राजाओं से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। दिल्ली के तख्तपोस पर बैठने का अब तक सौभाग्य किसी वीरांगना महिला को नहीं प्राप्त हुआ। यह इसका ही सौभाग्य था। इसे पर्दे से स्वभावता ही वैर था। इसने कभी पर्दे को मुंह पर नहीं किया। जब कभी दरबार में तख्त पर बैठती बिना

पर्दे के ही बैठती। जिससे हम जान सकते हैं कि पर्दे की इतनी आवश्यकता नहीं थी। जब एक स्त्री को युद्ध शिक्षा दी जा सकती है तब उसे पर्दे से क्या—शिक्षा अब प्रत्येक भारतीय मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपनी स्त्री को शिक्षा देने में किसी प्रकार की रुकावट आदि उपस्थित न करें। जब कि हम पहले समय को देखकर पता लगा सकते हैं कि उस समय हर एक स्त्री को शिक्षा देना कितना आवश्यक होता था। प्रतिदिन वह खुदा से बुद्धि, बल की प्राप्ति के लिये आचरण के लिये दुआ करती। यही कारण था कि गरीब गरीब, सरदार से सरदार इससे प्रसन्न था।

रज़िया स्त्री जाति के लिये एक उच्च तथा दर्शनीय दृष्टान्तरूप हो गई है और दिखला गई कि एक स्त्री जाति भी इतनी उच्च कोटि पर पहुंच सकती है। प्रत्येक स्त्री के लिये शिक्षित होना कितना आवश्यक है यह इस देवी के चरित्र से साफ़ ही है। प्रत्येक माता का कर्तव्य है कि स्त्री जाति की उन्नति के लिये, गौरव के लिये कुछ शिक्षा इससे अवश्य ले—जब कि उनके सामने चाँद बीबी अहिल्या बाई-लक्ष्मीबाई जैसे उच्च माताओं के कर्तव्य आंखों के सामने हैं। इसे आप पढ़ कर, 'विजय' के उत्साह को तथा लेखन कला को बढ़ाने का यत्न करें।

गुलशन

स्वतंत्रता उपासक दिव्य पुरुषों का जन्मतः यह स्वभाव होता है कि वह किसी का शासन अपने ऊपर नहीं देख सकते । उन्हें किसी के शासन के नीचे रहना मृत्यु तुल्य प्रतीत होता है । उसी स्वतंत्रता देवी के उपासकों में महारानी दुर्गावती तथा वीर चाँद बीबी और इस गाथा की परिचालिका गुलशन आदि थीं । जिन्हों ने राज सुखों को तृण वत् समझा । सारे ऐश्वर्य भोगों को छोड़ जंगल में भटकना इस से बेहतर समझा । परन्तु आज कल संसार के नज़ारे को देखने से मालूम होता है "कि यह वोही स्थान है, यह वोही आर्यावर्त है, जहाँ उक्त स्वतंत्रता उपासिका देवियें हो गईं ।

चित्त नहीं मानता । आँखें आश्चर्यित हो जाती हैं, लेखनी लिखती हुई शर्माती है । वाणी वर्णन करती हुई भय से काँपती है ।

यह सब भाग्य का चक्र है यह सब उस सर्व व्यापी प्रभु की लीला है यह उसका खेल है कि जिसे चाहे पलभर में नष्ट करदे—जिसे चाहे पल भर में ताज पहना दे जो देश पहले नहीं सदा से स्वतंत्रता की उपासक रहा आज वही परतंत्रता की दासता की गोद में ऐसे गोते ले रहा है कि उसे अपने ऊपर किसी का भार प्रतीत ही नहीं होता उसे इस में खूब आनन्द आ रहा है वह अपने भाग्य को सराहता है उसे अपने ऊपर किसी का बंधन प्रतीत ही नहीं होता यह क्यों यह सब

हमारे ही कुकर्मों का पुण्य रूप फल है! जहाँ संसार के अन्यदेश इस खेल को देख कर हमारे ऊपर हंसते हैं—पर इस के देश वासियों की आँखें ही नहीं खुलती इस पर सब पर बातें चिकने घड़े की तरह ठहर ही नहीं सकती यह नशे में ऐसा चूर है, ऐसा मस्त है कि इसको होश में आने लिये पर्याप्त समय की आवश्यकता है।

आज कल इस में ऐसे ऐसे अपने ही शासक हो गये हैं कि जो अपने भाइयों के गलों पर छुरी फेरते हुए नहीं घबराते, अपने भाइयों पर हाथ साफ करते हुए उन्हें शर्म नहीं आती, अपने भाइयों की विपत्तियों को देख कर हँसते हैं मज़ाक उड़ाते हैं—पर उन बेरहम उन ज़ालिमों के सिर पर जूं भी नहीं रेंगती। यही कारण है कि देश में फूट की नदी बड़े वेग से बह रही है और दिन प्रति दिन अपना रुख अपना प्रवाह घटाने के बजाय उन्नति की ओर जा रहा है। अधिक बखान करने की आवश्यकता नहीं है। देश चरम सीमा से बिलकुल अन्धकार अवस्था को पहुंच गया है—अपने स्वतंत्रता उपासक पुरुषों पर बिलकुल कालिमा का दाग पोत दिया है। इसके मिटाने के लिये। उसे धोने के लिये वहाँ अब वीर गुलशन और लक्ष्मी बाई जैसी वीरांगनाओं का काम है। पुरुष तो अक्ल के ऐसे अन्धे हो गये हैं कि उन्हें अपनी बेइज़्ज़ती का कुछ ख्याल ही नहीं रहा—उनके दिमागों में ताले ठुक गये हैं। बुद्धि पता नहीं कहाँ घास चरने गई हुई है। सारा का सारा मामला गोलमटोल है कि उसकी पेचीली बातों की खोह तक जाना अब पुरुषों का काम नहीं रहा, इसे अब ये वीरांगनायें ही कर सकती हैं।

पाठक ! आज आप के सामने स्वतंत्रता देवी की उपासिका वीर गुलशन की पति-भक्ति का नज़ारा फिर एक बार आपके सामने दोहरा देना चाहता हूं। इसे सुन कर, इसे पढ़ कर कुछ अपने पूर्वजों की आबरू को बचा लीजिये। उसे जितना तहस नहस करना था कर दिया। बिलकुल उनकी शान डूब चुकी है—जो कुछ बची है उसे अब भी बचाओ, नहीं तो सदा के लिये अपना मुंह छिपा लो।

विदुषी, राजनीति पटु, स्वाभिमानिनी, वीरांगना गुलशन की जन्म-भूमि मालवा थी। जहाँ इस देवी ने जन्म किया। साधारण सरदार के घराने में इस देवी ने जन्म लिया। यह किसी सम्राट् के यहाँ उत्पन्न नहीं हुई—हां कितने लोग समझते होंगे कि इसका नाम दुनियाँ में बहुत मशहूर है। आम लोग इसे जानते हैं अतः यह ज़रूर किसी सम्राट् के राज राजेश्वरी होगी। यह उनकी भूल है यह वह देवी है कि जिसने अपने हाथ से ऐसे चमत्कृत कार्य किये कि दुनियां में इस ऊंची पदवी तक जनता ने इसे स्वयं पहुंचा दिया।

इसका विवाह आज कल की तरह नहीं हुआ था कि जन्म ही से पूर्व ही यह तह हो चुका हो कि अगर तेरे यहाँ लड़की हो तो मेरे यहाँ इसकी सगाई करदेना इसने अपना विवाह अपनी इच्छा से किया था किसी के दबाव के नीचे नहीं किया था। उसी का फल था, उसी का पुण्य था, कि इतने राजा और महाराजाओं के उपस्थित रहते हुए भी इस देवी ने जयमाला एक सरदार के गले में डाली। यह था इस देवी का अतुल साहस यह वीर केशरी कौन था—इसका नाम उमर अली लोहानी था—जो एक स्वतन्त्रता का उपासक

था—जिसने अपनी भुजाओं से सम्राट् अकबर के रहते हुए भी अपना एक छोटा सा राज्य स्वतंत्र ईडलबाड़ दुर्ग स्थापित कर लिया था। इस प्रकार मालवे प्रदेश में बाज बहादुर और अलीसोहानी दो स्वतन्त्र नवाब बन गये थे। जो अभी दिल्लीश्वर के आधीन न हुए थे। कितनी बार मुगल सम्राट् ने चाहा कि इसे अपने आधीन कर लूँ, परन्तु उस चतुर नीति निपुण अकबर की दाल गलने न पाई। आखिर उसे वीर सोहानी का लोहा मानना ही पड़ा। उसके अतुल साहस और वीरता के सामने उसकी एक न चली। जिस प्रकार प्रताप ने अपने थोड़े से देशभक्त राजपूतों के सहारे मुगलों के नाक में दम कर दिया था उसी प्रकार इस वीर सोहानी ने भी इस मुगल सेना को परेशान किया हुआ था। वह तो डर था ही, पर अब वीर गुलशन के समागम से यह डर और भी बढ़ गया "सोने में सुहागे का मेल हुआ "वीर गुलशन ने इसकी शक्ति को और भी बढ़ा दिया। यही कारण था कि यह छोटा सा राज्य इतने दिनों तक स्वतंत्रता देवी के गीत को गा सका अकबर की नीति धोखे की चालें सब व्यर्थ हुईं। वीर गुलशन ने किस तरह अकबर के वीर सेना पती को अपनी चालबाजी से ऐसे चक्कर में डाल दिया कि वह कुछ समझ न सका, कि उसका ध्येय क्या है, वह किस काम के लिये आया है, उसने अपने आप को कैद में पाया, उसकी धोखे की चाल चल न सकी, बल्कि स्वयं ही फँदे में फँस गया और फिर किस तरह उस वीरांगना ने उसे लज्जित किया और यहाँ तक नौबत आ पहुंची कि उसे अपना ताज और तलवार उसके हवाले करने पड़े। तभी वह अपनी रक्षा कर सका इसके सिवाय उसके पास और कोई साधन ही

नहीं था। जाते वक्त उस देवी ने यह भी कह दिया कि अगर कुछ बाजुओं में बल है अगर शरीर में कुछ शक्ति है तो मुझे यहाँ से ले जाना यह था साहस उस देवी का, यह थी उसे देवी की वीरता"।

इस तरह इस देवी की वीरता की धाक मुगलों पर खूब बैठी हुई थी। जिस प्रकार महाराणा प्रताप स्वतन्त्रता के लिये तमाम जीवन भर लड़ता रहा उसी प्रकार यह वीर सोहानी और वीर गुलशन लड़ते रहे।

एक बार अकबर ने अपने दूत के हाथ तलवार और जंजीर भेज कर वीर सोहानी की इच्छा जाननी चाही, पर उसने उसकी भेजी हुई वस्तुओं को छुआ तक नहीं, और दूत से कहा कि अकबर से कह देना कि जिस तरह वीर प्रताप, वीर दुर्गावती ने जो दशा मुगलों कि की थी वोही दशा तुम अगर मालवे को हस्तगत करना चाहोगे-होगी मैं जीते जी देश को परतंत्र हालत में नहीं देख सकता।

अकबर उसके इन वचनों को सुन कर क्रोध से लाल हो गया। उसी वक्त अपने सेनापति इस्कन्दर को आज्ञा दी कि शीघ्र जाकर ईडल-गढ़ को फतह कर लो और साथ में सोहानी और धर्मपती को भी कैद कर के लेते आना। सिकन्दर खाँ ने तत्काल ही हुक्म को तामिल किया और सेना सहित उस तरफ प्रस्थान किया।

ऐसा कोई भी सौभाग्य शाली राजा नहीं हुआ कि जिसका स्वदेश में कोई भी शत्रु न हो। कोई भी राजा महाराजा इस विकट औषधी से न बच सका। वही हाल इस मालवे देश में भी था। सिकन्दर पठान का वेश धारण कर एक वृद्ध पठान के सराय में डेरा डाल दिया। यह स्थान सब तरह से गुप-चुप था किसी को इस पर शक नहीं था। कभी

कभी सोहानी यहाँ आकर वृद्ध पठान की स्त्री कुलसुम के हाथ से बनी हुई चाय को पी कर लौट जाते और उसके प्रति सोहानी का मन साफ़ था। परन्तु वृद्ध का हाल विपरीत ही था। वह इससे मन ही मन मन जला भुना करता था। आखिर उसे भी उसके अनुसार ठीक दवा मिल गई, उसका भी इतने दिनों का रास्ता आज खुल गया। उसने किसी तरह इस्कन्दर का सब भेद पा लिया—और उससे अपनी भी इच्छा जाहिर कर दी बस फिर क्या था। इसके लिये मार्ग और भी सरल हो गया वहाँ से एक गुप्त राह दुर्ग तक जाता था जिसका हाल दो तीन के सिवाय और कोई नहीं जानता था।

एक दिन जब कि दुर्ग में उत्सव हो रहा था। सब के सब आनन्द में निमग्न थे और सब सैनिक भी छुट्टी पर गये हुए थे। अच्छा अवसर देख वृद्ध इन्हें इस राह से दुर्ग तक ले आया और स्वयं वहाँ से डर के मारे रफ्फू चक्कर हो गया। समय बड़ा विकट था सब सैनिक छुट्टी पर गये हुए थे।

दुर्ग में थोड़े से आदमियों के सिवाय कोई नहीं मौजूद था, उस पर भी वीर सोहानी मदिरा के नशे में मस्त था। मदिरा ही के कारण कितने राज्य मिट्टी में मिल गये, इसने कितने ही राज्यों को रसातल में पहुंचा दिया, उसी के फंदे से यह वीर भी नहीं बच सका।

इधर इस्कन्दर सब सैनिकों सहित किले में उपस्थित था दुर्ग के दरवाजे को तोड़ कर वह सोहानी के शयनालय में भी आ पहुंचा। सामने एक सुन्दरी को खड़े देख उसका मन डोलाय मान होगया। वह अपने आप को नहीं संभाल सका—बस यही कारण था कि सब मामला सफल

होता हुआ, सब बनी बनाई कार बाई को इसने अपने थोड़े से स्वार्थ के लिये गवां दिया। जहाँ आना नामुकिन था वहाँ आकर भी खुद फंस जाना कितनी दिल्लगी की बात है। सचमुच हुस्न से बचना भी बड़ा कठिन है। इसके आगे बड़े बड़े शूरमा भी अपने कर्तव्य पथ से च्युत हो जाते हैं। इस समय समय का फेर ऐसा उपस्थित हुआ है, कि मैं तुम से प्रार्थना कर रही हूं नहीं तो मैं सम्राट की तलवार को भी कुछ नहीं समझती।

इस्कन्दर को इस में क्या उज्र था। वह तो और ही नशे में चूर था। उसने गुलशन की इन बातों पर विश्वास कर लिया। वास्तव में नीति भी यही है कि "शत्रु का कभी विश्वास न करें"। पर गुलशन नीति में चतुर थी, वह राज नीति में कितनी उस से बड़ी चढ़ी हुई थी। इस लिये उसकी नीति को समझना एक साधारण मनुष्य के लिये दुष्कर था। वह उस की चाल में आ गया। गुलशन ने सेनापति को वहीं ठहरने के लिये कह स्वयं पति की सेवा में चली गई। वहाँ सब बयान कह तत्काल दो दासियों सहित वहां उपस्थित हुई और इस्कन्दर को सब शस्त्र वस्त्र उतार सुगंधित पदार्थों से स्नान करवाया—और नीति निपुण गुलशन ने सोहानी की बनी हुई नई पोशाक इस्कन्दर को पहना दी। तदन्तर स्वादिष्ट भोजन करा उन्हें एक सुन्दर पलंग पर आराम के लिये बैठा दिया। स्वयं गुलशन ने वीणा का बजाना शुरू किया और अपनी मधुर लह से उसके मन को बेबस कर दिया, आंख झपकने लगी। कान भी मधुर वीणा सुन कर मस्त हो गये और नींद ने भी उसे पलंग पर लिटा दिया। बस क्या था सेनापति नींद में मस्त हो गये—पता नहीं क्या खेल होने वाला है, वाह जी वाह

सेनापति, खूब, चौकसी की, अपनी सेनापति पद की अपनी ही खुद दाढ़ी मुड़वाई, इस तरह से वे समझ आदमी भी नहीं करता। वह भी कुछ अपना अवश्य सोच लेता है। परन्तु तुम तो बिलकुल ही अंधे निकले ज़रा भी ख्याल न किया करते क्यों वह तो और ही स्वप्न देख रहे थे—यह सब करामत उस देवी ही की थी। बड़े आनन्द में लेटे हुए हैं—नींद ने भी खूब गहरी नींद में सुला दिया। पता नहीं कि प्रभात हुआ कि नहीं बड़ी मुश्किल से नींद खुली सामने देखते हैं कि सब कमरा खाली है, किसी आदमी का नाम तक नहीं है, एक दम ठिठक कर बैठ गये कुछ ख्याल करने पर दो पत्र दीख पड़े जो इस आशय के थे।

सिकन्दर! तेरे इस सलूक को मैं जन्म भर नहीं भूल सकती, इसका प्रतिफल भी तू अवश्य पावेगा। परन्तु तुमने जो मेरे रूप पर मुग्ध हो अपने ध्येय को छोड़ा उसके लिये कोई मनुष्य तुम्हें नीतिज्ञ व कर्तव्यपथी नहीं कह सकता। तुम वास्तव में मेरे रूप पर मुग्ध हो अपने कर्तव्य पथ से विमुख हुए यह वीरों का काम नहीं—तुमने अपने स्वामी के साथ दगाबाज़ी की। अब पकड़ने की कोशिश करना सब फिजूल होगी।

सिकन्दर ने तत्काल ही अपनी सेना को सोहानी को पकड़ने की आज्ञा दी। स्वयं भी सवारों के साथ साथ चला। पहाड़ी के पार जाने पर सेनापति ने देखा कि सामने गुलबान क्षुब्ध मन से बैठी विलाप कर रही है इस्कन्धर का सब क्रोध काफूर हो गया—उससे गुलबान का यह दुःख सहा न गया उसने बड़े ही जोरदार शब्दों में कहा—हे सेनापति जिसके बचाने के लिये मैंने इतनी कोशिश की उसको मैं

मृत्यु से नहीं बचा सकी । दुःख है कि एक बार फिर तुम्हें तलवार का हाथ न दिखा सकी । अब मैं तुम्हारे हाथ में हूँ । जो हुक्म तुम्हारे स्वामि ने दिया था उसे पूर्ण करो । मुझे बड़ी खुशी है जो कि तुमने मेरी प्रार्थना और आतिथ्य सत्कार स्वीकार किया इसके लिये मैं तुम्हें धन्यवाद देती हूँ । इस्कन्दर ने तत्काल ही उसकी प्रार्थना को स्वीकार किया और सोहनी का शव बड़ी सावधानी के साथ उठवा कर आगरे में लाया गया । गुलसन और कुलसम भी पालकी में बैठ सकुशल वहाँ आई गईं । वहाँ पहुंचने से पहिले ही अकबर ने सब वृत्तान्त जान लिया था । उसने आते ही अपने सेनापति से कहा कि मुझे दुःख है कि तुमने अपना कर्तव्य पालन नहीं किया । यदि तुम अपने कर्तव्य पथ पर स्थिर रहते तो यह दुःखमय दृश्य आज उपस्थित न होता । तुम मेरे साथ मुकाबला करने वाले एक शेर को जो दुनियां में था उसे "यहां से अपनी दुर्बुद्धि के कारण नष्ट कर दिया । दुःख है इस समय मेरा मुकाबला करने वाला एक शेर ही रह गया है । अकबर ने मृतक की अन्तिम क्रिया अपनी ओर से करवानी चाही । परन्तु वीर गुलसन यह कैसे करा सकती थी—उसने साफ़ शब्दों में इन्कार कर दिया " कि जो शूर तमाम जीवन पर तुमसे लड़ता रहा और तुम्हारी अधीनता को स्वीकार नहीं किया"—वह अब क्या इस अन्तिम समय में तुम्हारा ऋणी रहेगा, यह हर्गिज नहीं हो सकता ।

इस प्रकार स्वाभि-मानिनी स्त्री के वचनों को सुन कर अकबर चकित होगया । कुछ देर बाद शव को दफ़न के लिये कब्रस्तान पर ले जाया गया । साथ में बड़ा मनुष्यों का समारोह था । इतना बड़ा समारोह

अब तक राजा और महाराजाओं के साथ भी नहीं गया था—साथ में स्वयं अकबर तथा सेना का जलूस था गुलनार ने रुपयों से गरीबों को धनी बना दिया इतना रुपया दान किया कि जितना एक राजा भी नहीं कर सकता था। इस प्रकार निर्विघ्न शव का दफ़न हुआ। तत्पश्चात् अकबर ने इस्कन्दर को अपने कृत्य का पारितोषिक भी सुना दिया। उसे आजन्म कारावास का दण्ड मिला।

कारावास का दण्ड सुन सिकन्दर एक दम भौचक्का हो गया उसे यह स्वप्न में भी ख्याल न था—कि "उसका फलस्वरूप यह होगा।" उसकी आखों के सामने अंधेरा छा गया पर अपने किये कृत्य का फल मिल ही गया इसमें बेचारे अकबर का क्या दोष ?

इधर क़ब्रस्तान से लौट आने पर अकबर ने गुलनार को बड़े प्यार से बुलाया और उससे बड़ी प्रेममय वाणी में बोले—हे गुलनार तू मेरे साथ में सानन्द रहे और फिर ईदलगढ़ में खुशी से राज्य कर वह तेरा ही राज्य है। परन्तु उस विदूषी स्त्री ने यही उत्तर दिया हे राजन्! मुझे अब ईदलगढ़ लेकर क्या करना, वह तो तभी तक मेरा था जब तक मेरे प्राण पति थे, उसे अब मुझे नहीं चाहिये। अब तो मैं एक सती पतिव्रता स्त्री की तरह अपना जीवन एक योगिनी की तरह निर्वाह करूंगी। मुझे अब धन राज्य आदि की चाह नहीं।

अकबर गुलनार के इन वचनों को सुनकर बड़े दुःखी हुए उस दुःख का वर्णन करना अति कठिन है। यह था शत्रु का भी शत्रु के प्रति विचार, कि अपने एक दुश्मन को भी स्वजातीय स्वबन्धु समझना यह था आदर्श एक राजा का अपने दुश्मन के प्रति। आजकल तो दिल ऐसा

काला हो गया है कि दुश्मन को जिस तरह हो नष्ट भ्रष्ट किया जावे उसके प्रति अन्दर से भी मन साफ़ नहीं। परन्तु इन उदाहरणों को देखने से मालूम होता है कि दुश्मनी होते हुए भी शत्रु ने उससे मिलने का व्यवहार किया। जिसके कारण गुलशन का सारा राज्य यहाँ तक कि प्राणेश्वर भी परलोक सिधारे। उसके साथ उस देवी ने कैसा व्यवहार किया अगर आजकल कोई होता तो उसे कुत्ते से नोंचवा देता या बड़ी बुरी तरह से मारता। परन्तु एक सती ने उस जालिम से भी एक बन्धु की तरह व्यवहार किया। यह था दृष्टान्त क्षमा का, दया का, इसे कहते हैं उपकार।

जो सिकन्दर कुछ समय पूर्व सेनापति के पद पर विराजमान था, जिसके आगे सब आकर मस्तक झुकाते थे, कोई आंख उठा कर देख भी नहीं सकता था—वही सिकन्दर अब काल कोठरी में पड़ा हुआ तड़प रहा है। कोई पानी तक भी नहीं पूंछता। यह सब लीला उस प्रभु की है जो अभी राजा था वह कल दर दर का भिखारी है। उसके क्षण क्षण का पता नहीं—उसकी माया बड़ी विलक्षण है? "प्रभु लीला है तेरा अपार सुनाऊँ कैसे भला" "आज नृपति जो कल के बन्दी, लख पति हो कंगाली"—इससे उस प्रभु की माया का पता पाना अति दुष्कर हैं। पर उस दृढ़ प्रतिज्ञ सती ने अपने वचनों का पूरा पालन किया। वह किये हुए उपकार को भूलने वाली नहीं थी। उसने किस तरह अपने प्राणों की कुछ परवाह न कर अपनी बुद्धिमानी से और किस चतुराई से काम किया, वह वास्तव में सराहनीय है। उसने पहरे वालों को धन का लालच दे उन्हें अपने हाथ में कर लिया। रुपया

ऐसी चीज़ है कि इसके आगे सब झुक जाते हैं। गुलशन निडर हो काल कोठरी में घुस गई। जब कि सिकन्दर इधर से उधर करवटें बदल रहा था। फाटक खुलने का शब्द सुन सिकन्दर एक दम भय से कांप उठा और मन में तरह तरह के विचार करने लगा। परन्तु सामने उस दिव्य मूर्ति को देख उसका सारा दुख एक दम गुम हो गया। एक बार फिर वह अपनी इष्ट कामना को फली भूत समझने लगा? गुलशन ने आते ही उससे सब कह दिया "कि हे सिकन्दर तुम्हें अपने कर्मों का फल पर्याप्त मिल चुका अब तुम्हें अपने उपकार का फल मिलने वाली है जल्दी से यहाँ से भाग जाओ मैंने तुम्हारे भागने के लिये सब प्रबन्ध करा दिया है—बस जल्दी ही यहाँ से जाओ यमुना पर नौका का प्रबन्ध करा दिया है। सिकन्दर कुछ समझ न सका कि क्या माजरा है—वह उसके पीछे २ चल दिया—दुर्ग से बाहर निकल गुलशन ने उसके हाथ में मोहर दे स्वयं एक दम लुप्त हो गई। सिकन्दर कुछ न समझ सका कि यह स्वप्न है या और कुछ। वह मुग्ध की तरह उसके बताये हुए मार्ग पर चला गया और उस वीरांगना की क्षमा वृत्ति—और उदारता की प्रशंसा करने लगा।

इस प्रकार सोचते विचारते वह यमुना पर पहुंच गया वहाँ नौका पर सवार हो उस पार चला गया,—तदन्तर अनेक कष्टों को सहता हुआ वह मालवे पहुंच गया। सत्य है सुख आने में भी देर नहीं लगती। जिसकी किस्मत चंगी होती है वह बिना रौशन हुए रह ह नहीं सकती। यही हाल अब सिकन्दर का था। मालवे में आकर जब वह छोटी सी मसजिद में ठहरा हुआ था कि अचानक घूमते घामते मालेश्वर

भी उधर आ निकले। दुर्भाग्य-वश उन्हीं दिन मालेश्वर को शत्रुओं ने आ घेरा। समय बड़ा विकट था। कोई सहायक नहीं था—परन्तु उसी समय वीर सिकन्दर ने अपने कर्त्तव्य पथ को ध्यान में रख कर एक दम शत्रुओं पर झपट पड़ा! शत्रु इस अचानक सहायता को देख बड़े विस्मित हुए और वहाँ से जल्दी ही उन्होंने अपना रास्ता पकड़ा। इस तरह इस वीर ने मालवेश्वर को विपत्ति काल से बचा लिया मालवेश्वर भी अपने संकट समय में प्राण बचते देख इसके बड़े कृतज्ञ हुए और झट गले से लगा लिया तथा महल में चलने के लिये भी प्रार्थना की। वहाँ पहुंच कर जब इसने सारा वृतान्त सुना तब वे और भी प्रसन्न हुए और इसे अपने यहाँ का सेनापति बना दिया। यह है माया उस प्रभु की कि जो कल दर-दर भटक रहा था वही अब सेनापति के पद पर शोभित है।

इधर सिकन्दर को आपत्ति सागर से-कर गुलशन, और उसके पति सहित मालवे में उस से पूर्व पहुँची और आने के साथ ही बाज़बहादुर से मिली। मालवेश्वर गुलशन की इस सोचनीय अवस्था को देख बड़े दुःखी हुए और उस से आने का कारण पूछा उस सती ने बड़े सीधे शब्दों में अपने आने का कारण कह दिया कि हे बाज़बहादुर मैं अपने सुख के लिये तुम से कुछ नहीं मागती मैं तो अब सन्यासिनी हो गई हूँ। केवल एक सहायता माँगती हूँ वह यह है कि मेरी सखी कुलसम को अपने राज भवन में सुख से रखो यह इस के पति को भी यहां सुख से रखो इन्हें यहाँ किसी प्रकार की कष्ट न होने पावे। बाज़बहादुर ने उसकी प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर लिया और कुछ अपनी पुत्री रुपिया की सहचरी बनादी। वह भी यहाँ सुख

से दिन बिताने लगी। यह था उदारता का फल। यह था एक दुश्मन के प्रति भी सद्भाव का ख्याल जिसने इसके राज्य को नष्ट करा दिया उसीको इस देवी ने अनेक कष्टों से बचाती हुई इस पद तक पहुंचा दिया यह है। क्षमाशीलता का जीता जागता का उदाहरण।

इधर गुलशन भी मालवे के एक समीपस्थ वन में शाहजान नामक एक वृद्ध महात्मा के पास आकर रहने लगी और उनसे उत्तम उत्तम उपदेशों का श्रवण करने लगी।

सिकन्दर बड़े आनन्द से मालवेश्वर के यहाँ रहने लगे—रहते रहते इनका प्रेम रुबिया से हो गया जिससे एक और मामला उठ खड़ा हुआ। रुबिया की शादी मालवेश्वर अहमद नगर के सुल्तान से करना चाहते थे। पर मामला विचित्र देख मालवेश्वर ने तीनों को कैद में डाल दिया।

जब यह खबर गुलशन ने सुनी तो उससे यह देखा न गया। वह स्वयं तथा महात्मा शाहजान के सहित मालवेश्वर के पास आई। इस कृति की घोर निंदा और गुलशन की प्रभाव मयी वाणी को सुन कर नवाब बहुत प्रसन्न हुआ सिकन्दर का विवाह रुबिया से हो गया। संतति न होने के कारण उन्होंने बड़ी खुशी से युवराज पद से भी इन्हें विभूषित किया।

गुलशन के इन सद्व्यवहार परों को देख सिकन्दर ने बड़े ही मीठे शब्दों में कहा हे बहिन! मैं तुम्हारे गुणों का वर्णन किस जिह्वा से करूँ तुम स्वयं देवी हो कि अप्सरा। मैंने तुम्हारे साथ जिस तरह का वर्ताव किया वह मेरे सारे जीवन को कलंकित करता रहेगा। परन्तु तुमने फिर भी मेरे साथ भाई की तरह वर्ताव किया इसे मैं आजन्म नहीं भूल

सकता। कोई वस्तु ऐसी नहीं जो तुम्हे भेंट करूँ। तुम्हारी ही यह सब महिमा है जिसके द्वारा मैं फिर उसी पद पर पहुंच गया। प्यारी बहिन! मेरे इन कृत्यों से क्षमा करना इस कारण से उऋण नहीं हो सकता।"

अगले दिन महात्मा और गुलबान ने मक्के की राह की और उसके उपरांत कोई खबर भी उनकी न मिली। सिकन्दर सदा उसकी याद में आखों से अश्रुधारा बहाया करता था।

यह थी उस रमणी की क्षमाशीलता! किस तरह वह वीर देवी अपने वचनों पर स्थिर रही अपने प्रण को पूर्ण निभाया, स्वार्थ का नाम मात्र का भी न था। ऐसी ही देवियाँ भारत का उद्धार कर सकती हैं। उन्हीं से ही भारत अपने आप की आपत्ति से फिर उभार सकता है। यदि देश से कुछ भी आशा है तो इन्हीं देवियों पर है। इसी के कारण इस वीर गुलबान का नाम सदा के लिये अजर अमर होगया।

गान्धारी

भारत के पश्चिम भाग में कान्धार देश है। इसी को प्राचीन समय में गान्धार देश कहते थे। गान्धार देश का राजा बड़ा वीर और विद्वान था इसी की कन्या का नाम गान्धारी था। जिस का दिग्दर्शन पाठकों को आज यहाँ करा देना चाहते हैं।

गान्धारी का जीवन चरित्र प्रायः सभी ने पढ़ा या सुना होगा। उस का बखान करना अब अच्छा न समझ केवल मात्र उसके गुणों का ही दिग्दर्शन करा देना चाहते हैं। जिसके मतंबा उस सती साध्वी विदुषी का जन्म सदा के लिये भारत में उज्वल स्वरूप हो गया।

गान्धारी का विवाह धृतराष्ट्र से हुआ पति को अंधा देख इस पतिव्रता स्त्री ने भी अपनी आखों में सदा के लिये कपड़े की एक पट्टी बांध ली। जिसमें मालूम पड़े कि यह स्त्री में भी कितनी पति-भक्ति और पति-श्रद्धा थी। इसके कुरुकुल के आते ही कुरुकुल जगमगा उठा। इससे १०० पुत्रों का जन्म हुआ जिससे पाठक परिचित ही होंगे। सबका वर्णन न करते हुए विशेष भाग का ही वर्णन किया जायेगा।

इन सब पुत्रों में धृतराष्ट्र दुर्योधन से विशेष प्रेम करता था। इसी का अंतिम नतीजा कुरुकुल का विध्वंस हुआ अन्ततः धर्मात्मा विदुर ने साफ़ धृतराष्ट्र से कह दिया था कि और अपने कुल को बचाना चाहे

ले इस पुत्र का यहीं अंत कर दे। परंतु मोहान्ध धृतराष्ट्र ने कुछ न समझा और सुनता भी कैसे अपना पुत्र किसे नहीं प्यारा होता। भरे वह कितना दुष्ट पापी क्यों न हो।

इसी दुर्योधन ने कुरुकुल में फूट का बीज बोया और तमाम कुरु का नाश किया। इसने अपने भाइयों के साथ ऐसे २ दुर्व्यवहार किये जो सब के भाइयों के सामने ही हैं। इसी ने ही भीम को विष दिया। सहिष्णु गान्धारी ने कितनी बार ही अपने पतिदेव से प्रार्थना कि अब भी लगती हुई आग को बुझा दो अब भी इसके शान्त करने की अवधि हैं। परंतु धृतराष्ट्र ने एक न सुनी। यह था इस सती सुशीला का नजारा कि अपना पुत्र देते हुए भी कभी अपने सत्य पथ से न डिगी। सदा यही करती रही कि हे धृतराष्ट्र अब इस कुरुकुल की अंत समीप आगया है इस की जड़ें अब हिलने लगी है।

दुर्योधन खुद तो था ही पर साथ में एक और पापी के मिल जाने से उसका हौसला और बढ़ गया; सहारा मिल गया यह था गान्धारी का भाई शकुनी जिसकी सहायता से इसने ये सब कांड किये। इसी की सम्मति द्वारा युधिष्ठिर को दो बार जुआ खिलाया गया। जिसमें युधिष्ठिर इस में पटु भी होते हुए उस दुष्ट पापी की धोखे बाजी तो न देख सके और सब राज पाट हार गये यहाँ तक कि द्रौपदी भी दाव पर रख दी और वे हार गये। इस समय सब ने दुर्योधन के आधीन थे सभा में सब भीष्म द्रोण सभी महात्मा उपस्थित थे। उनके सामने ही द्रौपदी को लाने के लिये दुर्योधन ने अपने भाई दुश्शासन को अज्ञा दी। वह बे रहम दिल बाला उस सती द्रौपदी को झोटी से पकड़ सभा में ले गया

शोक है उस वक्त इतने वीरात्माओं के रहते हुये भी किसी के मुंह से एक शब्द न निकला। धृतराष्ट्र भी यह कृत्य देखता रहा। सभा में कुहराम सा मच गया। कुछ देर बाद इस का समाचार उस पतिव्रता गांधारी के भी कानों में पड़ा। उससे यह भीषण अन्धकार न देखा गया। एक दम सीधी सभा में आई जहाँ कि सब धर्मात्मा और विद्वान जन मौजूद थे। आते ही धृतराष्ट्र से प्रार्थना की कि ये सब कृत्य क्या हो रहा है; इस तरह तो काम बिलकुल भी नहीं चल सकता। इन अत्याचारों के होते हुए भी आप यहाँ उपस्थित हैं और मना नहीं करते। बड़े शोक की बात है। इस तरह आप कितने दिन तक ठहर सकते हैं। कृपा कर इस कांड को अब तो बन्द कराइये। गांधारी की आज्ञा से वे सब मुक्त हुए और वे सब अपने राज्य में लौट आये।

इस तरह घर से निकलते देख दुर्योधन को बड़ा दुःख हुआ। उसने फिर एक बार इन्हें फंसाना चाहा। अपनी इच्छा धृतराष्ट्र से जाहिर की। धृतराष्ट्र क्या कर सकता था वह तो पुत्र के हाथ में था—पुत्र की जो इच्छा करा ले। पुत्र प्रेम वशीभूत धृतराष्ट्र ने इसे फिर आज्ञा दे दी। इस कृत्य को पुनः होते देख गांधारी बड़ी दुखित हुई उसे नहीं समझ पड़ा कि क्या करूँ। परन्तु अपना कर्तव्य समझ धृतराष्ट्र के पास आई और कहने लगी—

हे महाराज! जरा समझ बूझ कर काम करिये। गान्धारी का भी कुछ ख्याल कीजिये। बिलकुल धर्म को हाथ से छोड़ न दीजिये। जिसे एक बार आज्ञा किया है उसे दुबारा न मुकराइये। अपने भाइयों के साथ ऐसा बर्ताव करना कौन सी नीति का मार्ग है। ऐसा कौन सा नया

कर्म है । कुमार्गी पुत्र के कथन में पड़ कर धर्म को न छोड़िये । जरा आगे का भी सोचिये नहीं तो कुल का नाश होने से न बचेगा । इसकी भाग्य लक्ष्मी सदा के लिये बिदा हो जायेगी ।

गांधारी जितना उपदेश दे सकती थी । दिया, पर धृतराष्ट्र को पुत्र मोह ने न छोड़ा । सब बातें विफल हुईं । पुत्र की बात के विरुद्ध करना धृतराष्ट्र में ताकत न थी । इसी के कारण कुल का नाश हुआ । दुर्योधन की इच्छा पूर्ण हुई । युधिष्ठिर को जुए के लिये फिर बुलाया गया और साथ का पारितोषिक भी सुना दिया कि जो हारेगा वह बारह वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञात वास रहेगा" खेल प्रारंभ हुआ । परन्तु धोखे बाज शकुनी से पार पाना कठिन था । अतः हारने पर बनवास के भागी हुए । समय की समाप्ति पर पांडवों ने अपना राज्य मांगा । परंतु दुर्योधन ने टालमटोल की—अतः धर्मात्मा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण जी को अपना राज्य दिलवाने के लिये हस्तिनापुर भेजे । परंतु वहाँ कृष्ण को दुर्योधन ने कोरा ही जवाब दिया तथा सभा के बीच में "सूच्याग्रं न दास्यामि बिना युद्धे न केशव" कहा कि हे कृष्ण । युद्ध के बिना मैं सुई के नोक पर भी स्थान पांडवों को नहीं दे सकता । यह था एक भाई का भाई के प्रति व्यवहार, और और स्वयं सभा भवन से चला गया । धृतराष्ट्र ने परिस्थिति अच्छी न देख तत्काल गांधारी को बुलाने की आज्ञा दी । गांधारी सभा भवन में आकर सारी कहानी सुनी । विकटावस्था देख गांधारी धृतराष्ट्र से कहने लगी । राजन् । यह सब आप ही की दया की महिमा है—अगर आप पुत्र को शुरू से ही काबू में रखते, तो यह नतीजा आज देखना न पड़ता-

इस दुर्व्यवहार को देख दुनिया आप को क्या कहेगी। वह पुत्र ही नहीं जो पिता का कहना न माने। उसे राज्य का अधिकारी बनाना अपनी ही मूर्खता है। परंतु फिर भी मुझसे जितनी कोशिस होगी उतनी करती हूँ। नतीज़ा कुछ भी हासिल नहीं होता—यह मुझे पता है। गांधारी के कहने पर दुर्योधन फिर सभा में आया और गांधारी ने समझाना आरंभ किया "हे पुत्र! इस तरह राज्य के मोह में पड़ कर अपना तथा कुल का क्यों विनाश करते हो। आदरणीय कृष्ण की बातों पर क्यों नहीं विचार करते। उनकी बातों को ध्यान से सुनो। बड़ों का हँस कर निरादर करना महापाप है। अपने राज्य से संतोष करो— पांडवों का भाग उन्हें लौटा दो। इसी में सारे कुल का लाभ है। अति लालच मत करो "अति सर्वत्र वर्जयेत" इस समय के लाभ को देख कर सारे कुरुकुल का नाश मत कराओ। अपनी बुद्धि को सुमार्ग पर लाओ, इसे कभी मत ख्याल करना कि मेरी सेना में बड़े २ वीर हैं इसे सारा याद रखना "सत्यं विजयते नानृतम" सत्य की सदा विजय होती हैं। इसलिये उनका राज्य उन्हें देकर सुख से राज्य करो। परंतु दुर्योधन के हृदय पर इन वचनों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। सब बड़े बड़े उपस्थित महात्माओं ने समझाया परंतु सब व्यर्थ हुआ। गान्धारी अपनी ओर से जितना डाट सकती थी हर तरह से उसने काम किया। पुत्र पर डांट आजकल कहीं भी नहीं देखी जाती और विशेष कर माता की। परंतु इस सत्य पथ गामी गांधारी ने अपने कर्तव्य को समझा कि मेरा पुत्र पाप कर रहा है, मेरा पुत्र अधर्म कर रहा है। इन बातों को देखकर उसने कहीं भी अपने पुत्र का पक्ष नहीं लिया है। कहीं भी उसके पक्ष

का समर्थन नहीं किया। आजकल अगर इस बात की खोज की जाये तो शायद ही कोई माता ऐसी पाई जाये जो अपने पुत्र को इस तरह धमका सके। बल्कि उलटी ही लाड़ प्यार करेंगी। जिसका यह कारण उपस्थित हुआ कि बच्चे दिन के दिन बिगड़ते जाते हैं। उनको कोई कहने वाला नहीं है। उनको कोई मना करने वाला नहीं है। जिससे वे और भी स्वतंत्र रूप में हो अत्याचार करने में नहीं डरते। क्योंकि केवल इस बात से कहने के लिये माता पिता ही हैं जब वही उपेक्षा वृत्ति करने लगेंगे तब उन्हें और कौन रोकने वाला होगा। वह फिर उसी दुर्योधन की तरह अपने कुल को कलंकित करेंगे। जगह जगह माता पिता का अपमान करेंगे। एक बार जिसे सिर पर चढ़ा लिया फिर उतारना कठिन होता है। अतः पहिले से ही सोच समझ कर काम करो। पुत्र के प्रेम के वशीभूत होकर अपना और पुत्र का अपमान न करो। इसके भागी तुम ही होगे। पुत्र नहीं होंगे। जब कि तुमने उसे देखते हुए भी कुमार्ग से न रोका। ईश्वर के दरबार में तुम ही दोषी ठहराये जाओगे। पुत्र साफ बच जायेगा। उस समय पछताने से कुछ काम नहीं चलेगा। अतः जिस प्रकार से हो सके अपनी संतान को कुमार्ग पर जाने से बचाओ। अपने कुल को नही नहीं भारत कुल को प्रेम के वश में होकर कलंकित न करो। उस पर दाग न लगाओ धार्मिक बन तेजस्वी वीर गांधारी से इस का उपदेश लेने का यत्न करो। कि स्त्री होते हुए भी वह पुरुष से बाजी मार ले गई। एक सीढ़ी अपने चरित्र से ऊपर चढ़ा दिया। दिखा दिया कि स्त्रियाँ भी पुरुषों से कम नहीं अपितु बढ़ कर हैं। ऐसा निराला चरित्र पाना दुनियां में

अति कठिन है कि माता अपने पुत्र को इस तरह डाँटे डपटे । विशेष कर ऐसा करना पुरुष ही कर सकते हैं । माता के साथ ही पुत्र के सुख दुःख में भाग लेने वाली शाप कराने वाली होती हैं । परन्तु गांधारी ने अपने चमकते उदाहरण से दिखा दिया कि स्त्रियाँ भी किसी बात में पुरुषों से कम नहीं, उन से बढ़कर हैं ।

जब कि इतना समझाने बुझाने पर भी दुर्योधन के मन में कुछ प्रभाव न पड़ा । तब जो अगला काम था वह हुआ । बिना हुए, वह नहीं रहा । युद्ध हुआ और गांधारी के वचनानुसार धर्म की जीत अर्थात युधिष्ठिर महाराज की विजय हुई । और कुरुकुल समूल नाश हुआ ।

युद्ध के प्रारंभ में दुर्योधन डर से अपनी माता के पास विजय की आशीर्वाद लेने लगा परन्तु साध्वी गांधारी ने सदा उससे यही वचन कहे कि हे दुर्योधन "सत्यं विजयते नानृतम्" सत्य की विजय होती है अधर्म की नहीं । और वही अन्तिम परिणाम भी हुआ ।

यद्यपि युद्ध में गांधारी के सब पुत्र मारे गये परन्तु उस देवी को इससे कुछ भी दुःख न हुआ । वह युधिष्ठिर के यहाँ अपने पति सहित सानन्द रही । कभी २ पति को दुखी देख उसका भी जी पिघल जाता था और अपने पुत्रों के नाश से दुःख अवश्य होता था । परन्तु उसने कभी दुःख नहीं मनाया । केवल धृतराष्ट्र अपने प्रिय पुत्र दुर्योधनके मरने से अत्यधिक दुःखी थे । उस समय इस देवी का भी मन उतर आया । इसके भी दिल को बड़े जोर से धक्का लगा । परन्तु वासुदेव के वचनों से उसके दिल को शांति मिली । यह एक वीर जननी की धीरता और सुशीलता है कि इतने पुत्रों का मरण अपनी आंखों से

देखा कुछ भी शोक नहीं मनाया। इसका केवल एक मात्र ही कारण थी "वह सत्यदीक्षा, धर्म-दीक्षा थी। उस धर्म के आगे न्याय के आगे पुत्र भी तुच्छ है अगर पुत्र कुमार्ग-गामी है। जहाँ राम पिता की आज्ञा से बनवास को गये, इतने कष्टों को झेला। परन्तु आह तक न की, उन सब कष्टों को बड़ी हंसी से सहा। वहाँ दूसरी ओर दुर्योधन जैसे पुत्र जो पिता की आज्ञा भंग में ही अपनी बड़ाई समझते हैं। यह था नज़ारा भारत का यह था अवनतवस्था का। जिसके द्वारा सारे भारत का सर्वभौम अपहरण किया गया। जिस में लाखों वीर भारतीय मारे गये। बड़े विद्वानों नीतिज्ञों का नाश हुआ—केवल पुत्र सिर पर चढ़ाने से। नहीं तो भारत की ऐसी दशा न होती। उसकी सुख की नींद छीनी न जाती। पर भाग्य चक्र है, वह हुए बिना नहीं रह सकता।

इस तरह विदुषी धर्मात्मा कुछ दिन युधिष्ठिर महाराज के यहाँ रह कर पति तथा कुन्ती सहित वन में चली गयी और वहाँ जाकर तपस्या करने लगी।

जना

प्राचीन समय में नीलध्वज नामक एक राजा महिष्मती नगरी में राज्य करता था। उसकी रानी का नाम जना था। वह बड़ी तेजस्विनी और अभिमानिनी थी तथा गंगादेवी की थी भक्ता। गंगादेवी के आशीर्वाद से इसके एक बड़ा महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका नाम प्रवीर था।

एक बार की बात है कि महाराज युधिष्ठिर ने विजय नगर के पश्चात अश्वमेध यज्ञ करना चाहा। उसके विजयानुसार संसार दिग्विजयी अर्जुन की अध्यक्षता में एक घोड़ा छोड़ना चाहा तथा साथ में महाराज कृष्ण जी भी थे, अतः किसी की हिम्मत न थी जो उस घोड़े को रोक सके। अर्जुन के सामने किसी की न चलती उसकी वीरता से सभी परिचित थे।

घोड़ा स्वच्छन्द अनेक देश देशान्तरों में घूमता हुआ महिष्मती नगरी में आ निकला। तेजस्वी वीर प्रवीर भला कब अपना अपमान देख सकते थे। उनका जन्म एक ओजस्वी जननी के गर्भ से हुआ था। अतः क्षत्रियों के सब गुणों का अन्त स्वभाविक ही था। उसने घोड़ा को आते देख उसे पकड़ लिया और अपने आप महल की ओर ले चला।

राजा नीलध्वज यह देख कर बहुत घबराये और पुत्र से कहा कि घोड़े को छोड़ दो। परन्तु पकड़ कर फिर छोड़ना उस वीर प्रवीर का काम न था। बिना श्री कृष्ण जी के परम भक्त थे। अतः वे यह नहीं कर सकते थे कि उन्ही ही की स्तुति कर के उन्ही से लड़ाई ठाने। यह करना वह पाप तथा कुल के लिये घातक समझते थे। और उनसे लड़ना अपना विजय ही समझते थे। अतः उन्होंने साफ़ शब्दों में कह दिया कि भला इसी में है कि घोड़े को दो।

पिता के इन वचनों को सुन कर प्रवीर का दिल टूट गया। वह अपनी जननी से सलाह लेने के लिये गया। जना ने पुत्र को उदास देख उसका कारण पूछा। पुत्रने सब हाल कह दिया। अपने पुत्र का साहस तथा उत्साह मन ही मन प्रशंसा हुई; परंतु पिता के भीरु वचनों को सुन कर बड़ी लज्जित तथा उदास हुई। उससे अपने पुत्र का अपमान न देखा। गया वह अपने पुत्र के भावों को दबाना नहीं चाहती थी। अतः वह शीघ्र ही अपने स्वामी के पास गई और अपने पुत्र की इच्छा ज़ाहिर की।

नीलध्वज ने कहा कि तुम अर्जुन के पराक्रम को जानते ही हो उसे युद्ध में कोई भी पराजित नहीं कर सकता। तथा साथ में भगवान कृष्ण जी सहायक हैं उनके साथ होने से और युद्ध का करना स्वयं मृत्यु को आह्वान करना है। इस से बेहतर यही है कि उनकी अधीनता को स्वीकार करलो। इसमें कौनसा नुक़सान है।

माता स्वामी के इन वचनों को सुन बड़ी दुःखित हुई और कहने लगी कि तुमारे क्षत्रिय कुल को धिक्कार है। तुमने क्षत्रिय कुल में जन्म

लेकर उसे कलंकित करना सोचा है। कौन सी बड़ी बात है कि वे बलवान् है। वे भी आखिर क्षत्रिय तो हैं भी हम भी क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय होकर स्वाधीनता स्वीकार करना क्षत्रिय का काम नहीं। बल्कि क्षात्र धर्म की अपमान करना है। आप का पुत्र भी अर्जुन से किसी बात में कम नहीं है वह भी वीर है उसके बाहुबल पर भरोसा कीजिये। आप स्वयं भी क्षत्रियवर्य वीर हैं उस पर आपकी सेना भी रण-युद्ध में निपुण है। बिना युद्ध किये अपनी हार को मान लेना इसमें अपना ही ओछा-पन प्रतीत होता है। इससे बेहतर रणाङ्गना में शत्रुओं का विध्वंस करते हुए अपने प्राणों का पुरस्कार देना ही अच्छा है मृत्यु से डरना पाप है। क्षत्रिय लोग सदा मृत्यु की प्रतीक्षा करते रहते हैं। वे युद्ध में मरना ही अपना अहोभाग्य समझते हैं। इससे उनका यश तमाम जहाँ में रोशनी के समान फैल जाता है। और स्वर्ग लोक में भी सुख से नींद लेते हैं। राजा का विनाश होना स्वभाविक ही है। यह सब स्थायी है। एक रमणी के मुख से यह बात निकलती हुई क्या आप को यह अच्छा लगता है। आप पुरुष हैं। अपने आप को हीन समझना वीरों का काम नहीं। वे प्रबल शत्रु के आगे भी शीश झुकाना पाप समझते हैं। वे क्षात्र धर्म का पालन ही अपनी हस्ती को रखना ही धर्म समझते है।

माता के इन ओजस्वी बचनों को सुनकर नीलध्वज बड़े लज्जित हुए। उन्हें युद्ध करने के सिवाय और कोई अच्छा मार्ग दीख ही नहीं पड़ा। उन्होंने शत्रु के आधीन होने की अपेक्षा रण में प्राण देना ही अच्छा समझा। परंतु अपने आराध्य-देव

पर कैसे शस्त्र उठा सकते थे यही उनके दिल में खटकता था। इसी की चिंता में वे निमग्न थे। परंतु माता ने उस चिंता को भी दूर कर दिया। उसने कहा कि अपने धर्मपथ के अनुसार काम करते हुए अपने इष्टदेव से भी चाहे युद्ध करना पड़े उसमें कुछ भी पाप नहीं है। बल्कि उसमें उसका कर्तव्य पालन प्रतीत होता है। इससे तो तुम्हारे आराध्य देव और भी खुश होंगे कि मेरा सच्चा भक्त कितना अपने धर्म मार्ग का पक्का है। वह धर्म के वास्ते अपने पूज्यदेव पर भी कुठाराघात कर सकता है। इस प्रकार माता ने अपनी ओजस्विनी वाणी से नीलध्वज के सब संशयों को मिटा दिया। और नीलध्वज युद्ध के लिये तैय्यार हो गये।

प्रवीर युद्ध का नाम सुनते ही उसका दिल खुशी से फूल उठा वह अपनी माता के पास गया जा कर क्या देखता है कि माता सब अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित है। प्रवीर तो पहिले ही से तैय्यार था। थोड़े ही समय यह समाचार सारे नगर में फैल गया। नागरिक लोग शीघ्र ही लड़ाई की तैय्यारी करने लगे और सब के सब प्रवीर की अध्यक्षता में रणांगण को चले।

वीर प्रवीर के दिल में नया जोश था, नया साहस था, बालक होते हुए भी उसने वीर अभिमन्यु की तरह अपना शौर्य दिखा दिया। अर्जुन भी देखता रह गया। पहिली लड़ाई में अर्जुन ने हार खाई।

परन्तु अगले दिन अर्जुन को यह हार सहन न हुई वह एक बालक से शिकस्त खाजाये यह कब देख सकता था। भगवान् श्रीकृष्ण रथ संचालन में कोई कसर न छोड़ते थे। अर्जुन के पैने बाणों से प्रवीर रणांगण में हत हुआ। पुत्र को मरा देख नीलध्वज शोक से व्याकुल हो गये

भगवान् कृष्ण यह देख अपने भक्त की लाज बचाने के लिये उससे यज्ञीय घोड़ा माँगा।

भगवान् की विनय को सुन कृष्ण-भक्त नीलध्वज अपने आराध्य देव की विनय को टाल न सके और उन्होंने बड़ी खुशी से यज्ञीय घोड़ा उन्हें सौंप दिया। तथा अपनी राजधानी में चलने के लिये कहा।

शोक के बजाय नगरी में हर्ष की ध्वजायें उड़ने लगीं। मंगल सूचक बाजे बजने लगे। पथों पर पुष्पों की वर्षा होने लगी। इस तरह सारी नगरी खुशी से भरपूर हो गई। परन्तु एक वीर क्षत्राणी इस आन्दोत्सव को नहीं देख सकती थी। उसे कब यह पसन्द कि एक शत्रु जिसने कि उसके पुत्र को मारा है जो कि उसका दुश्मन है उसे अपने राज्य में लाकर खुशी का उत्सव मनाये। उससे यह दुःख मय कृत्य देखा न गया। वह कुपित सर्पिणी की की भाँति स्वामी के पास आकर कहने लगी। महाराजा उससे यह दुखमय कहानी देखी नहीं जाती। कहाँ तो आज सारी राजधानी में दुःख का दिवस था कहाँ आज सारी नगरी में खुशियाँ फैलाई जा रही हैं। आप का प्रियपुत्र, आपका वीर पुत्र प्रवीर कहाँ है? जिसकी भुजाओं पर आप अपने राज को जीता हुआ समझते थे। जिस को देख कर आप का दुखित हृदय भी एक बार खिले बिना नहीं रहता था। वह सर्व गुणों का शिरोमणि वीर कहाँ है, कहाँ उसे छिपा रक्खा है? वह आज सीता के वचनों को सुन कर क्यों नहीं गोद में आकर बैठ जाता? मेरी गोद इतनी देर से खाली क्यों है सच बतलाओ यह क्या उसी की विजयोपलक्ष में खुशियाँ मनाई जा रही हैं? परन्तु वह

जो यहाँ कहीं दीखता नहीं फिर नगर में खुशी क्यों मालूम पड़ती है। पुत्र के मरने पर इतनी खुशियाँ मनाई जा रही हैं ! उसके दुश्मन को बड़े आनन्द के साथ स्वागत कर आप अपने राजसिंहासन पर बिठलाये हुए हैं। यह आप का अन्तिम धर्म है—यह आप का आर्य धर्म है ? इसे सुन कर दुनियां क्या कहेगी। पुत्र के मरने पर खुशी मना रहा है। अपने जीवन पर कालिख क्यों पोतते हो। अपने वंश को अपमानित क्यों करते हो। अब भी समय है—अपने कर्तव्य पथ को अच्छी तरह विचार लो—अपने दुश्मन के इस अपमान का बदला लेलो। तुम क्षत्रिय हो ? क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए हो उसे अपमानित मत करो"। इस प्रकार माता की वाणी को सुनकर नीलध्वज बड़े शोक में पड़ गये उन्हें कुछ सूझ न पड़ा क्या करें। माता को समझाने लगे परन्तु माता कब उसके भीरु वचनों को सुन सकती थी। उस वीराङ्गना ने इस तिरस्कृत कुल में रहना अपमान समझा। तत्काल ही इस पुरी को उसने सदा के लिये छोड़ दिया।

दुखिनी जना वनों पहाड़ोंको कांपती हुई गंगा के तट पहुंची। और इस नश्वर शरीर को अपनी पूज्य गंगा की गोद में सदा के लिये सुला दिया।

चिन्ता और भद्रा

एक बार देवलोक में इस बात का झगड़ा उपस्थित हुआ कि शनि और लक्ष्मी में कौन बड़ा है। इस झगड़े को मिटाने के लिये उन्हें भूतल में श्रीवत्स राजा के सिवाय और कोई न दीख पड़ा। अतः वह अपने झगड़े को निपटाने के लिये राजा श्रीवत्स के पास आये।

राजा श्रीवत्स का नाम दुनियां में धर्म के लिये प्रसिद्ध था। उनकी रानी का नाम सती चिन्ता था। वह सब गुणों में परम प्रवीणा थी।

राजा श्रीवत्स इस झगड़े को देख बड़े चक्कर में पड़ गये परन्तु अन्त में उपाय सूझ ही गया। उन्होंने अपने सिंहासन के दोनों ओर एक चांदी का सिंहासन और दूसरी ओर सोने का सिंहासन रखवाया। जब वे अगले दिन अपने झगड़े का निपटारा सुनने आये तब सब सभा के पुरुषों ने तथा राजा ने उनका स्वागत किया। राजा ने दोनों को बैठने का अनुरोध किया। दोनों के दोनों एक एक सिंहासन पर बैठ गये—बस राजा का प्रश्न हल हो गया। इतने में दोनों ही ने अपने प्रश्न का उत्तर पूछा। राजा ने कहा पूरा तो हल हो गया है। इसे अब आप अपने स्थान तथा सिंहासन द्वारा ही देख सकते हैं कि हम दोनों में कौन बड़ा है और कौन छोटा है। मुझे इसके विषय में बताने की कोई आवश्यकता नहीं रह

उन के वचनों को सुन कर शनि का चेहरा क्रोध से लाल हो गया। सारी सभा के बीच में एक देवता अपना अपमान कैसे देख सकता था। उसने इस अपमान का बदला लेने का मन में पक्का इरादा कर लिया।

राजा के सब सुख भोगों पर शनि का फेर पड़ गया। जिसके पीछे शनि ग्रह होता है वह अपने जीवन को कैसा समझता है, यह आप स्वयं ही सोच लीजिये। या आजकल के ज्योतिषों से पूछ लीजिये इस ग्रह के मारे मनुष्य मारे मारे फिर रहे हैं। ज्योतिषी भी साफ कहते हैं कि तेरे अमुक लग्न में शनि है—अतः खूब दान तथा धर्म कर परन्तु यह सब तो उनके ठगने का एक मात्र कारण होता है। क्योंकि इससे उन्हें कब रुपया मिलता है? और वह अक्ल का अंधा पुरुष भी उस वक्त जो हमारे ज्योतिषी जी कहते हैं आखें बन्द किये हुए केवल शनि ग्रह कहने से खूब रुपया उनकी मुट्ठी में देते हैं। परन्तु उस ठगिया ज्योतिषी की हस्ती क्या जो उसे उससे बचा सके अगर वह इस तरह दुःखों से बचा सके तब तो वे ईश्वर हो गये—उन्हें किस वस्तु की कमी रही। वह क्यों नहीं इस ढोंग को बन्द कर अपने सुखों का पता लगा लेते। क्यों दिन रात इसी चिन्ता में निमग्न रहते हैं कि कोई पुरुष आवे कोई लग्न का फँसा पुरुष आवे जिससे मुट्ठी गर्म हो। और कुछ खाने को मिले। यह है लीला इन ठगिये ढोंगियों की जिसके द्वारा वे सारे संसार को ठगते फिरते हैं शनि ग्रह से बचना बिलकुल असंभव है। वही अब हमारे धर्मात्मा राजावत्स पर कुपित हैं। उनका भी हाल सुन लीजिये।

थोड़े दिन बाद उनके राज्य में भूकंप दुर्भिक्ष, महामारी आदिरोगों ने अपना पूरा राज्य जमा लिया। सारे संसार में त्राहि त्राहि मच गई। कोई रोग से त्रस्त होकर चारपाई पर पड़ा हुआ है—कोई अपने व्यापार की हानि देख कर बड़ा दुखित हो रहा है। किसान लोग वर्षा के न होने से फसल को नष्ट होते देख चीत्कार कर रहे हैं इस तरह सब आदमी दुःख से पीड़ित हैं राजा से अपने नगर का यह दुःखमय हाल सुना नहीं गया। उसने इस दुःख कहानी से बचने के लिये वन में जाना ही उत्तम समझा। कम से कमी अपनी प्यारी नगरी का दुःख आंखों से तो न देख सकूंगा। इससे तो बच सकूँगा। यह सब सोच कर उन्होंने वन जाने का ही निश्चित किया।

यह सब बात जब सती को पता लगी तब वह भी अपना कर्तव्य समझ पति के साथ जाने के लिये अनुरोध करने लगी। पति ने बहुतेरा समझाया जगत का दुःखमय चित्र आंखों के सामने समूचा खींच दिया-तरह तरह के कष्टों का वर्णन किया। परन्तु वह पतिव्रता अपने प्रण से अलग न हुई—लाचार होकर श्रीवत्स राजा को साथ में ले जाना ही पड़ा। एक पोटली में थोड़े से रत्न बांध तथा कुछ खाने की सामग्री ले रात को प्यारी नगरी का त्याग किया। चलते २ वह एक नदी के पास पहुंचे। जहाँ से पार होना कठिन था। अतः एक मल्लाह की इन्तज़ार करने लगे। इतने में शनि ने अपना उपद्रव करना शुरू कर दिया—प्रथम बार में ही वह एक मल्लाह का रूप धारण कर प्रकट हुआ। जहाँ राजा रानी नदी के तट पर खड़े हुए थे।

राजा नौका को देखते ही अपने भाग्य को सराहने लगा। उसे क्या पता था कि यह शनि की ही सब लीला है। राजा ने उससे पार होने के लिये कहा। मल्लाह ने उससे कहा कि इतनी छोटी नौका में इतना भार एक बार में नहीं ले जाया जा सकता। नदी बढ़ी हुई है डूबने का डर है। अतः धीरे धीरे करके मैं तुम सब को पार ले जा सकता हूँ। राजा भी उसकी बातों से बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने प्रथम ही अपनी खानपान वाली पोटली उसके हवाले कर दी। मल्लाह बड़ा खुश हुआ उसकी इच्छा पूर्ण हुई वह पोटली ले वहाँ से गायब हुआ।

राजा इस कृत्य को देखकर बड़े असमंजस में पड़ गये। उन्हे अब याद आया कि यह सब ईश्वर की ही महिमा है। वह बेचारे वहां से भटकते फिरते भूखे घर से गांव में आ निकले। यहां आकर प्रति दिन जंगल से लकड़ियां काट कर उसे बेचकर अपना जीवन निर्वाह करने लगे। इस तरह उन्हें कुछ काल बीता था कि एक दिन एक सौदागर की नौका कीचड़ में फँस गई। सौदागर की नाव में बड़ा असबाब था वह बड़ी चिन्ता में पड़ा। इतने में ब्राह्मण वेषधारी पुरुष को आते देख अपनी सब दुःख दर्द कहानी उससे कह डाली। ब्राह्मण देवता को सब समाचार पहिले ही पता था। उसने संकेत देते हुए कहा कि इस जंगल में जितनी लकड़हारों की स्त्रियाँ हैं सब को अपने यहाँ न्योता दो। उन्हीं सब स्त्रियों में एक स्त्री बड़ी धर्मात्मा तथा सती है। उसके किस्ती को छूते ही पर यह नाव यहाँ से चल देगी। सौदागर इस बात को सुन कर बड़ा खुश हुआ, उसने सब स्त्रियों को न्योता दिया।

ग्रामीण स्त्रियाँ इस संकट को सुन कर बड़ी खुश हुईं उन्हें इससे बढ़ कर और क्या बात थी। सब स्त्रियाँ बड़ी प्रसन्नता से वहाँ गईं और खा पी लेने के बाद सबने नाव को छुआ पर नाव टस से मस न हुई। सौदागर अब भी शोक में डूब गया। परन्तु इतने में ही सब को लाने वाले सेवक ने कहा—हे स्वामी अब तक एक स्त्री नहीं आई मालूम पड़ता है कि उसी के छूने पर नाव चलेगी।

सौदागर यह बात सुन कर बड़ा खुश हुआ और अपने बहुत से नौकरों को बड़े आदर पूर्वक उसे लाने के लिये कहा।

उस दुःख युक्त स्त्रियों ने भी यह खबर सुन ली थी। उसे एक सौदागर के लाने से क्या काम—परन्तु जब उसने यह संकटावस्था की कहानी उसके नौकरों से सुनी तब उसने जाना उचित ही समझा। शरण में आये हुए प्राणी की रक्षा न करना उसे निराश कर देना बड़ा भारी पाप है। अतः उस स्त्री ने पति के न होते हुए भी इस आपत्ति से निकालने के लिये वह उनके साथ चल ही दी और वहाँ जाकर नाव को छूते ही वहाँ से एक दम गहरे पानी में आ गई। उधर सौदागर उस सुन्दरी स्त्री को आते देख उस पर मोहित होगया। और सोचने लगा कि कहीं आगे जाकर फिर नौका खड़ी होगई तब फिर यह आपत्ति उपस्थित हो जायगी इन सब बातों को सोचकर उसने उसके छूते वक्त ही उसे पकड़ कर अपनी नाव में बैठा लिया। वह बेचारी बहुत चिल्लाई परन्तु कौन सुनने वाला था। और राजा की की नाव चलते देख स्त्रियाँ भी वहां से खिसक गईं।

चिन्ता ने अपने रूप को आपत्ति का कारण समझ भगवान सूर्यदेव की प्रार्थना की और इससे उसका सुन्दर रूप कुरूप हो गया।

उधर अब श्रीवत्स घर में आये और पत्नी को न देख सब हाल गांव की स्त्रियों से सुना तो बड़े दुखित हुए। और वहां से फिर वन को चले गये। वहां जाकर उन्हें एक जगह सोने का ढेर मिला और यहीं से इनका भाग्योदय प्रारंभ हुआ। यह सब सोना लेकर किसी नगर में जाने की राह सोचने लगे।

चलते २ वह एक नदी तट पर पहुंचे। अकस्मात इतने ही में उन्हें एक नाव इधर आती हुई नज़र पड़ी। वे बड़े खुश हुए और सौदागर से बहुत विनय प्रार्थना करके नाव में किसी तरह बैठ ही गये। सौदागर इतने सोने को देख तृष्णा को न रोक सका। इसके फेर में पड़ उसने श्रीवत्स को नाव से नदी में फैंक दिया। श्रीवत्स ने अपना अंतिम समय देख अपनी प्राण प्यारी का नाम लिया। अपनी स्वामी की आवाज़ को पहिचान लिया। बड़ी दुःखी हुई और पति को डूबते देख तत्काल एक तकिया नदी में पति की ओर संकेत कर फेंक दिया। पति भी अपनी पत्नी को इसी नाव में समझ बड़ा दुखी हुआ। श्रीवत्स ने तत्काल उस तकिये को पकड़ लिया और येन केन प्रकारेण नदी तट पर जा निकले। चलते वह सैनिपुर जा निकले यहाँ आकर वह एक माली के यहाँ रहने लगे।

बाहुदेव राजा की कन्या का नाम भद्रा था। वह बड़ी रूपवती थी। श्रीवत्स के गुणों पर मुग्ध ही होकर इसने अपना पति उसे ही चुन लिया था। राजा बाहुदेव ने भी भद्रा के स्वयंवर का हाल सब

राजा महाराजाओं के पास भेज दिया। स्वयंवर की बात सुन अनेक राजा इनके यहाँ आने लगे, और स्वयंवर दिवस भी आगया। श्रीवत्स भी स्वयंवर देखने की चाह से वहाँ एक वृक्ष के नीचे आ बैठे थे।

सब के आ जाने पर प्रत्येक राजा का परिचय भद्रा को दिया गया। परन्तु भद्रा तो पहिले ही अपने पति को चुन चुकी थी। पति का नाम कहीं न सुन कर भद्रा बहुत दुःखी हुई। और भगवान् से प्रार्थना की हे प्रभो! उस दिव्य पुरुष का पता बता दो। भगवान ने उस वृक्ष के नीचे बैठे को संकेत कर दिया कि तेरा पति वही है। भद्रा को बहुत प्रसन्नता हुई और सब राजा महाराजाओं से साफ कह दिया कि मैं पहिले ही एक पति को चुन चुकी हूँ अब आप नाराज़ न हों। यह कह कर उसने वर माला श्रीवत्स के गले में डाल दी।

यह देख कर राजा बड़ा नाखुश हुआ और सब संवाद रानी से जाकर कहा। रानी सब वृत्तान्त को सुन उसे समझाने लगी। "इस संसार में किसी की इच्छा को रोकने वाला कोई नहीं है जो उसकी इच्छा है, करे। अब भद्रा ने जिस पति को चुना है उसे अपनी इच्छा से ही चुना है।

इस प्रकार राजा को समझा वह उस स्थान पर गई और बड़ी अच्छी तरह उनका विवाह हो गया। परन्तु राजा का मन राजी न हुआ। उसने उन्हें नगर के बाहर किसी काम में लगा दिया।

श्रीवत्स का मन भद्रा को पाकर सदा चिन्ता में डूबा रहता है। उन्हें इस तरह रहना बड़ा दुःखदायी प्रतीत हुआ। भद्रा इन सब बातों को जानती हुई भी अपने कर्तव्य-पथ से विमुख न हुई।

इस तरह रहते रहते कितने वर्ष बीत गये परन्तु श्रीवत्स दिन रात चिन्ता के ही सोच में डूबे रहते थे। एक दिन वही नौका सौभाग्य वश मणिपुर में आ निकली। वे इसे देख बहुत प्रसन्न हुए और अपनी प्राणप्रिया का उद्धार किया। सूर्य की कृपा से चिन्ता मोहिनी मूर्ति फिर पहले जैसे हो गई।

सब वृतान्त को सुन चिन्ता ख़ूब खुश हुई और वहाँ बड़े प्रेम से मिली। जब सब वृतान्त बाहुदेव को मालूम हुआ, तब वे बहुत लज्जित हुए। श्रीवत्स कुछ दिन वहाँ राज्य में गृहलक्ष्मी की कृपा से फिर अपनी राजधानी में लौट आया अब वहाँ किसी प्रकारका दुःख व कष्ट न था। सब प्रजाजन अपने राजा के आगमन के हाल को सुन बड़े खुश हुए और सारी नगरी में आन्दोलन होने लगा।

पद्मावती ।

पाठक वृन्द ! आज जिस वीर रमणी के चरित्र को मैं आप के सामने सुनाने बैठा हूँ वह भी पतिव्रता धर्म स्वरूपा पद्मावती है । जिसने पति धर्म की रक्षा के लिये उसके वचनों को पूर्ण करने के लिये अपने दिल के टुकड़े को भी स्वयं काटने में विमुख न हुई । ऐसी विदुषी स्त्रियाँ ही भारत का उद्धार कर सकती हैं ।

पद्मावती महाराज कर्ण की रानी थी । कर्ण को अब से कौन प्राणी ऐसा होगा जो परिचित न हो इसकी वीरता की कहानियों को हर आदमी अभिमानित हो जाते हैं । महाभारत के युद्ध में कौरवों का साथी कोई था तो वह वीर कर्ण ही था इसने अपने रणकौशल से महाराज दुर्य्योधन से आन्ध्रदेश का राज्य प्राप्त किया था । अगर दुर्य्योधन ने यह महाभारत का समराङ्गण किसी के सहारे प्रारम्भ किया था के वह इसी वीर कर्ण के सहारे ही । इसने युद्ध में वह पराक्रम दिखाया कि कहने की आवश्यकता नहीं । वह काम बड़े २ सूरमा भी नहीं कर सकते थे ।

रण विद्या में कुशल यह वीर दान देने में भी सबसे बढ़ कर था । इसके समान दानी दुनिया में एक दोही मिलेगें । यह प्रति-दिन प्रातः स्तुति करके असीम सोने और चाँदी के ढेर

ग़रीबों और विप्रों को दान देता था। यह इसका नियम सदास्थिर था कि कोई याचक बिना लिये न लौटता था सबकी मुराद यहाँ पूर्ण होती थी। यही कारण था इसका नाम दानी कर्ण इस उपाधि से शोभित हुआ और दान के लिये अजर अमर हो गया।

इसी दान की कहानी के एक दृश्य पाठक वृन्द! मैं आप के सामने रखना चाहता हूँ। अच्छा है जरा ध्यान पूर्वक दिल को मजबूत कर सुनें।

प्रातः काल का समय था। सूर्य भगवान् की सुवर्ण की भाँति किरणें वसुन्धरा पर पड़ रही थी। कर्ण भगवान् सूर्य की आराधना कर अपने दान भवन में पहुँच चुके थे ग़रीबों और याचकों उनके मतानुकूल दान से संतुष्ट कर रहे थे कि इतने में एक भूखा विप्र कर्ण के पास आया और कहने लगा भगवान आप की दान शीलता की खबर सुन मैं भी आप के पास अपनी मनोकामना पूर्ण करने के हेतु यहाँ आया हूँ। आप किसी ग़रीब को विमुख लौटने नहीं देते—इसकी प्रशंसा सुनकर मैं भी आप के पास आया हूँ कहिये तो मैं भी अपनी इच्छा कह डालूं। परन्तु कहने से पूर्व वचन चाहता हूँ कि आप उसे पूर्ण करेंगे या नहीं?

कर्ण ब्राह्मण की बात सुन कर बड़ा आश्चर्यान्वित हुआ। उसने उससे सहर्ष अपनी इच्छा कह डालने को कह दी।

ब्राह्मण ने कर्ण से अनुरोध किया भगवन्! मेरी इच्छा कोई साधारण इच्छा नहीं है। बड़ी कठिन और दुःखदायिनी है। ज़रा सोचकर वचन दीजिये।

परन्तु कर्ण ने कहा—विप्र ! तुम अपनी इच्छा, कह डालो। वीर जन एक बार कह कर उसे फिर नहीं टालते। वह पत्थर की लकीर के समान है। आप बिना विघ्न बाधा के अपनी इच्छा को प्रकट कीजिये।

ब्राह्मण कर्ण की बात सुन कर बड़ा खुश हुआ और अपनी इच्छा को कहना शुरू किया। महाराज ! मेरी इच्छा यह है कि आप अपने पुत्र वृषसेन को स्वयं तथा रानी पद्मावती सहित आरे से चीरें और रानी उसे रांध कर मुझे खिलाये। यही मेरी इच्छा है। जिसे आपके वचन दे डालने पर मैंने कह दिया। बताइये इसे आप करेंगे या नहीं।

कर्ण इस बात सुन कर एक दम मूर्च्छित सा हो गया उसकी आखों के सामने अंधेरा छा गया। पता नहीं वह खड़ा हैं कि बैठा। कुछ देर में चेतना प्राप्त करने के अनन्तर अपने वचनों को याद कर बोला—ब्राह्मण ! आप की मनसा ऐसी भयंकर तथा विशाल होगी इसका मुझे जरा भी ख्याल न था। आपको अगर मांस की ही आवश्यकता है तो यह मेरा शरीर आप के सामने उपस्थित है। इसके द्वारा आप अपनी क्षुधा को शांत कीजिये।

ब्राह्मण ने उत्तर दिया। भगवन् ! मुझे आप के शरीर की आवश्यकता नहीं। मुझे जिस वस्तु की आवश्यकता थी बस वही-जिसे मैंने कह डाला। पूरा करना हो तो कर डालो नहीं तो मैं जाता हूँ।

कर्ण जिसके यहाँ से आज तक कोई याचक लौटा नहीं गया था भला इसे किस तरह विमुख जाने देगा। जिसके लिये उसे बड़ा अभिमान था। आज वही पुनः देखता है। यह

देख कर कर्ण का मन एक दम कांप गया। उसने कहा, "यह नहीं हो सकता कि वचनों को देकर उसे पूर्ण न करूँ" अपने प्रति दिन के व्रत लिये उन्हें चाहे पुत्र देना पड़े—दूँगा पर व्रत कभी नहीं टूट सकता। यह भी प्रतिज्ञा एक आर्य कुल, एक सूर्य कुल, सूर्य पुत्र की है।

उसने ब्राह्मण को धीरज देते हुए कहा। विप्र ! नाराज न हूजिये मैं अपने वचनों को छोड़ नहीं सकता जो एक बार कह दिया सूर्यकुल अपने नियम को तोड़ दें' परन्तु मैं उन वचनों को तोड़ नहीं सकता। परन्तु एक प्रार्थना है। उसे आप क्या स्वीकार करेंगे। इस निष्ठुर काम में एक कोमल हृदय वाली स्त्री किस तरह हाथ लगा सकती है। इसे जरा आप अपने मन में सोचिये। कार्य की बात सुन कर विप्र जल गया। उसके नेत्र लाल हो गये और कड़क कर बोला। स्वामी का साथ देना स्त्री का धर्म है। उसका कर्तव्य है कि घर में आये हुए अतिथि की सेवा अपने हाथ से करनी चाहिये। यदि यह काम न कर सकते हो कहो। मुझे व्यर्थ में मत रोको।

ब्राह्मण को दुखी देख कर्ण बड़े चिन्तित हुए उन्हें आदर सहित आसन पर बिठा स्वयं अंतःपुर में सती को समाचार सुनाने के लिये चले।

पाठक ! जरा दिल को कड़ा कर सुनिये किस माता की ताकत है कि अपने जिगर के टुकड़े को अपने हाथों से राँधे। ऐसी कोई भी दुनिया में माता न होगी जो अपने हाथों से इस दुष्कर्म को करे। संसार में ऐसा उदाहरण कोई मिलेगा ? परन्तु आत्माभिमानी

पद्मावती ने भी केवल अपने स्वामी के वचनों की रक्षा के लिये यह कृत्य भी किया। ऐसी स्वामी की हित चिन्तक शायद ही कोई मिलेगी जिसने की इन कष्टों को भोगा हो।

कर्ण वहाँ से अंतपुर में आये। सामने देखते है कि वृषसेन हाथ जोड़े माँ के सामने खड़ा है और वेद मंत्रो का उच्चारण कर रहा है। माँ भी निश्चल मन से ध्यान पूर्वक उसी की ओर टकटकी लगाये हुए है। अचानक किसी के आहट को सुन पीछे मुड़कर जो कुछ उसने देखा उससे उसका दिल धड़क उठा।

पिता को देखते ही वृषकेतु भाग कर उनकी गोद में बैठ गया और अपने मंत्रोच्चारण के विषय में पूछने लगा। पिता ने दिल कड़ा कर उससे कहा! पुत्र! तुम्हारा उच्चारण स्पष्ट और बहुत उत्तम है। अब जाकर कुछ खा पीलो। फिर हमारे पास आना।

इस तरह पिता किसी बहाने से अपने पुत्र को वहाँ से दूर कर हृदय भेदिनी हृदय विदारक समाचार सुनाने के लिये पलंग पर जा बैठे।

कर्ण को इस तरह चिंतित और शोक युक्त देख कर पद्मावती ने इसका कारण पूछा। कर्ण ने अपने मन को क़ाबू में कर वह समाचार उसे सुना दिया। साफ़ कह डाला—कहने की देर भी न थी कि उस रमणीकी आँखे बन्द हो गई। स्वामी की गोद में उसका बेसुध देह गिर पड़ा।

कर्ण पद्मावती को इस हालत में देख घबड़ा गये। परन्तु उस ब्राह्मण के वचनों को याद कर दिल उनका सँभल गया

कर्ण ने तत्काल ही ठंडे पानी के छींटे दिये और पंखे द्वारा शीतल २ हवा करने लगे। कुछ देर बाद उन्होंने पद्मावती को धीमे से आवाज़ दी। पद्मावती ने धीरे २ अपनी आवाज खोली। परन्तु कुछ बोल न सकी। कुछ देर के बाद कर्ण ने फिर कहा हे पद्मावती ! तुम मेरी धर्मपत्नी हो। तुम मेरी सहधर्मिणी हो। इस जटिल प्रश्न को भी कराकर पूरा करो। मेरे धर्म की और धनकी रक्षा करो इसमें कहीं दाग़ न लगने पावे।

पद्मावती कर्ण की बात सुन कर आंखें बन्द कर ईश्वर से प्रार्थना करने लगी कि प्रभो मेरे धर्म की रक्षा हो मेरे स्वामी के धर्म में कलंक न लगने पावे। मुझे मेरे शरीर में प्रभो, ताकत दो, बल दो, साथ ना दो जिससे मैं इस कठिन कृत्य को करने में पीछे न रह सकूँ स्वामी के नाम में दाग़ न लगा सकूँ। अपनी सहधर्मिणी व्रत को मान पूर्वक निबाह सकूँ।

इस तरह जगदीश्वर से अपने मन को मजबूत बनाने के लिये प्रार्थना की तदन्तर पद्मावती के देह में मन में नवीन शक्ति का संचार हुआ उस बेचारी रमणी को क्या पता था कि मेरे भाग्य में यह भी लिखा है कि मुझे अपने जिगर के टुकड़े को भी अपने हाथों से रींधना पड़ेगा ईश्वर तेरी लीला विचित्र है।

पद्मावती के शरीर पर अब नवीन झलक नवीन आभा झलकने लगी दिव्य शक्ति का आगमन हुआ अपने स्वामी को संबोधन कर कहने लगी हे कर्ण ! मुझ जैसी रमणी का सौभाग्य है कि जो तेरे धर्म रक्षा में हाथ दे सकी मैं सहधर्मिणी के व्रत को पूर्ण कर सकी यद्यपि मेरा

हृदय फटा जाता है देह में खून नहीं दौड़ता परन्तु उस जगदीश्वर की कृपा से मैं मातृत्व धर्म को छोड़ सकती हूं किन्तु पति के धर्म पर कलंक का टीका लगते हुए नहीं देख सकती ।

निज पत्नी के इन तेजस्वनी वचनों को सुनकर कर्ण के मन में ढारस हुआ और कहने लगा । हे पद्मावती ! तू मुझसे भी बाजी मार ले गई मैं खुद ही बिलकुल बेसुध होगया था परन्तु किसी तरह अपने को सँभाल ही सका मुझे विश्वास नहीं था कि एक स्त्री जाति जैसी कोमल मनवाली रमणी भी ऐसा कर सकती है । पति के धर्म की रक्षा के लिये निजधर्म को भी तोड़ने में आगा पीछा नहीं देखती । तुम धन्य हो ! तुम स्त्री नहीं, देवी हो साक्षात् हो ।

इस तरह कर्ण प्रसन्न चित्त हो विप्र से स्नान आदि नित्य कर्म को कह स्वयं अपने कृत्य में लग गये । दोनों ने मिलकर अपने पुत्र वृषकेतु के शरीर को आरे से चीरा और पद्मावती ने उसे अपने हाथों से रींधा ।

भोजन तैयार कर पद्मावती ने ब्राह्मण को बुलाया ब्राह्मण भी उस आनन्द को छिपा बोला कर्ण तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की मैं अकेला कभी नहीं खाता अब एक बालक को भी ले आओ तब मैं खाना आरंभ करूँगा ।

ब्राह्मण की बात सुन जब कर्ण वहाँ से बाहर आया तो जो दृश्य उसने देखा उसे देख वह भौचक्का ही रह गया उसे समझ नहीं पड़ा कि मैं चेतन में हूँ, कि अचेतन में, यह स्वप्न है, कि इन्द्रजाल है, तब उसने देखा कि वृषकेतु अपने साथियों के साथ खेल खेल रहा है ।

वृषकेतु पिता को देखते ही एक दम दौड़ खुशी के मारे पिता का हाथ पकड़ लिया कर्ण को उस वक्त जो आनन्द प्राप्त हुआ वह अनुभव उसी दशा में वही आदमी कर सकता है अब कर्ण को आंखें खुलीं सब मामला बना चला, खुशी से आखों से अश्रु बून्द निकल पड़े। यह ब्राह्मण कोई साधारण आदमी नहीं था वह स्वयं भगवान् थे जो विप्र का रूप धारण कर कर्ण की परीक्षा लेने आये थे कि वास्तव में दृढ़ प्रतिज्ञा पक्का धर्मी है कि नहीं"।

जब भगवान् की इच्छा पूर्ण हुई कर्ण परीक्षा में, नहीं नहीं सच्ची जीवन परीक्षा में उत्तीर्ण हुए उन्हें "दानी कर्ण" की उपाधि मिली सारा संसार उन्हें इस पदवी से याद करता है यह थी कर्ण की दान की श्यागता। और यह थी वीर पद्मावती की पतिके धर्म में तत्परता जिसके कारण इस देवी का नाम पातिव्रत धर्म के लिये रौशनहो गया यह थी एक स्त्री जाति की महिमा व श्रेष्ठता जिसे उसने सारे संसार के सामने कर दिखाया कि स्त्री जाति में भी ऐसी आत्मत्यागिनी, सहधर्मिणी, धर्म-रक्षिणी देवियें उत्पन्न हो सकती हैं।

भारत की देवियो इस माता की अन्तिम अभिलाषा को ज़रा ध्यान से सुनो।

जयावती

अकबर जैसा प्रतापशाली मुगलों में कोई नहीं हुआ। इस ने अपनी दूरदर्शता और शासनकुशलता के कारण मुगल राज्य की जड़ को भारतवर्ष में खूब दृढ़ कर दिया। इस ने हिन्दूओं से दया और सहानुभूति का बर्ताव कर हिन्दूओं को भी अपना प्रिय बना लिया था और उन्हें बड़े अच्छे २ पद पर नियुक्त किया हुआ था। इसी राजकुशलता के कारण सम्राट अकबर का राज्य इतनी देर तक चिरस्थाई रह सका और हिन्दू इसे बड़े सम्मान से देखने लगे यहाँ तक कि हिन्दू दिल्लीश्वरों वा जगदीश्वरों की तरह पुकारते थे।

जिस समय अकबर सम्राट दिल्ली के राज सिंहासन पर विराजमान थे। उस समय मेवाड़ के राज सिंहासन पर वीर शिरोमणि प्रतापसिंह विराजमान थे। उस समय अन्य राजपूत राजाओं की बड़ी शोचनीय दशा थी। सब इस सम्राट के नीचे आ चुके थे और अपनी कन्यायें भी दे चुके थे। यह थी दशा उस समय वीर राजपूत राजाओं की जो अपनी वीरत्व की इतनी डींग मारते थे जो अपने को देश का रक्षक समझते थे—वही अकबर की पेचीली नीति में इस तरह आ गये थे कि वे अपने आपको इसका बड़ा सौभाग्यशाली समझते थे।

अकबर भी बड़ा चालाक था। उसकी भी यही इच्छा थी कि "जब तक हिन्दुओं को अपने वश में न रक्खा जायेगा तब तक राज्य की नींव स्थिर नहीं रह सकती। इनके साथ विवाह

करने से अपना नुकसान है। और कोई समय उपस्थित हो सकता है जब राज्य में सहसा मोह उत्पन्न हो जावे जो राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर देवे। इन सब सूक्ष्मताओं को अकबर ने अपनी दूर दर्शिता के कारण हल किया हुआ था। इसने ऊँचे ऊँचे पदों पर हिन्दुओं को स्थान दिया था—और अपनी दया रूपी छुरी को छिपे छिपे हिन्दुराज्य पर चला रहा था। जिसे कोई भी प्राणी समझ नहीं सकता था। इन गुणों के सिवाय बड़ा वीर और साहसी था।

इसने अपनी बुद्धि के कारण हिन्दुओं के स्वभाव को जान लिया था और उनको वश में लाने का उपाय भी सोच लिया था जिसका पालन उसने तमाम जीवन भर किया और किसी को इसका शासन बुरा न लगा।

जब सब राजपूत राजाओं की यह दशा थी उस समय केवल प्रताप ही राजा स्वाभिमानी स्वतंत्रता का उपासक था कि जिसने सम्राट् अकबर की आधीनता को स्वीकार न किया।

यह देख कर अन्य राजपूत राजा उसके इस स्वदेश प्रेम को उसके इस स्वतंत्र जीवन को सहन न कर सके। वे इसे नाश करने की तदबीर सोचने लगे और हर एक प्रकार से अकबर को सहायता देने लगे। उस भारत सूरमा ने दिल्लीश्वर की आधीनता स्वीकार न की। वह बराबर अकबर की सेना का सामना करता रहा। कितनी लड़ाइयाँ लड़ी परंतु वचनों पर डटा रहा। अन्त में उसके हाथ से उदयपुर चला गया। परंतु इस पर भी उस सूरमा ने कुछ परवाह न की उसने जंगल में भटकना, वृक्षों के नीचे सोना, घास की रोटी खाना, मन्जूर किया पर उसके नीचे

सिर झुकाना स्वीकार नहीं किया। करता भी कैसे—जब कि उसकी जननी का, जन्म दान का—उपदेश ही न था।

यहाँ पर हम वीर प्रताप के जीवन चरित्र को सम्पूर्ण नहीं दिखाना चाहते उसके जीवन को लिखने में एक पुस्तक तैय्यार हो सकती है यहाँ पर हम केवल अगली कथा का भाग अकबर की नीति का प्रसंग दिखाना चाहते हैं। अतः थोड़ा सा ही वीर प्रताप का चित्र दिखाना पर्याप्त है।

जंगल में भटकने पर भी शूर वीर राजपूत राजाओं की मनसा पूर्ण न हुई वहतो उसे अकबर की आधीनता के नीचे देखना चाहते थे। प्रताप इधर उधर सपरिवार भटका फिरा-कोई उसका साथी न था—केवल आत्मीयलज्जा उसके सच्चे साथी थे।

जंगल में भटक कष्ट सह कर भी प्रताप का मन ज़रा दुखित न हुआ। परन्तु एक दिन अत्यन्त दुखित होकर उसका वह दृढ़ मन भी आज दहल गया—ताज़ी तैय्यार की हुई घास की सूखी रोटी जो अपनी महिषी ने बनाई थी। उसके दो भाग कर उस देवी ने बालक बालिका को देदी पर इतने में एक जंगली वनबिलाव आया और उसके हाथों से वह रोटी ले गया। दोनों भूखे थे कितने दिनों से खाने को नहीं मिला था—उनकी आखों से आँसू निकल पड़े और प्रताप इस दृश्य को देख कर अपने आप को सँभाल न सका अपने आप को अर्पित करने का पक्का इरादा कर लिया और अकबर को तत्काल ही पत्र लिख दिया।

अकबर को पत्र मिला। पढ़ कर बड़ा खुश हुआ। उसका इतने दिनों का परिश्रम आज स्वयं ही वेफलित होते देख उसको बड़ा आश्चर्य

हुआ । दिल्ली नगरी में आनन्दोत्सव होने लगा । आधीनस्थ राजपूत की खुशी का ठिकाना ही नहीं था । सब जगह खुशी का ही शब्द सुनाई पड़ने लगा ।

परन्तु उस वक्त एक सच्चा स्वतंत्रता का उपासक—भारत भूमि का रक्षक मौजूद था । जिसने इस आनन्दोत्सव को फ़ीका कर दिया । जिसने भारत जननी की डूबती नैय्या बचा ली । उसको कालिख का दाग़ लगाने से बचा लिया । वह स्वतंत्रता प्रिय तेजस्वी पृथ्वीराज था । जो अकबर के यहाँ क़ैद थे । उनका हृदय इस दारुण संवाद को सुन कर विदीर्ण हो गया—वे इसको सहन न कर सके । हृदय स्पर्शिनी देश का गौरव दिखाते हुए एक कविता रूप पत्र लिखे और वह प्रताप के पास भेज दिया ।

पत्र पढ़कर प्रताप की मोह निद्रा भंग हुई—उसे एकदम ख्याल हुआ कि वह क्या करने को तैय्यार हो गया था । जिसके लिये इतने दिनों तक मारा मारा फिरा उसका अंतिम नतीज़ा यही था । नहीं नहीं—यह हर्गिज नहीं होगा—देश के ऊपर कलंक का टीका न लगने पावेगा ।

इस तरह उस वीर के अंदर पहिले जैसे वीरोचित भाव कुछ देर के लिये विलुप्त हो गये थे वे फिर जागृत हो गये इधर प्रताप को भी दैव की ओर से सहारा मिला फिर क्या था—उदयपुर उनके हाथ आ गया । इसमें भूतपूर्व मंत्री दानी भामाशाह का बहुत हाथ था । जिसने असीम संपत्ति प्रताप को इस संकटावस्था में दी थी । पर वीर वर ! चित्तौर को हस्तगत न कर सका; और अंत में इस लोक से चल बसा ।

हमें ऊपर के वर्णन से यद्यपि कुछ मतलब नहीं था। तो भी पाठकों की सरलता के लिये हमें इतनी भूमिका, देवी के वृतान्त के लिये बांधनी पड़ी। अब मैं आप के आगे वास्तविक कथा का स्वरूप रखना चाहताहूँ।

जयावती वीर पृथ्वीराज की स्त्री थी जिसकी वीरता के लोहे को सारा संसार मानता था। जब पृथ्वीराज मैदान में लड़ते हुये पकड़े गये और दिल्ली में क़ैद रखे गये तब इनकी स्त्री ने जिस वीरता और साहस का काम किया वह सुनकर पाठक आश्चर्यित हो जायेंगे। यही जयावती वीर केसरी प्रताप सिंह के भाई शत्रु सिंह की कन्या थी। पति को क़ैद देखकर पतिव्रता जयावती की लालसा उसे छुड़ाने की हुई। वह दिल्ली जाने के लिये तैयारी करने लगी।

उसकी इस नई धुन को देख कर सब गुरु बन्धुओं ने बहुत समझाया कि तेरा वहाँ जाना अच्छा नहीं है, वहाँ स्त्रियों के साथ बड़ा बड़ा अत्याचार अक्सर होता है। वहाँ के मुग़ल स्त्रियों के साथ बड़ी बुरी तरह से पेश आते हैं। इस पर तुम्हारा तो कहना ही क्या—तुम्हारे इतने रूपवान चेहरे को देखकर किस का मन नहीं मचल उठेगा? किसकी आखें नहीं तरसेंगी? अतः इन सब बातों का जिक्र उन्होंने सब उसीके सामने रख दिया।

परन्तु जो उत्तर उस वीरांगना ने दिया सब देखते ही रह गये। उसने तत्काल अपने रेशमी दुपट्टे के भीतर से एक तीव्र छुरा निकाला और कहा—इसके रहते हुए मेरे धर्म का, मेरे सतीत्व का, कौन नाश कर सकता है। जान चली जाय पर धर्म को कालिख न लगने पावेगी। यह थी उस देवी की धर्म कट्टरता और धर्म के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति।

जयावती वहाँ से निःसंक हो दिल्ली चली आई और जहाँ पतिदेव क़ैद थे वहाँ आकर निश्चित बनाये हुए क़ैदियों के मकान में रहने लगी।

इधर नववर्ष का समागम हुआ। सारे दिल्ली भर में खुशी का वारापार न था। इसमें संदेह ही क्या है? उनको नव विषय करना की तृप्ति का आज दिन है। मुगलों का तो यह सब से प्यारा उत्सव है। इसी उत्सव को अकबर ने "ख़ास राजा" के नये नाम से प्रचलित किया था। जिसे दुनिया जनक "नवरोज" के नाम से पुकारती थी।

सच है जिस शूरवीर, अकबर ने बड़े बड़े शूरवीर राजपूतों को अपने वश में कर लिया था वह भी इस रूप लालसा और भोग वासना के फन्दे से न बच सका। क्या कहा जाये यह तो सारे मुगल राज्य का पैतृक गुण है? इसे न छोड़ना ही मुगल राजा अपना कर्तव्य समझते हैं? समझें क्यों नहीं जब कि वे इसी को खुदा समझते हैं। इसीको अपने जीवन का सर्वस्व समझते हैं। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि धर्म की डींग मारने वाला अकबर इसे टालमटोल में टालना चाहता था।

आज के दिन बड़ी बड़ी सुन्दरियें तथा राजपूतों की स्त्रियें इस मेले में भाग लेतीं और दुकानें लगाती थीं। जयावती भी बाजार देखने गई—इधर बड़े बड़े बाज अपना शिकार देखते हुए फिर रहे थे कि कोई हाथ लगे।

अकबर भी इसी लालसा में रंगा हुआ चुपके चुपके फिर रहा था। बस क्या था—शिकार मिल गया—मन में ही कहने लगा क्या सुन्दर औरत है—ऐसी औरत कभी नहीं देखी, ठीक जान रहा—अच्छा अवसर

पकड़ने को देखने लगा—वह भी हाथ लग गया। सट उसके सामने आ खड़ा हुआ। जरा भी न हिचका। जरा भी शर्म न आई। आती ही क्यों जब धर्म का नाम ही नहीं रहा। देवी देखकर चकित हो गई परन्तु शीघ्र ही वह उसकी यह पशुता जान गई। तब उस देवी ने जिस तरह उस सम्राट अकबर को फटकार बतलाई वह सुनने ही लायक थी। उसने कहा—रे कवी! चाहे तू औरों की नजरों में दिल्लीश्वर हो चाहे जगदीश्वर हो—पर इस समय तू मेरे सामने एक महापापी के समान है—उसके दिव्य चेहरे को देखकर वीर अकबर के होश हवास उड़ गये—चेहरा पीला हो गया।

इतने में ही उस वीरांगना ने अपनी विद्युत के समान तीखी छुरी फेंका पर वह चालबाज़ बच गया। अकबर की इस दुष्टता को देख कर उसका चेहरा और भी क्रोध से लाल हो गया। उसने इसकी दुष्टता को नीचपने की बड़ी मर्म भेदी शब्दों में तिरस्कार की—और बोली रे पामर! देख आज तू मेरी इसी छुरी से जीता हुआ नहीं बच सकता। अगर जान प्यारी है तो आज प्रण कर कि कभी किसी कुलकलना का धर्म सतीत्व नाश न करूँगा" नहीं तो आज तेरा यहीं खातमा है।

अकबर भी अपने इस कुकर्म से लज्जित हुआ अपने को उसने उसके सामने अपराधी के रूप में पाया—अतः कर्तव्य समझ उसने अपने इस दुष्कृत्य की क्षमा माँगी और आगे से सदा उस दिव्यमूर्ति को अपने हृदय में रख कर कभी इसका नाम भी नहीं लिया।

यह थी उस देवी की साहस और वीरता जिसके द्वारा उसने अपने धर्म की सतीत्व की रक्षा की।

प्रभावती

राजा विक्रम सोलङ्की रूपनगर छोटे से राज्य का राजा था। इनकी कन्या का नाम प्रभावती था। जो रूप में अनुरूपा थी और इसके अलावा सब राजपूत कुल के गुण इसमें कूटकूट कर भरे हुए थे।

इसी नायिका के चरित्र को मैं आप के सामने रखना चाहता हूँ कि इस अबला ने असह्य समय में केवल एक प्रभु पर भरोसा रख कर रूपनगर की रक्षा के लिये वह दिल्ली से आये हुए रक्षकों के साथ पड़ी थी और किस तरह इस की भगवान ने रक्षा की।

जिस समय का यह जिक्र है उस समय मेवाड़ में जगतसिंह के जेष्ट पुत्र वीर राजपूत शिरोमनि राजसिंह राना थे। इनकी भुजाओं में प्रताप जैसा बल था, शरीर में असीम शक्ति, द्रिढ़ उत्साही तथा साहसी था।

बहुत देर से राज्य का प्यासा औरंगजेब भी लोभ मयी आखों से इसी अवसर की ताक में था कि कब अवसर मिले राज्य का मालिक बनूँ।

भाग्य चक्र से वह समय भी उपस्थित हुआ स्वकीय वृद्ध जनक शाहजहाँ को रुग्णा अवस्था में देख इसकी मुराद पूरी हुई। इसने तत्काल ही वृद्ध पिता को कैद कर दिया। स्वयं राजसिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया।

इधर विषय वासना कहली वृद्ध मुगल सम्राट की काम वासना की चाह अभी शान्ति नहीं हुई थी। उसने जब उस रूपनगर की कथा प्रभावती के रूप की इतनी प्रशंसा सुनी तो दिल में पानी आ-गया। एक बार फिर यौवनावस्था का आनन्द उड़ाने को जी चाहने लगा। बेगम बनाने की मनसा हुई। औरंगजेब ने भी झट राजा विक्रम के पास यह फरमान भेज दिया कि जल्दी अपनी कन्या को दिल्ली भेज दो।

राजा विक्रम इस दुख को सुनकर दंग रह गया पर करता क्या कुछ वश नहीं था। तामील न करता तो सारा राज्य क्षणभर में धूली में मिल जाता। बेबस था सारे बड़े२ राजा महाराजा उसकी आधीनता के सिक्के को माने हुए थे। उन्होंने अपनी कन्याओं को राज सुख के लिये म्लेच्छों के साथ विवाह दी थी। जिस कारण से वे सुख से जीवन को व्यतीत करते थे। इसमें उन्हें ज़रा भी लज्जा नहीं आती थी बल्कि वह और इसी ताक में थे कि कब वह भी इसकी शरण में आते हैं और आने केलिये उन्हें खुद मजबूर कर रहे थे। प्रताप के समय को पढ़ जाइये। उससे साफ़ विदित होगा कि उस समय सभी अधीनस्थ राजपूत कुल के राजा इसी चाह में थे कि कब प्रताप इनकी आधीनता को स्वीकार करता है और इसके लिये वे, देश के नीच राजा, जी जान से कोशिश कर रहे थे और भरपूर सहायता दे रहे थे। यह थी एक भाई जाति की, एक कुल वासी का, एक आर्य जाति का, अपने प्रति व्यवहार। तब क्यों न देश तबाह हो, क्यों न उस पर अन्य जातियें राज्य करें, जब कि कुल के अन्दर ही ऐसी भयंकर आग की लपटें

मौजूद हैं जो देश को जलाने के लिए खातमा करने के लिये, हर वक्त तैयार हैं शोक है भारत तेरे लिये, तेरे कुल वाले ही तुझे डुबोना चाहते हैं इसमें मेरा क्या दोष !

विक्रम ने सब बयान अपनी प्यारी कन्या से कह दिया। जिसे सुनकर उस राजपूत कुल बाला का चेहरा सोच से लाल हो गया। परन्तु पिता की हालत की लाचारी को देख उसकी असमर्थता को देख अपने को भी कोसने लगी। पर करती क्या पिता ने तो सब चित्र उस-की आँखों के सामने सारे देश की शक्ल खींच दिया था। इस वक्त देश की हालत ऐसी है कि कोई ऐसा सूरमा नहीं है जो इस अन्याय के विरुद्ध खड़ा हो और उसके विरुद्ध शस्त्र धारण कर सके। इससे बेहतर यही है कि तू जाकर सम्राट कीमहिषी हो जिस से राज्य की वृद्धि ही होगी। परन्तु उस कुलबाला ने क्या उत्तर दिया यद्यपि उसे इस समय सारे सुखभोग रूप इच्छाओं की पूर्ति का आनन्द मौजूद था। उस सब सुखपर उसने लात मारी सब सुख को नारी धर्म के आगे तुच्छ समझा। अपने आप को यवन स्पर्श से स्पर्श करने की अपेक्षा मृत्यु जैसा दुसाध्य काम तुच्छ समझा उसे अपने कुल मर्य्यादा धर्म मर्य्यादा के आगे इतना बड़ा प्रलोभन हीन जान पड़ा। उसने प्रण कर लिया था कि चाहे पिता जी मुझे यहाँ से रवाना कर दें—इस में मेरा और इनका (राज्य) का भी हित है। परन्तु मैं अपनी जीवन लीला विष से बढ़कर किसी चीज पर विसर्जन कर दूंगी। इस अपनी देह को यवन कुल का संस्पर्श न होने दूंगी। यह थे एक राज कुल बाला के दुख के समय के हृदयेद्गार—

जब कि उस पर आपत्ति का पहाड़ गिरा हुआ था और कोई उसका रक्षक नहीं था। सब ओर से निराशा ही निराशा के बादल देख पड़ते थे। पिता ने भी अपनी ओर से समझाने में कोई कसर नहीं होने दी थी। उस ने सब अपने भाइयों की दशा जिन्होंने कि उस अकबर कुलेश्वर को अपनी अपनी कन्यायें ब्याह दी थीं बताई और उनके उच्च आसनों का भी वर्णन कर दिया। परन्तु उस वीर बाला ने सब का यही जवाब दिया कि उनके उच्च घराने से मेरा घराना कोई नीच नहीं है — वह इन भटके हुए राजपूतों से श्रेयकर है चाहे वे सब कितनी ही जागीर वाले क्यों न हों एक टूटी फूटी कुटी के आगे वह सोने के महल नीचे दीख पड़ते हैं। वे सब और अम्बर के महाराजा पवित्र वंशी राजपूतों की दृष्टि में गिरे हुए हैं। कोई उन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता। अतः मुझे ऐसे सम्मान की कोई आवश्यकता नहीं उस से जितनी दूर रहें उतनी अच्छा है।

इस तरह अपनी पुत्री की तेजस्विनी बात को सुन कर राजा विक्रम बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी पुत्री से साफ़ कह दिया कि मैं अपनी ओर से न भी भेजूँ तब भी वह तुझे बल पूर्वक यहाँ से ले जा-येंगे और साथ में सब नगर को भी धूल में मिला देंगे—अपने कुल का विध्वंश कराने की अपेक्षा तेरा वह जाना श्रेयकर है।

पिता की बात सुन कर वह चुप हो गई। परन्तु मन में निश्चय कर लिया कि जो होना है वह तो होता ही है—राज्य की रक्षा के लिये दिल्ली जाना ही पड़ेगा।" पिता की ओर से लाचारी देख कर उसने भी जाने के लिये कह दिया।

पिता उसको भेजने के लिये तैयारियां करने लगा। इधर यह सती भी एकाग्र मन से उस दयालु परमात्मा से प्रार्थना करने लगी कि हे प्रभो ! क्या मुझे राजपूत वंश में, इस सूर्यवंश में, इस उच्च कुल में, केवल दुख के लिये ही जन्म दिया था। यह सारा सौन्दर्य इसी लिये भरा था—इस से तो अच्छा था कि मैं कुरूपा होती तो आज मेरे नारी धर्म,को कुल धर्म को सतीत्व को,कोई भी नष्ट न कर सकता। मैं उसी में खुश थी। अब प्रभो ! तुम्हारे सिवा मेरे धर्म की कौन रक्षा करेगा। अगर कोई सूरमा वीर सिंह है तो उसका नाम मुझे शीघ्र ही बताओ। जो मेरे धर्म की रक्षा करे। इस तरह वह प्रार्थना में मग्न थी। परमेश्वर ने भी उस की सच्ची प्रार्थना को सुना और उसका उपाय भी बता दिया। हे वीर बाला हरोमत मेरे राज्य में धर्म की सुनाई होती है उसके लिये हर नगर दरवाज़े खुले हुए हैं। तेरे धर्म का रक्षक इस वक्त भी दुनिया में मौजूद है। वह तेरी रक्षा करेगा। वह मेवाड़ाधिपति राना राजसिंह हैं।

बस फिर क्या था बाला हर्ष से पुलकित होउठी तत्काल मेवाड़ाधिपति राजा को अपनी दुःख कहानी बड़े दुखित शब्दों में लिख डाली और पत्र को विश्वासी नौकर के हाथ भेज दिया।

पत्र राजा के पास पहुंचा। पढ़ते ही चेहरा क्रोध से लाल हो गया भुजायें फड़कने लगीं। हाथ दिखाने का समय आ गया। तत्काल सेना लेकर जाने वाले मार्ग के जंगल में आ छिपे।

प्रभावती भी औरंगजेब के भेजे हुए रक्षकों के साथ रूप नगर चल चुकी थी। सब के सब रक्षक अपनी २ तानोंसे मस्त थे किसी को

यह पता न था कि वहाँ कोई सिंह छिपा हुआ है। निश्चित स्थान पर पहुँचते ही राजपूत सेना एकदम टूट पड़ी और उन मुगलों को थोड़ी ही देर में इसका मज़ा चखा दिया।

प्रभावती इस दृश्य को देख दंग रह गई। उसे क्या पता था कि मेरी प्रार्थना उस जगदीश्वर ने सुन ली। वह तो बिलकुल अब मरने की घड़ी देखरही थी इतने में राज सिंह जैसे राज पूत शासक को वहाँ देख वह बड़ी प्रसन्न हुई और अपने रक्षक को ही अपना प्राण पति सदा के लिये बना दिया।

प्रभावती को लेकर राजसिंह उदय पुर लौट आये। उधर जब यह संवाद औरंगजेब ने सुना तब वह बड़ा क्रोधित हुआ और राजसिंह पर चढ़ाई करदी। वीर वर राजसिंह वृद्ध होते हुएभी अपनी रण निपुणता शस्त्र कुशलता ऐसी दिखाई कि औरंगजेब को उलटी हार खानी पड़ी। राजपूत सेना के आगे उसकी एक न चली।

प्रभावती ने भी अपनी अभिलाषा प्रकट करदी कि भगवन् मैं आपकी ही हूं इसे मैं दृढ़ निश्चय कर चुकी हूं अतः इसे अब स्वीकार करो। राजसिंह को भी उसकी आज्ञानुसार उसके साथ विवाह करना पड़ा और सुखमय जीवन व्यतीत करने लगे।

पाठक! आपने प्रभावती की धर्म रक्षा देखली। उसमें कितना भारी कर्म, कुकर्म कूट कूट कर भरा हुआ था कि सब ओर से निराश होने पर भी वह अपनी ओर से निराश नहीं हुई और अपनी सतीत्व रक्षा का उपाय स्वयं सोची हुई थी।

—०—

कृष्णकुमारी

कोई राष्ट्र सदा उन्नतावस्था में नहीं रहता यह संसार चक्र है। जो राष्ट्र आज सब जातियों से जबरदस्त है कुछ समय पश्चात वही सब से नीचे हो गया है। कोई समय था कि राजपूत जाति सब जातियों से उन्नत तथा प्रबल थी परंतु समय फेर से उस सब जाति का हस से लोप हो गया।

अब हर जगह महाराष्ट्र राज्य की तूती बोलती थी। कोई इस शक्ति का सामना नहीं करने वाला था। इस की प्रबलता को देख सभी राष्ट्र जलने लगे। मुसलमानों को तो जलना हुआ पर अन्य हिन्दु जातियें सिक्ख, राजपूत आदि भी जलने लगीं। यह भी इस आग से न बच सकी। बल्कि उलटी ही इसकी नाश का उपाय सोचने लगी। यह था भारत का अपने देश की शक्ति के साथ का हाल। जिसे देखकर उसे खुश होना चाहिये था, उसका साथ देना चाहिये था—भले को भला मिलाना चाहिये था। वहाँ उलटे ही उसके मन में विचार हैं। यही कारण था कि भारत राजपूतों की शक्ति को मरहठों ने प्रास्त किया मरहठों को सिक्खों ने, और सिक्खों की अन्य शक्तियों ने। यह उनके हृदय में तनिक भी विचार न आया—कि हम सब आपस में भाई हैं, एक ही माँ के पेट से उत्पन्न हुए हैं, हमारा धर्म एक है, रहना सहना एक है—फिर क्यों आपस में लड़ते और मरते हैं। एक होकर मिल जायें और एक साथ

दूसरी जाति का खातमा कर दें। और फिर आनन्द से राज्य करें। परन्तु यह उनके मन में आता भी कैसे—वह बिल्कुल अपने अपने को भूल चुके थे। भाग्य की मनसा ही ऐसी थी कि तीनों शक्तियें आपस में लड़-भिड़ खातमा हों और दूसरी शक्ति मजे में राज्य करे।

उस गिरती हुई राजपूत शक्ति को एक बार फिर किसने चमका दिया, फिर किसने एक बार उठा दिया उसी वीरांगना का कुछ हाल आज आपके सामने रखते हैं। जिसने अपनी मोहिनी मूर्ति की कुछ परवाह न करके देश की रक्षा के लिये, देश के मान के लिये, अपने प्राणों को विष द्वारा सदा के लिये शान्त कर दिया। यह देवी कृष्णकुमारी थी। इसीका कुछ चरित्र हम स्त्री जाति के सामने रखना चाहते हैं जिससे स्त्री जाति इस सती की, विदुषी की, आत्मविसर्जन की कथा को सुनकर अपनी स्त्री जाति के मानाभिमान का ख्याल कर सकें और फिर देश की हालत स्त्री जाति से ही सुधरे भी—इसको ध्यान में रख-कर स्त्री जाति को उठाने का प्रयत्न करें।

पाठक! यह कृष्णकुमारी मेवाड़ के राजा भीमसिंह की रूपवती कन्या थी। इसका विवाह पहले मेवाड़ के राजा के साथ निश्चित हुआ था परन्तु कालवश वे शीघ्र ही मौत के शिकार हुए। तदनन्तर जयपुर के जतनसिंह से कृष्णा का विवाह होना निश्चित हुआ। परन्तु इस वक्त और ही झमेला उठ खड़ा हुआ मेवाड़ के राजा के मरने पर उसके तख्त पर मानसिंह बैठे। उसने भीमसिंह के पास यह सन्देसा भेजा कि मार-वाड़ राज्य के राज्याधिकारी होने के कारण कृष्णा का विवाह मुझसे होना

चाहिये। बड़ी विकट समस्या उपस्थित हो गई। परन्तु भीमसिंह ने इसे स्वीकार न किया।

इस समय मरहठा की शक्ति सबसे प्रबल थी। यह अपनी शक्ति का बड़ा दुरुपयोग उठाते थे। प्रजा को लूटते थे। राजाओं से मनमाना कर लेते थे। राजपूत शक्ति का नाश हो ही चुका था। अब, वह इसके सामने कुछ भी नहीं थी। जब सेंधिया ने भी यह सुना कि भीमसिंह जगतसिंह के साथ अपनी कन्या विवाहना चाहता है तब उससे भी रहा न गया। उसने भी तुरन्त भीमसिंह को कहला भेजा कि अपनी कन्या का विवाह मानसिंह से कर दो। क्योंकि सिंधिया और जगत सिंह में आपस में अनबन थी। अतः इसका पता लेना स्वभाविक ही था। परन्तु भीमसिंह ने सिंधिया के कथन की कुछ परवाह न की तबसिंधिया को बहुत बुरा लगा और बड़ी सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ आया। भीमसिंह इस विकटावस्था को देख भयभीत हो गये। क्योंकि उन राजपूती बाहुओं में पहले सा पराक्रम तो रहा ही नहीं था। अतः सिंधिया की बात इन्हें माननी ही पड़ी।

जगतसिंह ने जब यह वृतान्त सुना तो उसने इस में अपना घोर अपमान समझा और बड़ी सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। रण का समाचार सुन कर मानसिंह भी अपनी सेना लेकर आ उपस्थित हुआ।

मानसिंह को सिन्धिया का स्मरण था और जगतसिंह को अमीरखां नामक एक पठान का सहारा था। चारों ओर से मेवाड़ को सेना ने आ घेरा। मानों थोड़ी देर में ही सारे मेवाड़ को विध्वंस कर देंगे।

परंतु इतने में ही अभीरखां ने जो युक्ति राना को बतलाई उसे राना ने बहुत उत्तम समझा और उसी के द्वारा वह मेवाड़ की रक्षा कर सकता था इसके अलावा और कोई मार्ग न था। वह सलाह यह थी कि जिसके कारण इतनी आग लगी है अगर उसी को शान्त कर दिया जाये तो सब मामला खतम हो जाये अर्थात् "किसी तरह अपनी कन्या कृष्ण कुमारी का अंत कर दो"

राना ने भी इसे उत्तम समझ इसका अंत करने के लिये अपने भाई यौवनदास से कहा। वह भी शान्ति के निमित अच्छा अवसर देख हाथ में तलवार लेकर उस देवी का अंत करने चला। परन्तु वहाँ पहुंच कर उस वीर का भी हृदय दहल गया और अपने काम को न कर सका। किसी तरह यह भेद रनवास में पहुंच गया। वह सब इस भयंकर कृत्य को देख कर भय से कँप गईं कृष्ण कुमारी की माँ तो बे शुमार रोने लगी।

कृष्ण कुमारी सब को इस प्रकार रोते देख ज़रा भी न डरी। वह एक धैर्यवान की तरह बोली माँ बहिनों! तुम्हारी मूर्खता और रुदन को देख कर मेरे दिल में नया ही भाव उदित हो रहा है। मेरा हृदय दुखी होने के अतिरिक्त अन्दर के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है। उसमें नया ही रंग उत्पन्न हो रहा है। मुझे मालूम नहीं पड़ता कि तुम क्यों इतना विलाप कर रही हो जहाँ तुम्हें आनन्दित होना चाहिये, अपने भाग्य को सराहना चाहिये था वहाँ तुम उलटी ही और दुखी हो रही हो जब कि एक राजपूत कन्या देश की रक्षा के लिये, देश के गौरव को बचाने के लिये अपने प्राणों को दे रही है। उन्हें खुश होना चाहिये

कि मनुष्य जाति के रहते हुए एक स्त्री देश की रक्षा कर सकती है उन्हें इस पर अभिमान करना चाहिये कि जिस देश को राजपूत जाति नाश से न बचा सकी। उसी देश को एक वीरांगना ने विष खाकर प्राणों की आहुति देकर देश को नाश से बचा लिया और मनुष्य जाति को सदा के लिये कलंकित कर दिया जहाँ आज इस युद्ध से लाखों आदमियों की मृत्यु होती और उन्हें भी चिन्ता में रहना पड़ता वहाँ मेरे ही नाश होने से तुम सब की जाने बच जाती हैं। एक नहीं एक के मरने पर देश की रक्षा होती हो तो बुद्धिमानों का कर्तव्य है कि व्यर्थ में बहुतों का नाश न करावे इस तरह उन सब को समझा बुझा कर उसने उन्हें शान्त किया और अपनी माता को समझा कर कहने लगी। हे माता तुम उच्च कुलकी कुल देवी हो तुम्हारे ही कोख मे मेरा जन्म हुआ है—तुम्हें हम पर अभिमान करना चाहिये कि मेरी बेटी इस नश्वर देह को परित्याग कर इसआनन्द सुख को छोड़ कर उत्तम सुख वाली दशा को पाने के निमित्त देह को विसर्जन कर रही है। परन्तु तुम उलटे ही विलाप कर रही हो अपनी बेटी की इस सुख मय मृत्यु को देखकर कौन जननी कौन माँ अपने जीवन को धन्य नहीं समझेगी। देश की रक्षा के लिये अपनी पुत्री को मरते देख कौन माता अपनी आंखों से सुख के आंसू नहीं बहा देगी। हे माता मुझे इस आनन्द की मृत्यु में जाने दे जिससे इस कुल की मेवाड़ की रक्षा हो सके इसमें तुम्हारी ही मान और शान है।

कन्या के इन वचनों को सुनकर माँ ने कहा पुत्री! तुम्हें इसमें जरा भी दुःख नहीं है—मुझे इसमें खुशी है कि मेरी पुत्री देश की रक्षा के

किये नेकी पर बलिदान हो रही है मुझे इसमें तनिक कष्ट नहीं ! हां दुःख है तो यह है कि मनुष्य जाति के ऊपर सदा के लिये एक कलंक लग गया कि पुरुष जाति के उपस्थित होते हुए किसी भी राजपूत की मेवाड़ रक्षा के लिये तलवार न उठी उसे एक कन्या ने विष खाकर प्राणों को खो कर उस देश की रक्षा की। मुझे इसमें तनिक भी दुःख न था जब कि मैं इस भूमि को मेवाड़ वीरों के खून से रंगित देखती मुझे पिता के जलने का तनिक भी भय न था। परन्तु इन वीर केसरियों को इस तरह गुफा में छिपते देख मन नहीं खटका कि इन्होंने भारत के खून में कालिमा लगा दी। तू भी जाओ जाओ, आनन्द से जाओ अपना बलिदान कर देश की रक्षा और की जाति के मुख को उज्वल करो।

माता की बात सुन कर कन्या ने कहा-मां तुम्हारी बात सत्य है इस समय ऐसा कोई भी सूरमा उपस्थित नहीं है जो अपने हाथ में तलवार को उठा सके। इस समय देश में रावण जैसे स्वदेशाभिमानी पुरुष नहीं हैं कि जो पुरुष जाति के अपमान भी अपने सामने देखते हुए चुप बैठे रहते और एक रमणी को इस तरह मरने देते। शोक है मेवाड़ तेरे इस समय भाग्य का—यद्यपि मनुष्य जाति अपने पथ से च्युत हो गई पथ से गिर गई—परन्तु स्त्री जाति के द्वारा मेवाड़ पर दाग़ न लगने पावेगा—वह मान इसके मुख को उज्वलित ही रखेगी। इस तरह वह कन्या माता से आशीर्वाद ले सुख से मरने के लिये तैयार हो गई और राणा के पास ख़बर भेजी गई कि कन्या मरने को तैयार है जिस तरह आप मार दें उसे इसमें ज़रा भी कष्ट नहीं है यह समाचार सुन

कर किसी के मुँह से कोई शब्द न निकला । कुछ देर के बाद उस सती
विदुषी कन्या के लिये विष का प्याला भेजा गया । उस देवी ने उसे
अमृत कह कर पी लिया परन्तु उस विष से उस पवित्रात्मा का कुछ
भी न बिगड़ा तदनन्तर दूसरे पात्र में और भेजा गया था परन्तु उससे
भी उसका न हुआ ।

यह सुन कर उस देवी के लिये हलाहल विष का प्याला भेजा
गया—जिसे पीते ही उस देवी का वह पवित्र शरीर सदा के लिये
ठंडा हो गया और वह अनंत सुख की नींद सो गयी ।

यह थी उस रमणी की स्वदेशाभिमान धर्म पालनता ।

कमदेवी

(१)

दिल्ली के तख्त पर बादशाह अकबर विराजमान थे। तमाम मुगल बादशाहों में आप ही सब से राजनीति क्षेत्र में कुशल थे। थोड़े ही अर्से में वीर अकबर ने उत्तर भारत को काबू कर चित्तौर पर धावा बोल दिया। उस समय मेवाड़ के राज सिंहासन पर उदय सिंह थे।

सब क्षत्रिय गण चित्तौर पर आफत आई देख अपना कर्तव्य समझ अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो वहाँ पर आने लगे। इन सब में शूरवीर और पराक्रम शाली बेदनौर के अधिपति जयमल भी थे इन्हें राणा ने सेनापति के पद पर नियुक्त किया।

उस युद्ध में जो विशेष घटना हुई उसी को हम आज पाठकों के सामने विशेष कर नव युवकों के सामने रखना चाहते हैं जिसे पढ़कर नवयुक इससे लाभ उठाने का प्रयत्न करें और देश का उद्धार उन्हीं के द्वारा होगा इसको सामने रख कर, संसारीय उदाहरणों से भी शिक्षा लेकर अपने जीवन को इसी के अनुसार ढालने का प्रयत्न करेंगे।

जब चित्तौर में रण के बादल मंडला रहे थे। उस समय सोलह वर्ष का एक वीर बालक पूत कैलवास देश पर अपनी जननी कमदेवी की सहायता से राज्य करता था। इस वीर महिला ने भी इस संवाद को सुना और अपने पुत्र के पास आई और कहने लगी। हे पुत्र आज तेरे बड़े सौभाग्य का दिन है! आज मेरा जन्म सफल हुआ आज

तू अपनी जननी का पुत्र कहलायेगा, जल्दी से युद्ध की तैयारी कर अपनी सेना सहित चित्तौर की रक्षा के लिये राणा की सहायता के लिये पहुँच जावो।

माँ ! के इन वचनों को सुन बालक पूत ने कहा माँ मुझे तो राणा ने युद्ध का कोई संवाद नहीं दिया। माँ ने कहा—हे पुत्र राणा ने तुझे बालक समझ कर युद्ध में आने का निमंत्रण नहीं दिया। उसे पता नहीं कि सिंह की अपेक्षा नया सिंह का कितना भयंकर और वीरता शाली शोक है। तेरा फिर भी फ़र्ज़ है कि अपने देश की अपने स्वामी की जीजान से रक्षा करे चाहे प्राण रक्षा में चले जायें, पर इस तरह स्वामी पर और देश पर आपत्ति आती हुई चुप चाप बैठे रहना वीरों का काम नहीं है फिर यह तलवार किस काम आयेगी—पुरुषों की अपेक्षा नवजवानों में वीरता खूब अधिक होता है—वे जो चाहें कर सकते हैं—उनके आगे सब थोड़ा है क्या वीर अभिमन्यु बालक की शक्ति को भूल गये जिसने अपनी तलवार से लाखों नरों के झुण्डों को रुण्ड मुण्ड कर दिया बड़े सूरमाओं के द्रोण, कर्ण कृप आदि के दाँत खट्टे कर दिये। उनकी इतनी ही कुशल समझो कि अपमान के मारे युद्ध से भागे नहीं यद्यपि तुम्हें राजा ने युद्ध में सम्मिलित होने का निमन्त्रण नहीं दिया है। फिर भी तुम एक वीर जननी के पुत्र हो उस पर कलंक मत लगाओ और शीघ्र ही जन्म भूमि की रक्षा के लिये जाओ।

जननी के इन वीरतामय वाक्यों को सुन कर वीर पूत दल बल सहित चित्तौर में पहुँच गया। सब सरदार उसकी वीरता को देख कर दंग रह गये।

इधर जब जयमल लड़ाई करते करते युद्ध भूमि में गये । तब उनकी जगह पूत बालक ही सेनापति बनाया गया।

पूत के मन में ज़रा भी अभिमान का संचार न हुआ बल्कि और भी मुख मंडल गौरव से चित्तौर की रक्षा के लिये उज्वल हो उठा और वह वीर बालक सिंह के बच्चे के समान अकबर की सेना को अपनी पैनी तलवार से यम का रास्ता दिखाने लगा ।

इधर वीर जननी अपने पुत्र को रण में भेज कर अपने आप भी घर में न बैठ सकी। शीघ्र ही अपनी कन्या कर्णावती और कमलावती को बुला कर कहने लगी ।

कर्मदेवी ! बेटी मेरा वीर बालक पूत रण भूमि गया है उसे युद्ध में भेज कर स्वयं यहां रहना यह मुझसे नहीं हो सकता । मैं रण भूमि जाती हूँ और अपने पुत्र के उत्साह को और बढ़ाऊँगी कर्णावती—मां के इन वचनों को सुन कर बोली । मां जब तुम अपने पुत्र की सहायता के लिये जाती हो तो मैं उसकी भगिनी होकर घर में बैठे रहना मेरा काम नहीं है मैं भी तुम्हारे साथ युद्ध भूमि चलती हूं और अपने भाई के उत्साह को और बढ़ाऊंगी ।

कमलावती भी मां से कहने लगी मां मैं एक वीर की धर्मपत्नी होकर अपने कर्म से च्युत नहीं हो सकती मेरा भी कुछ फर्ज है उसी के मान में मान है जब वह रण में जाये तो मेरा भी धर्म है कि उसकी सहचरी बनूं । इस तरह तीनों के वीरत्व पूर्ण शब्दों को सुनकर कर्मदेवी बहुत प्रसन्न हुई और उन्हें वीर वेश से सुसज्जित कर रण की ओर चल पड़ी ।

इधर पूत बड़ी वीरता के साथ अकबर की सेना का विध्वंस कर रहा था। अकबर अपनी सेना को इस प्रकार कटते देखकर बहुत घबराया और दूसरा दल स्वयं लेकर उसकी ओर चला।

पर इधर वीर रमणी पहले से ही उस नीतिज्ञ अकबर की चाल जानती थी उसने उसकी यह मन्सा पूर्ण न होने दी। ज्योंही अकबर आगे बढ़ा उस पर गोलियों की वर्षा होने लगी थोड़ी ही देर में वहाँ लोथों के ढेर के ढेर लग गये। अकबर इस दशा को देख कर दंग रह गया उसने देखा कि तीन राजपूत रमणियें घोड़े पर सवार हुईं थोड़ी सी सेना के साथ उनके मार्ग को रोक रहीं हैं। अकबर इसे सहन न कर सका उसने तत्काल ही अपनी सेना के साथ उनपर धावा किया। पर उन वीर रमणियों के युद्ध कौशल को देख कर सब सैनिक दंग रह गये। लाखों मुग़ल उनकी गोलियों के शिकार हुए पर अंत में वह छोटी सी सेना कब तक उस बड़ी सेना का मुकाबिला कर सकती थी। थोड़ी ही देर में सब मुग़लों के हाथ से मारे गये और वह तीनों रमणियाँ भी उन्हीं मुग़लों का शिकार बनीं यह तीनों रमणियें पूतकी माता कर्मदेवी उसकी बहिन कर्णदेवी तथा उसकी भी पत्नी कमलावती थीं जिन्होंने की अपनी रक्षा किया और रण कौशल से सब को विस्मित कर दिया।

इधर वीर रजपूत बालक भी मुग़लों के एक दल को पराजित कर आगे की ओर बढ़ा। सामने क्या देखता है कि लाखों का ढेर का ढेर पड़ा है खून की नदी बह रही है वह नहीं समझ सका कि यह किस वीर ने मुग़लों की दुष्टता का मज़ा चखाया। कुछ देर बाद उसकी

नजर आगे दौड़ी यह देखते ही समझ गया कि यह सब—तत्काल उनकी लाशों को अपनी गोद में लिया। कमला एक बार पति को देखकर स्वर्गधाम सिधारी। कर्म देवी ने भी पुत्र को अंतिम वचन कह सुख की नींद में सोगई उसने कहा शीघ्रही रण को जाओ यहाँ पर शोक तथा विलाप करने का समय नहीं है। अपने कर्तव्य को निबाहो। सेना को रण में भेजकर स्वयं यहाँ बैठना वीरों का काम नहीं शत्रु को परास्त कर निज देश की रक्षा करो ताकि एक वीरांगणा माता के पथ का अनुकरण करना। प्राणों का मोह न करना।

माता के इन वचनों को सुनकर वीरबालक शीघ्रही रण भूमि को गया और यवनों को तलवार से चीरता हुआ स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुआ।

पाठक! आप इन सब कहानियों को नई कहानी समझ कर पढ़िये। यह सब कथा-लेख नयी पुस्तक से कुछ नये ढंग में लिखा है।

कर्मदेवी

(२)

राजपूताने के उत्तर पश्चिम भाग में मरुदेश है जिसे रेगिस्तान भी कहते हैं। इस स्थान के सब देशों का राजा एक नहीं है इसी एक भाग में मोहिल जाति भी रहती थी। जिसके अधिपति मोहिल राज मानिक राव थे। इनकी राजधानी का नाम अरिक था।

मोहिल राज मानिकराव की कन्या का नाम कर्म देवी था जिसकी वीरता और पतिव्रता को सारा संसार जानता है। इनके पुत्र का नाम मेघराज था यह भी वीरता और पराक्रम में अद्वितीय था।

इसी समय पूगल नाम देश में भाटिवंशीय राजा देव राजा राज्य करता था। इसी के धीर, वीर, पराक्रम शाली, पुत्र का नाम साधू था। इसके नाम को सुनते ही सब लोग थर थर कांपते थे। यह कभी राज्य में नहीं बैठा, सदा इधर उधर सेना के साथ घूमता ही रहा इसकी वीरता की प्रशंसा कर्मदेवी के कानों तक भी पहुंच चुकी थी। वह उसकी वीरता पर मोहित हो चुकी थी और अपना प्राण पति उसे मन में बना चुकी थी। सदा उसके दर्शनों की ही इच्छा में उत्कंठित रहती थी।

जिस समय का यह जिक्र हो रहा है उस समय राठौर वंशीय मुन्डुरराज चण्ड मारवाड़ में राज्य करता था। इसके पुत्र का नाम अरण्य-

कमल था । जो वीरता और पराक्रम में अपने जमाने में एक था । इनके साथ ही मून्दराज चण्ड अपनी कन्या कर्मदेवी की सगाई निश्चित ठहरा चुके थे । इसमें उनके वंश और राज्य का गौरव था ।

परन्तु कर्मदेवी अपने पति को स्वयं ही चुन चुकी थी । उसे किसी के बतलाने की या करवाने की आवश्यकता न थी ।

एक दिन वीर साधू किसी युद्ध में जीत कर अरिता नगर के पास से ही जा रहे थे मानिकराव उनकी वीरता की कथाओं को सुन चुका था । उसने अपना बड़ा महोभाग्य समझा और तत्काल उस शूरवीर को अपनी राजधानी में आदर सहित बुलाया और उसका बड़ा मान किया ।

कर्मदेवी की बड़ी दिनों की इच्छा आज पूर्ण हुई । वह उस वीर युवा को देख आज अपने को धन्य समझने लगी । उसकी वीरता मय दिव्य मूर्ति को देख वह मन ही मन अपने पतिदेव की प्रशंसा करने लगी और अपने मन के अन्तःकरण के विचारों को उस वीरवर के सामने रख दिये और अपने आपको उस देवी ने उस के हाथ सौंप दिया । परन्तु कन्या की रुचि को देख सब सखियें बड़े विस्मय में पड़ गई उन्हें पता था कि मानिकराव नेकर्म देवी की सगाई अरण्यकमल के साथ निश्चित की है उससे वे कहने लगीं कि इससे राज्य पर बड़ी भारी आपत्ति आयगी और मेवाड़ का राजा इसमें बड़ा भारी अपना अपमान समझेगा । और पिता की भी जो इच्छा है वह भंग होगी इन सब बातों को सोच विचार जो कुछ तुम्हें करना हो करो ताकि राजा के इस पवित्र काम में कोई विघ्न बाधा न उत्पन्न हो जावे जिससे राजा आपत्ति

काल में पड़ जावे। इन बातों को सुन वीर पतिव्रता कर्मदेवी ने कहा।

कर्मदेवी—जिसे मैं एक बार दिल में स्थान दे चुकी जिसे मैं एक बार स्वीकार कर चुकी उसे मैं फिर दिल से दूर नहीं कर सकती, मैं जिसे अपना एक बार बना चुकी वही मेरा हो गया उसमें चाहे आपत्ति आवे चाहे सुख इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

यद्यपि पिता की अंशा वही थी जो तुमने कही। परंतु वीर साधू अलयकमल से किस बात में कम है। कौन सी ऐसी बात है जो उसमें नहीं है मैंने भी उन्हीं गुणों को देख कर अपना जीवन समर्पित किया है। एक बात अवश्य है वह वंश में राज्य में उच्च है। सो मैं उत्तम कुल उच्च वंश की भूखी नहीं हूं मैं एक राजपूत बाला हूं मुझे परवाह है तो एक बात की, कुछ चाह है तो एक बात की, वह 'वीरता' है। राजपूत बाला 'वीरत्व' को सब से अधिक स्थान देती है उन के मन में हृदय में अगर कोई स्थान है तो वह 'वीरता' का। इस के सामने उच्च कुल उच्च राज की राज महिषी बनना सब तुच्छ है, इस में चाहे मुझे दरदर भटकना पड़े जंगल में घूमना फिरना पड़े मुझे उसकी तनिक भी परवाह नहीं है। उसकी वीरता पर पराक्रम पर मोहित हूँ मैं संसार में कोई भी वीर सेना नहीं समझती जो उसकी शक्ति का सामना करसके उसके सामने आ सके बस जिसे मैं अपने आप को दे चुकी उसी की सदा के लिये होगयी।

कर्म देवी की इन बातों को सुन कर सब सखियें मौन होगईं। उन से और कुछ कहते न बना। आखिर यह बात पिता के पास भी पहुंची।

उसने भी बहुत कुछ समझाया बुझाया पर वीर दृढ़संकल्प अपने वचनों से न विचलित हुई उसी पर स्थिर रही। अंत में राजा भी हताश होगये हार कर उसने साधू से अपनी कन्या की बात कह दी।

साधू यह वृतान्त सुन कर मुसकराया। उसे यह सब पहिले ही से विदित था। उसे इसमें थोड़ा भी उज्र न था बड़ी खुशी से उसने यह प्रस्ताव मान लिया और साधू के साथ बड़ी धूम धाम से मानिक राव की कन्या का विवाह हो गया।

यह था वीर का आदर्श सब कुछ पता होते हुए भी कि इसके करने से आपत्तियों से लड़ना पड़ेगा दुखों से लड़ना पड़ेगा। पर एक वीरां गना के प्रेम को निराश करना उसे यह असह्य था। उसे इन सब कष्टों का झेलना स्वीकार था पर एक राजपूत बाला के वीरत्व पर निराशा नहीं डालना चाहता था। उसने आगे चल कर आपत्ति उठाई और उसमें अपने जीवन को भी एक रमणी के हित दे डाला। पर वह वीर इन आपत्तियों से डरने वाला न था।

विवाह तो बड़ी धूम धाम से हो गया। पर साथ ही एक भयंकर संग्राम साधू के सामने उपस्थित हो गया। सबको पता था कि मेवा-डेश्वर अपने अपमान का बदला लिये बिना न रहेंगे। अतः पूगल की ओर रवाना होते हुए मोहिकराज मानिक राव ने साधू के साथ एक विशाल सेना भेजनी चाही जिससे वह भी उस सेना का सामना कर सके। पर वीर साधू ने उसे लेने से इन्कार कर दिया। बहुत कुछ कहने पर उसने अपने पुत्र मेघराज को थोड़ी सी सेना के साथ, साथ कर दिया।

इधर मेवाड़ के राणा चण्ड को भी सब खबर मिल चुकी थी। उसने अपना इसमें घोर अपमान समझा और अरड़ कमल के तो गुस्से का वार पार न था। तत्काल ही इसके प्रतिकार के लिये युद्ध की तैय्यारियां होने लगीं।

साधू भी आलिठ नगर से पूगल की ओर रवाना हो चुका था रास्ते में उसे चन्दन नामक स्थान में ठहरना पड़ा। वहां उसी वक्त अरड़कमल ने अपनी विशाल सेना से साधू को घेरा। पर साधू के पास थोड़ी सेना देख वीर और आत्मसम्मानी अरड़कमल ने इस दशा में उस पर आक्रमण करना अपमान समझा। तत्काल ही सेना को ठहरने का हुक्म दिया।

साधू उस वीरवर के इस काम को देख मन ही मन उसके इस कृत्य की खूब बड़ाई की।

अंत में दोनों ने बराबर बराबर सेना रख युद्ध शुरू किया इस तरह बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। इस पर भी नतीजा न निकलते देख और व्यर्थ में सैनिकों को कटते देख दोनों वीरों ने यह तय किया कि इस तरह सेना कटाने से कुछ फ़ायदा नहीं दोनों झगड़े में इतना खून बहाना वीरोचित कार्य नहीं। अच्छा यही है कि हम दोनों ही अपना अपना निपटारा कर लें और उसी पर सेना की विजय वा हार का आश्रित है। सब इस बात पर राज़ी हो गये।

साधू भी युद्ध से पूर्व अपनी स्त्री बिदाई लेने के लिये गया। कर्म देवी भी बड़ी उत्सुकता के साथ उसकी रणकौशलता और लड़ाई को देख रही थी। कर्म देवी ने बड़े प्रेम से उन्हें बिदा किया और कहा।

हे वीर चाहे जान चली जाय-पर मान को कलंकित न करना आज अपना पौरुष दिखा कर मेरी इतने दिनों की इच्छा को पूर्ण कर जाओ। आज रणभूमि में या तो प्राण दे देना या विजय लाभ को प्राप्त करना। दोनों ही कर्म उत्तम हैं। मरने पर स्वर्ग पद को प्राप्त करो और विजय लाभ करने पर कीर्ति का सुख भोगो देखो मेरे प्रेम में आकर मेरी याद में आकर युद्ध से मन ऊब न जाय। अगर तुमने युद्ध में लड़ते हुए प्राण दे दिये तो मैं भी तुम्हारे ही मार्ग का अनुसरण करूँगी। इससे तुम बिना विघ्न बाधा के युद्ध करो।

स्त्री की इन बातों को सुन कर साधू रणभूमि में आ गया। दोनों ही वीर थे। दोनों ही के देह तेज़ से चमक रहे थे।

देखते ही देखते रण शुरू हो गया। दोनों बड़े दांव पेच से अपना अपना रण कौशल दिखा रहे थे। एक बार दोनों ही ने बड़ी तेजी के साथ तलवार का वार किया जिससे दोनों ही भूमि पर व्याकुल हो कर गिर पड़े। कुछ देर बाद अलयकमल उठ खड़े हुए। पर वीर साधू सदा के लिये ही भूमि पर सो गये।

उधर कर्म देवी बड़े ध्यान से उनके रण कौशल को देख रही थी पति के गिरते ही वह उसके पास आई। उसका चेहरा उस वक्त तेज से प्रकाशित हो रहा था। उसने भी शीघ्र पति का अनुसरण किया। शीघ्र ही चिता तैयार की गई और उस में उसने अपने देह को भस्म कर दिया।

देखते ही देखते मुसलमान दुर्ग में घुसे और अपने कथन को भूल कर मनुष्यों पर स्त्रियों पर अत्याचार करने लगे।

लक्ष्मण यह दृश्य देख कर बहुत ही डरा और एक दम कुछ भाइयों को बचाने के लिये दौड़ा। उस को आते देख दूर से ही दुर्गावती ने फट कारना शुरू किया। अरे दुष्ट दुर्ग को शत्रुओं के हवाले कर, खुद यहाँ भाग आया है, अगर जान इतनी प्यारी थी तो लड़ाई में किस लिये आया था !

लक्ष्मण ने कहा—देवी ! क्षमा करो मुझे पता नहीं था कि मुसलमान ऐसे धूर्त और नीच होते हैं कि जो अपने वचनों पर थोड़ा भी नहीं चल सकते उसका थोड़ा भी नहीं ख्याल करते । मैंने स्त्रियों की मर्यादा की रक्षा के लिये अपने भाई की रक्षा के लिये दुर्ग को दिया था पर यह कृत्य देख कर हृदय फटा जाता है।

दुर्गावती—कुछ तो ख्याल करना—कुछ तो सोचना—शत्रु से वृथा भिक्षा मांगना क्या नीचों का काम है ? ये तो इन देश हरामी बनियों का काम है जो बकना और खून चूसना चाहते हैं—इन्हें अगर गोली से उड़ा दिया जावे तो ही अच्छा है—पर तुम तो राजपूत हो तुमने किस मुंह से दुर्ग दे दिया।

लक्ष्मण इस प्रकार तिरस्कार सुन बड़ा दुःखी हुआ। उसने कहा कि देवी ! मैंने प्राणों के मोह से दुर्ग नहीं छोड़ा—मैंने केवल स्त्रियों के मान के लिये भाई को बचाने के लिये दुर्ग छोड़ा।

दुर्गावती—स्त्रियें मान सम्मान के सामने अपने क्षुद्र प्राणों को तुच्छ समझती हैं वे रण से डर कर नहीं भागतीं। वे प्राणों को

दे देने में ज़रा भी नहीं हिचकती। देश रण के आगे वे अपने प्राण देती हैं।

इस तरह उस सती ने उसके देखते देखते सब स्त्रियों को इकट्ठा कर चिता तैयार कर सब एक दम जल कर भस्म हो गई। वह खड़ा ही खड़ा रह गया।

जीजाबाई

जिस वीर ने सारे हिन्दू राज्य को पलट दिया—नहीं नहीं सारे देश के राज्य को पलट दिया—मुग़ल राज्य को कँपा दिया—वह वीरवर वीर माता जीजा बाई के कोख से उत्पन्न हुआ था।

जीजाबाई वीरता की स्वरूप थी। हर एक गुण इसमें भरे पड़े थे। कोई गुण इससे दूर न था इस वीर का नाम शिवा जी था। जो माता के सदृश वीर था। जो इसके कामों से साफ़ है।

शिवाजी के पिता का नाम शाह जी था। वह भी बड़े वीर थे इनकी वीरता को सारे मुग़ल जानते थे। ये सम्राट शाहजहाँ के यहाँ छः हजार सवारों का नायक था। तथा दो लाख रुपये पुरस्कार मिलते थे।

लूखजी की कन्या का नाम जीजाबाई था। इसी का विवाह लूख जी ने शाह जी से कर दिया।

लूख जी तथा शाहजी में परस्पर खटपट ही रहती थी। वे शाहजी की बढ़ती को नहीं देख सकते थे। इसी के लिये उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट दिये।

पहिले पहल शाहजी को अहमदनगर में प्रधान पद पर देख वे इसे सहन न कर सके। तत्काल लूख जी ने दिल्ली के सम्राट से निवेदन

किया कि आप अहमदनगर पर धावा करें मैं भी आप को सहायता दूंगा। उसे इसमें उज्र क्या था। वह सेना लेके एएकदम आगया। परन्तु शाह जी ने अपने ही कारण यह सब कारवाई देख राज्य को छोड़ दिया। परन्तु लूख जी ने फिर भी उनका पीछा किया। यह देख कर शाह जी ने जीजाबाई को वहीं छोड़ दिया। उसने तत्काल ही अपनी कन्या को क़ैद कर शिवनरी दुर्ग में भेज दिया।

इस वक्त जीजाबाई गर्भवती थी वह सदा वीरता तथा रण की बातों में डूबी रहती थी। आज उसका पुत्र भी उसीके विचारानुकूल बड़ा वीर हुआ।

शिवादेवी के वर से पुत्र का जन्म हुआ था। आज माता ने पुत्र का नाम शिवाजी रक्खा।

ऊपर कह चुके हैं कि माता सदा भारत की दीन दशा में डूबी रहती थी तथा देवी की अराधना में अधिक समय लगाती थी। जिसका प्रभाव उसके पुत्र पर भी पड़ा। विशेष कर आप शिवाजी कृत्यों से परिचित ही हैं।

बालकपन से ही शिवाजी की माता स्वतंत्र जनों की जीवनी सुनाती थी जिससे उसके मन के विचार और भी दृढ़ हो गये।

शिवाजी को प्रारम्भ से ही शस्त्र शास्त्र विद्या में माता ने खूब निपुण कर दिया था। वह सदा इधर उधर जंगलों में घूमता रहता और सेना एकत्रित करता रहता।

धीरे धीरे शिवाजी २०—वर्ष के हुये। सब भार उनके ऊपर आपड़ा। पिता जी दूर कर्नाट देश में रहते थे और दादा भी बीमारी की हालत

में थे आज कल घर का भार और रियासत का भार इन पर ही आ पड़ा। जो कुछ मदद दादा जी करते थे वह भी जाती रही।

दादा जी ने अपना जीवन समीप देख शिवाजी को अपने पास बुलाया तथा राज कर्म प्रजा कर्म पर अनेक उपदेश दिये।

कुछ दिनों में दादा जी का देहान्त हो गया उनकी मृत्यु से दुखी दादी की भी शीघ्र मृत्यु हो गई।

अब शिवा जी अपनी माता के अनुसार सब काम काज करने लगे सब प्रकार की राज्य की सहायता माता देती और वह अपना राज्य भी बढ़ाने लगी। थोड़े ही दिनों में इनकी बीजापुर के सुलतान से मुठभेड़ छिड़ गई और इन्होंने कल्याण और कोंकन देश भी मुग़लों से जीत लिया।

सुलतान इस खबर को सुनकर बड़ा ही डरा और साह जी को अपने पुत्र को समझाने के लिये कहा पर साह जी अपने पुत्र के काम में क्यों हस्ताक्षेप करते! उन्होंने साफ सुलतान को उत्तर देदिया कि शिवाजी पर मेरा कुछ अधिकार नहीं है—वह स्वाधीन है। उसकी जो मर्जी हो सो करे।

इस पर साह जी को सुलतान ने कैद कर लिया और कहा कि अगर तुम कुछ नहीं करोगे तो मैं तुम्हें दीवार में चुनवा दूंगा।

इसकी खबर शिवाजी को भी लगी और माता जी से उसके विषय में पूछा। पिता जी आपतिकाल में पड़े हैं वे जीते हुए देशों को लौटाये बिना नहीं बच सकते माता पुत्र के बचनों को सुन कहने लगी यद्यपि पिता पूज्य हैं परन्तु देश को मुग़लों से बचाना उससे श्रेय कर

हैं इस पर तुम खुद ही सोच लो शिवाजी इस प्रकार शोक में डूब गये और अंत में उपाय मिल ही गया उन्होंने तत्काल एक पत्र दिल्ली के सम्राट शाहजहां को लिखा यहां पर शाह जी बहुत देर तक रह चुके थे वह भी उनके गुणों से परिचित था। वह शिवाजी की बातों में आगया और उन्हें छोड़ने का परवाना देदिया।

सुलतान कब उसे टाल सकता था उसने तुरन्त ही शाह जी को छोड़ दिया फिर उसी पद पर नियुक्त कर दिया और फिर उनके इच्छानुसार सब काम करने लगा।

शिवाजी अब राज्य को हर प्रकार से बढ़ाने में लग गये। उधर वृद्ध सम्राट की भी मृत्यु हुई उसकी जगह उसका बाल पुत्र गद्दी पर बैठा। छोटा होने के कारण सब राज्य की देख भाल अफ़जलखां करता था वह शिवाजी की राज्यवृद्धि न सहन कर सका तत्काल एक विशाल सेना लेकर शिवाजी पर धावा कर दिया।

रास्ते में आते हुए उसने कई पवित्र स्थानों तथा देवालयों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया और अनेक प्रकार के अत्याचार भी किये।

यह समाचार शिवा जी को मिला। अपने तीर्थ स्थानों का यह तिरस्कार सुन उसका हृदय खून से उबल उठा। जो विचार किसी वीर के अंदर उठ आते हैं वे सब उसमें एकदम आगये।

शिवाजी तत्काल सेना ले माता का आशीर्वाद ले, देवी की पूजा कर युद्ध के लिये चल पड़े। उस दुष्ट को इस कृत्य का शीघ्रही दंड मिल गया। अब तो शिवाजी का भी रास्ता खुल गया। वे अपने राज्य को हर प्रकार से बढ़ाने लगे।

इधर दिल्ली के तख्त पर औरंजेब भी आ बैठे जो मुगलों के खूनी राजा थे। वह शिवाजी का नाश करने का उपाय सोचने लगा। इसने तत्काल ही साइस्ता खां को विशाल सेना के साथ शिवाजी को दमन करने के लिये भेजा। परन्तु वीर शिवाजी के हाथ से उसे उल्टी ही खानी पड़ी।

कुछ दिनों बाद इनके पिता जी का भी देहान्त होगया। शिवाजी को केवल माता का ही सहारा रह गया। वे ही सब प्रकार से सहायता देने लगीं। माता ने भी उस वक्त सती होना सोचा था परन्तु सब गृह बान्धवों के समझाने पर वह शिवाजी को ही हर प्रकार से सहायता करने लगी और उस विचार को अंत में छोड़ दिया।

पिता की मृत्यु के बाद शिवाजी ने रायगढ़ दुर्ग में राजसिंहासन पर बैठ कर राजा की उपाधि ग्रहण की और अपने नाम से सिक्का भी प्रचलित किया इस तरह वे अब राज काज में लग गये।

शिवाजी की वृद्धि को देख सब मुगल जलने लगे। मुगल सम्राज्य ने जयसिंह आदि शूर वीर सेनापतियों को लड़ने के लिये भेजा।

शिवाजी भी हिन्दू थे—उन्हें राजपूतों से लड़ना अच्छा न लगा। कुछ दिन बाद जयसिंह के कहने पर मुगलों के जीते हुए दुर्ग भी वापस कर दिये और औरंजेब से संधि करली।

शिवा जी राज्य का भार माता को दे इन के दरबार में दिल्ली भी गये। पर वहाँ मक्कार औरंजेब ने इनका उलटा ही अपमान किया और साथ में वहीं कैद भी कर लिया परन्तु नीति निपुण शिवाजी उसके भी गुरु थे। अपनी सूक्ष्म युक्तिद्वारा उन्होंने निकलने का उपाय

कर ही लिया और उसको चकमा देकर साफ़ साफ़ बच गया। यह उनकी नीति दक्षता थी और शीघ्रही राजपुरी में आगये।

नगर निवासी शिवाजी को कुशल आते देख बड़े प्रसन्न हुए और हर जगह खुशी की आवाजें गूँजने लगीं।

इधर औरंगजेब ने कितना ही प्रयत्न उनके दमन के लिये किया पर सब व्यर्थ हुआ। बल्कि उलटा उसी के दुर्ग शिवाजी के हाथ में आगये इस तरह शिवाजी बड़ी अच्छी तरह अपना राज्य देखने लगे। उनका राज्याभिषेक फिर दूसरी बार शास्त्रानुसार हुआ।

इस तरह वृद्धमाता जीजा बाई अपनी इच्छाओं को पूर्ण देख, पुत्र को राजकीय हालत में देख, स्वर्गलोक सिधारी।
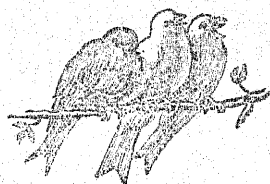
शर्मिष्ठा

स्वकुलाभिमानिनी शर्मिष्ठा के नाम को कौन नहीं जानता होगा जिसने अपने मान की कुछ भी परवाह न कर देश की रक्षा के लिये तमाम आयु भर राज के सुखों को छोड़ कर दासी बनी। यह क्या कोई साधारण बात न थी। आप हसेंगे पर यह हंसी और दिल्लगी की बात नहीं। इसी के चरित्र को हम आप को आज दिखाना चाहते हैं।

शर्मिष्ठा दैत्यराज वृष पर्व की कन्या थी। वृषपर्व का जो इतने दिनों तक इतनी देर तक देवताओं से राज्य सुरक्षित रह सका, इसे कोई जीत न सका, यह सब उस शुक्राचार्य की नीति का बल था। उसी के तेज के प्रभाव से उसका राज्य सुरक्षित बचा रहा।

शुक्राचार्य की कन्या का नाम देवयानी था। यह बड़ी अभिमानि नी थी तथा शर्मिष्ठा की समवयस्या थी। ये दोनों एक साथ खेलती और साथ ही रहती थीं।

एक दिन की बात है कि सब सखियों के सहित शर्मिष्ठा और देवयानी नदी पर नहाने गईं। सब ने अपने अपने कपड़े नदी के तट पर रख कर नहाने में निमग्न हो गईं।

इधर वायु का झकोरा आया और सब कपड़े उथल पुथल हो गये। स्नान करने के बाद सब अपने अपने कपड़े पहनने लगे। शर्मिष्ठा ने भूल

से देवयानी के कपड़े पहन लिये। जिसे देख कर वह बहुत ही दुखी हुई और कहने लगी।

देवयानी—शर्मिष्ठा। तुमने किस के बल पर आकर मेरे कपड़े पहन लिये, ऊँच नीच का जरा भी ख्याल न किया इतनी गर्वता किस के बल पर।

शर्मिष्ठा ने कुछ भी परवाह न कर के हँसी में जवाब दिया। मुझे अपना राज्य का गर्व है—मैं राज कन्या हूँ।

हंसी की बात थी। शर्मिष्ठा को क्या पता था कि यही हंसी लड़ाई रूप में परिवर्तित हो जायेगी।

धीरे धीरे रंग बदला और आपस में उत्थमगुत्था भी होने लगी और अंत में शर्मिष्ठा ने देवयानी को एक अन्धे कुँए में ढकेल दिया और अपने आप वहाँ से चल दी।

कुछ देर बाद वहाँ से शिकार खेलते हुए राजा ययाति इधर आ निकले। देवयानी को कुंए में पड़े देख उन्होंने उसे वहाँ से बाहर निकाल दिया। वह वहाँ बैठ अब रोने लगी।

थोड़ी देर बाद वहाँ से शुक्राचार्य की दासी घूर्मिका आ निकली। वह देवयानी को ऐसी हालत में देख और सब समाचार सुन बड़ी दुखित हुई और सब वृतान्त शुक्राचार्य से कह दिया।

शुक्राचार्य सब वृतान्त सुन वहाँ आये और उसे बहुत सम-झाया पर उसने एक न मानी। उसने अपने इस अपमान का बदला लेना चाहा। वह इसे सहन न कर सकी। अन्त में शुक्राचार्य भी हार गये। उसने कहा कि शर्मिष्ठा अपनी सब सखियों समेत

मेरी दासी बने और विवाह कर लेने पर मेरी दासी बन कर मेरे पतिगृह में रहे।

शुक्राचार्य ने यह सब समाचार राजा वृषपर्व से कहा कि देवयानी को मनाओ नहीं तो मैं कन्या सहित राज्य छोड़ कर जाता हूँ। राजा वृषपर्व भी खूब समझता था कि शुक्राचार्य के जाने पर उसके राज्य की क्या व्यवस्था होगी। वह तुरन्त ही देवयानी के पास आये और हर प्रकार से मनाया परन्तु उसने अपने मन में से वह अपमान न निकाल सकी और कुछ भी उसके समझाने का असर न पड़ा और देवयानी ने सब अपना अभिप्राय भी कह दिया।

राजा राज्य की विनाश काल देख तत्काल ही कर्णिका के द्वारा सब समाचार शर्मिष्ठा के पास भिजवाया। वह यह बात सुन कर बड़ी दुखित हुई और कहने लगी कि मेरे कारण राज्य का नाश नहीं हो सकता मेरे कारण उसका अपमान नहीं हो सकता और तुरन्त ही पिताजी के पास आई और बोली पिताजी मैं सहर्ष उसकी दासी बनने को तैयार हूँ।

राजा यह वृतान्त सुन कर बड़ा खुश हुआ और तुरन्त उसके साथ देवयानी के पास गया। जहाँ कि वह बैठी हुई थी शर्मिष्ठा ने आते ही उससे कहा।

शर्मिष्ठा—देवयानी! मैं तुम्हारी दासी बनने को तैय्यार हूँ। मेरे दोष के कारण राज्य को न विनाश करो। मेरे अपराध को क्षमा करो।

देवयानी उसकी बात सुन कर बहुत प्रसन्न हुई और वह अपना इसमें अभिमान समझने लगी और बोली तुम मेरी दासी बनोगी।

शर्मिष्ठा ने बड़े ही विनय भाव से कहा—सूत पुत्रि । मुझे इसमें तनिक भी दुख नहीं है । मैं सहर्ष तुम्हारी दासी बनने को तैयार हूँ । मैं अपने कारण, अपने दोष के कारण दैत्य कुल का नाश नहीं करा सकती ।

इधर देवयानी का राजा ययाति के साथ विवाह होगया । शर्मिष्ठा भी अपनी दासियों समेत इसके यहाँ दासी बन कर रहने लगी । उसे इसमें कुछ भी दुःख न था । परन्तु ययाति शर्मिष्ठा के रूप पर मुग्ध होकर उससे गुप्त रूप से विवाह कर लिया ।

जब यह बात देवयानी को मालूम हुई तब उसने शर्मिष्ठा को बुरा भला कहा और वहाँ से कुपित होकर शुक्राचार्य के यहाँ आगई । परन्तु शुक्राचार्य ने कहा कि जो हो चुका उसके लिये अब करना व कहना व्यर्थ है । विद्वानों का यही सिद्धान्त है ।

इधर शर्मिष्ठा और राजा ययाति का बड़ी अच्छी तरह विवाह हो गया और सुखमय दिन बिताने लगे ।

बहुत ही दुखी हुआ। उसी का फल लाहौर में मिला। जब वैरागी ने लाहौर पर आक्रमण किया तो नवाब ने सिक्खों को आगे कर दिया। अब बेचारा वैरागी विवश हो गया। सेना वहां से उलटी लौट पड़ी। परन्तु नवाब की सेना ने पीछा किया और बैरागी की सेना को गुरुदासपुर के किले में घेर लिया एक वर्ष तक घेरा पड़ा रहा और वैरागी की सेना का सब खाद्य पदार्थ भी समाप्त हो गया। यहां तक वे घोड़ों को मार कर खाने लगे। अंत में बैरागी कुछ सैनिकों सहित पकड़ा गया और दिल्ली में लाया गया।

वैरागी को जिस तरह यहाँ दिल्ली में फर्रुखसियर ने कष्ट दिया वह लिखना अत्यन्त कठिन है सिक्खों के साथ बड़ा बुरा व्योहार किया गया बैरागी को अपना बालक भी कत्ल करने को दिया गया और उसे भी लोहे को गर्म की हुई सलाखों से बड़ी बुरी तरह से उस के प्राण लिये गये जो कलंक मुसलमानों के ऊपर से नहीं मिट सकता—इससे उनकी आप सहानुभूति का व्यहार देख सकते हैं।

यह काम खतम करने पर फर्रुखसियर ने हुकुम दिया कि जो कोई सिक्ख का एक सिर काट कर लायेगा उसे १०) का पारितोषिक मिलेगा अब सिक्खों को अपनी भूल पता लगी पर अब दुःख प्रकाश करने का समय न था। सिक्ख डर के मारे जंगलों में जा छिपे और २५ वर्ष तक वहीं छिपे छिपे समय गुजारा। जब नादिर शाह ने मुगलों का राज्य नष्ट कर डाला तब यह शहर में आ कर लूट पाट करते थे और फिर जंगल में भाग जाते थे। और इस तरह इनके अनेक दल बंध गये जिनका काम यही लूट पाट करना था।

दुर्गावती

शिलादित्य नाम का हिन्दू राज्य हुमायूं के समय में सहसन दुर्ग में राज्य करता था। वह बड़ा वीर था। इसके भाई का नाम लक्ष्मण था।

इसी समय में बहादुर नाम का मुसलमान गुजरात प्रदेश में स्वतंत्र राज्य करता था।

इसने राज्य के लोभ में आ सहसन दुर्ग पर आक्रमण किया। लड़ाई करते करते वीर शिलादित्य को किसी तरह बहादुरशाह ने पकड़ लिया। भाई के पकड़े जाने पर छोटे भाई लक्ष्मण पर सारा दुर्ग का भार आ पड़ा। वह मुहम्मदीय नीति से अनभिज्ञ था अतः उसकी चालाकी न समझ सका।

उस धूर्त ने देखा कि दुर्ग को जीतना आसान नहीं है। तब उसने लक्ष्मण से कहा कि अगर तुम दुर्ग को छोड़ दोगे तो हम किसी भी पुरुष व स्त्री पर अत्याचार न करेंगे और तुम्हारे भाई को भी छोड़ देंगे और अगर हमें दुर्ग विजय करने में कुछ करना पड़ा। तो आगे तुम जानते ही हो वही हाल इस दुर्ग का होगा। अच्छा है सोच समझ कर काम करो। जिससे पीछे से दुःख न उठाना पड़े।

वह इसकी बातों में आगया और दुर्ग को उसके सुपुर्द कर दिया। उसे क्या पता था कि यह धोखे बाज, मुसलमानों की चाल है।

बहुत ही दुखी हुआ । इसी का फल लाहौर में मिला । जब बैरागी ने लाहौर पर आक्रमण किया तो नवाब ने सिक्खों को आगे कर दिया । अब बेचारा बैरागी विवश हो गया । सेना वहां से उलटी लौट पड़ी । परन्तु नवाब की सेना ने पीछा किया और बैरागी की सेना को गुरुदासपुर के किले में घेर लिया एक वर्ष तक घेरा पड़ा रहा और बैरागी की सेना का सब खाद्य पदार्थ भी समाप्त हो गया । यहां तक वे घोड़ों को मार कर खाने लगे । अंत में बैरागी कुछ सैनिकों सहित पकड़ा गया और दिल्ली में लाया गया ।

बैरागी को जिस तरह यहाँ दिल्ली में फरुखसियर ने कष्ट दिया वह लिखना अत्यन्त कठिन है सिक्खों के साथ बड़ा बुरा व्योहार किया गया बैरागी को अपना बालक भी कत्ल करने को दिया गया और उसे भी लोहे को गर्म की हुई सलाखों से बड़ी बुरी तरह से उस के प्राण लिये गये जो कलंक मुसलमानों के ऊपर से नहीं मिट सकता—इससे उनकी आप सहानुभूति का व्यहार देख सकते हैं ।

यह काम खतम करने पर फरुखसियर ने हुकुम दिया कि जो कोई सिक्ख का एक सिर काट कर लायेगा उसे १०) का पारितोषिक मिलेगा अब सिक्खों को अपनी भूल पता लगी पर अब दुःख प्रकाश करने का समय न था । सिक्ख डर के मारे जंगलों में जा छिपे और २५ वर्ष तक वहीं छिपे छिपे समय गुजारा । जब नादिर शाह ने मुगलों का राज्य नष्ट कर डाला तब यह शहर में आ कर लूट पाट करते थे और फिर जंगल में भाग जाते थे । और इस तरह इनके अनेक दल बंध गये जिनका काम यही लूट पाट करना था ।

नादिरशाह इससे बड़ा डरा और फिर सिक्खों ने पंजाब देश अपने आधीन कर लिया। इसी बीच में सिक्खों को अहमदशाह तथा मरहठों से लड़ना पड़ा और रघुनाथ ने लाहौर को अपने आधीन कर लिया तथा बीच बीच में अहमदशाह और मरहठों के युद्ध होते रहे और पानीपत में अहमदशाह ने मरहठों को शिकस्त दी।

इधर कुछ दिनों में अंगरेजों ने बंगाल को अपने हाथ में कर लिया और मरहठों ने भी दिल्ली को अपने अधिकार में कर बंगाल पर चढ़ाई की तैयारी कर दी। परन्तु बीच में एक बड़ा विघ्न आने के कारण सब बीच में ही रह गया।
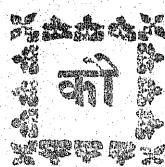
लक्ष्मीबाई

कौन ऐसा भारत का बच्चा होगा जो इस देवी के नाम से परिचित न हो जिसने भारत को अपने नाम से रौशन कर दिया उस में वीरता का रस भर दिया यह वीर देवी झांसी की रानी लक्ष्मीबाई थी जिसके डर से अँगरेज थर थर कांपते थे उसके नाम से भागते थे यह देवी भारत की वीर देवी लक्ष्मी बाई थी ।

जब भारत में गदर मचा हुआ था उसमें यह भी एक प्रमुख नायिका थी । जिसने देश की रक्षा के लिये अपने हाथ में तलवार धारण की उस समय लार्ड डलहौजी हिन्दुस्तान को एक राय करने में लगे हुये थे । यह बड़ा नीतिज्ञ था इसने बड़ी सरलता से इसे अपने हाथ में करने का तरीका सोचा कि कोई भी संतान न होने पर राज्य सरकार में मिला दिया जायेगा । इस तरह इसने अनेक राजों को अपने आधीन कर लिया और उनकी सब संपति भी लेली । इस तरह इसने एक सद्व्यवहार करने वाले अपने ही साथी के साथ ऐसा व्यवहार किया तो झांसी का राज किस गिनती में था उसने इसे भी सरकारी इलाके में मिला लिया ।

जिसके कारण हिन्दू राजा सब इस से विमुख हो गये । लक्ष्मी बाई ने तुरन्त युद्ध की तैयारी करदी और जबतक हो सका बराबर सेना की देश की, रक्षा करती रही यह जब रण में तलवार लेकर निकल पड़ती

थी तब किसी भी वीर की ताक़त न होती थी कि इसके आगे ठहर सकता इसने अपनी तलवारों से लाखों दुश्मनों का सिर काट डाला यह रण विद्या तथा अश्व विद्या, नीति में बड़ी निपुण थी। लड़ाई के वक्त सदा अपने बच्चे को पीठ पर बाँधे रहती थी इस तरह कितने दिनों तक युद्ध होता रहा और लक्ष्मीबाई ने झाँसी से ग्वालियर आकर इसी अग्नि को प्रज्वलित कर दिया और इस प्रकार लड़ते २ इसके शरीर पर कितने ही घाव लगे। जिससे पीड़ित होकर वहां से चल पड़ी और रास्ते में एक साधु की कुटी में इसने अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी।

लक्ष्मीबाई को यह सब शिक्षा एक पंडित ने दी थी। जिससे वह प्रत्येक कला में निपुण हुई।

धीरे धीरे यह सब अग्नि शान्ति हुई और देश से यह भयंकर अग्नि की ज्वाला का अंत हुआ और महारानी विक्टोरिया की ओर से घोषणा पत्र निकाला गया कि राज का प्रबंध इंगलैंड की पार्लिमेन्ट करेगी उस में कंपनी का कुछ भी हाथ न रहेगा और सब प्रजा के साथ प्रेम का समान व्यवहार करेगी।

इस तरह धीरे धीरे सब प्रदेश अंग्रेजो के हाथ में आ गया और उस पर इंगलैंड की गवर्नमेन्ट देख भाल करने लगी।

कलावती

सती पतिव्रता वीर रमणी कलावती का नाम हर एक प्राणी जानता होगा। जिसने अपनी देह की भी परवाह न कर के पति की रक्षा कर स्वयं स्वर्ग लोक सिधारी। जिसने की युद्ध में एक वीर नायिका का काम कर के शत्रुओं की आशा को निराशामय कर दिया। ऐसी वीर रमणी आज भारत में होती तो आज भारत की यह दशा देखने में न आती।

यह वीर राजपूत कर्णसिंह की सती थी। जो राज्यपूताने के किसी प्रदेश में राज्य करता था। यह बड़ा वीर और पराक्रमी था। इसने अपने बाहुबल से राज्य को सुरक्षित बचाया हुआ था।

इसी समय में अलाउद्दीन खिलजी बड़ा वीर बादशाह था। यह बड़ा दुष्ट था। जिधर चल पड़ता उधर ही इसकी सेना सर्वनाश कर देती इसने कितनी जगह मन्दिर गिरवा कर उनकी जगह मसजिदें बनवाई। यह अपने नाम से नया धर्म प्रचलित करना चाहता था। इसकी सेना ने मध्यप्रदेश-राजपूतना तथा रामेश्वर तक लूट मार मचा रखी थी। इसने जो अत्याचार किये वह वर्णन नहीं किये जा सकते।

इसी समय यह लूट खसोट करता हुआ कर्णसिंह के राज्य में भी आ निकला। एक राजपूत राजा अपने राज्य में यह कब देख सकता था। तत्काल वह रण के लिये तैयार हो गया। बड़ी देर तक युद्ध होता रहा परन्तु अलाउद्दीन थोड़े से राजपूतों से पार न पा सका।

यद्यपि उस वक्त राजपूतों में आपस में मेल न था । परन्तु फिर भी उन्होंने जिस तरह अपने दुश्मन का सामना किया वह साहसनीय है। वह कर्णसिंह की वीरता देख कर हैरान हो गया वह कुछ भी न कर सका । अन्त में अलाउद्दीन ने हार कर लड़ाई के मैदान में कर्णसिंह के एक तेग और विषधारी एक बाण मारा जिस के लगते ही वह जमीन पर गिर पड़ा। बस कर्णसिंह की सेना में हाहाकार मच गया । सेना की हार जीत आज कल की तरह उसके राजा पर ही होती थी । जहाँ वह पकड़ा गया बस सेना के होश हवास उड़ जाते थे । राजपूत लोग निरुत्साहित हो गये भागने लगे। परन्तु इसी वक्त सती कलावती जो युद्ध में उपस्थित थी वह सेना की ऐसी हालत देख तुरन्त नायिका का पोशाक पहन घोड़ा पर सवार हो रण में आगे आईं । बस मुसलमानों की इच्छा मन में ही रह गई वे कर्णसिंह की देह को अपने अपवित्र हाथ न लगा सके। वीर स्त्री ने सब को अपने हाथ से सफा कर दिया । सती ने तुरंत ही राजा के देह को डोली में रखवा के वहाँ से चंपत किया। लड़ाई बड़े वेग से होने लगी। सेना भी एक वीरांगना को इस तरह लड़ते देख कब वहाँ से भाग सकती थी। सब के सब फिर युद्ध में लग गये । खूब युद्ध प्रारम्भ हुआ। शाम को जाकर थमी । अलाउद्दीन ने वहां ठहरना अच्छा न जान आगे चल दिया और वीर राजपूत अपनी राजधानी में आकर विश्राम लिया ।

कर्णसिंह के शरीर से वैद्यों और डाक्टरों ने आकर तीर निकाला और इलाज करना प्रारम्भ किया। परन्तु कुछ काम न हुआ । सब ने मिल

कर सलाह दी इसका कोई भी इलाज नहीं। हां अगर कोई पुरुष विष को चूस ले तब प्राण बच सकते हैं—इसके सिवाय और कोई दूसरा उपाय नहीं। विष बड़ा तेज है—इसके चूसे बिना राजा का प्राण बचना असम्भव है और जो विष को चूसेगा वह भी मृत्यु भागी होगा राजा को यह स्वीकार न था कि कोई उसके लिये अपनी जान दे।

समय बड़ा भयंकर था। रात को जब कर्णसिंह गहरी नींद में सो रहे थे। तब रानी ने अच्छा अवसर देख उसके यहां गई और अपने मुख से सारा विष चूस लिया। राजा को इस का पता तक न मिला। जब प्रातः काल हुआ तो राजा तो अच्छा हो गया। परन्तु कलावती की दशा बिगड़ती गई और लगातार बिगड़ती ही चली गई। उसने अपना अंत काल समीप देख कर्णसिंह से कहा—राजन्! मैं अपनी ? आंखों के सामने आपके जीवन का अन्त नहीं देख सकती थी मैं आप की स्त्री और पत्नी हूं। मेरा दोनों तरह से धर्म था कि आप की रक्षा करती। अब मेरा प्राण काल निकट ही है। यह कह कर उस रानी ने राजा के चरण छूकर अपने देह का अंत कर दिया।

पतिव्रता कलावती की इतनी पति भक्ति को देख कर किस के आंखों में से आनन्दाश्रु नहीं निकल पड़ते। जिसने पति की रक्षा के सामने अपने प्राणों को तुच्छ समझा और अपने जीवन को स्वाहा कर दिया। ऐसी ऐसी देवियाँ ही भारत के मुख को उज्वल कर सकती हैं। राजा का भी जीवन सदा शोक प्रद रहता था - उसके चेहरे से हंसी की झलक सदा के लिये मिट गई और वृद्धावस्था के आने पर संसार से चल बसा।

मरीचि

भूटान देश जो पहले स्वतंत्र था और आज तक स्वतंत्र है। इसी देश की रहने वाली मरीचि थी। इसके पिता का नाम यशपाल सिंह था। जो बड़े वीर और साहसी थे। यशपाल सिंह ने मरीचि को बालकपने से ही उत्तम शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया था। बौद्ध धर्म में शिक्षित होते हुए भी इसने दर्शन, शास्त्र और संस्कृत का भी अध्ययन किया था। इसके यहाँ पुस्तकों का अच्छा प्रबन्ध था। यह बड़ी पवित्रात्मा थी। यह स्वभाव में बड़ी दयालु नम्र तथा सुन्दरी थी। इसने २० वर्ष तक विवाह न करवाया और पूर्ण ब्रह्मचारिणी रही।

उत्तम जाति में उत्पन्न होने के कारण यह स्वभावतः स्वतन्त्र पुत्री थी और अपने देश की सीमा तक इधर उधर लड़कियों के साथ जंगलों में घूमती रहती थी। इतना रहते हुए भी यह धर्म में बड़ी भक्ति वाली थी। धर्म से कभी च्युत न होती थी चाहे इसकी रक्षा के लिये प्राण चले जायँ—पर धर्म पर कुछ दोष न लगने पावेगा। बौद्ध धर्म की शिक्षा के कारण यह अपने धर्म की रक्षा के लिये, स्वतंत्रता के लिये, अपने पास तलवार रखती थी स्वतंत्रता के लिये यह अपने जीवन को कुछ नहीं

समझती थी—इसी की दो एक घटनायें आज हम पाठकों को दिखायेंगे।

एक बार मरीचि अपनी बहिन के साथ घूमने गई हुई थी। लौटते वक्त जब वह घर पर आ रही थी। इतने में इसे वहाँ एक अंग्रेज दिखाई दिया—उसने देखते ही मरीचि को आवाज दी वह तुरन्त ही निर्भय होकर उसके पास चली आई। उसके अनुपम सौन्दर्य को देख कर अंग्रेज बड़ा चकित हुआ। उसने बड़े अभिमानमय शब्दों में कहा—तुम जानती हो, मैं इस देश का अब शासक हूँ—तुम बड़ी सुन्दरी हो, तुम्हें हमारे पास रहना पड़ेगा। पर उस सती ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने और साहस करके कहा—और धन का लालच दिखाया पर उस देवी ने मुँह से कोई उत्तर नहीं दिया। इस पर उसका और साहस बढ़ गया और अंग्रेज़ हँसता हुआ उसकी ओर बढ़ा पर सती एक दम पीछे हट गई। पर वह दुष्ट उसकी ओर बढ़ता ही चला गया और उसका हाथ पकड़ना चाहा। इस पर वह रमणी चुप न रह सकी उसने कड़क कर कहा—बस—बस अधिक नहीं—भूल कर भी मेरे देह को स्पर्श न करना नहीं तो बुरी करनी भोगोगे परन्तु उसने उसकी कुछ परवाह न कर उसका हाथ पकड़ लिया और उसने कितनी ही छुड़ाने की कोशिस की पर सब व्यर्थ हुई। हार कर उस धर्म रक्षिका देवी ने तुरन्त अपने काले काले केशों से छुरी निकाल ली और कहा रे दुष्ट! तेरे कृत्य का यही फल है और छुरी उसकी छाती में भोंक दी और धमाड़ से वहाँ गिर पड़ा और वह देवी निडर हो अपने घर चली आई। यह थी एक देवी की धर्म तत्परता। ऐसी ही कितनी ही

मरीचि

भूटान देश जो पहले स्वतंत्र था और आज तक स्वतंत्र है। इसी देश की रहने वाली मरीचि थी। इसके पिता का नाम यशपाल सिंह था। जो बड़े वीर और साहसी थे। यशपाल सिंह ने मरीचि को बालकपने से ही उत्तम शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया था। बौद्ध धर्म में शिक्षित होते हुए भी इसने दर्शन, शास्त्र और संस्कृत का भी अध्ययन किया था। इसके यहाँ पुस्तकों का अच्छा प्रबन्ध था। यह बड़ी पवित्रात्मा थी। यह स्वभाव में बड़ी दयालु नम्र तथा सुन्दरी थी। इसने २० वर्ष तक विवाह न करवाया और पूर्ण ब्रह्मचारिणी रही।

उत्तम जाति में उत्पन्न होने के कारण यह स्वभावतः स्वतन्त्र पुत्री थी और अपने देश की सीमा तक इधर उधर लड़कियों के साथ जंगलों में घूमती रहती थी। इतना रहते हुए भी यह धर्म में बड़ी भक्ति वाली थी। धर्म से कभी च्युत न होती थी चाहे इसकी रक्षा के लिये प्राण चले जायँ—पर धर्म पर कुछ दोष न लगने पावेगा। बौद्ध धर्म की शिक्षा के कारण यह अपने धर्म की रक्षा के लिये, स्वतंत्रता के लिये, अपने पास तलवार रखती थी स्वतंत्रता के लिये यह अपने जीवन को कुछ नहीं

समझती थी—इसी की दो एक घटनायें आज हम पाठकों को दिखायेंगे।

एक बार मरीचि अपनी बहिन के साथ घूमने गई हुई थी। लौटते वक्त जब वह घर पर आ रही थी। इतने में इसे वहाँ एक अंग्रेज दिखाई दिया—उसने देखते ही मरीचि को आवाज दी वह तुरन्त ही निर्भय होकर उसके पास चली आई। उसके अनुपम सौन्दर्य को देख कर अंग्रेज बड़ा चकित हुआ। उसने बड़े अभिमानमय शब्दों में कहा—तुम जानती हो, मैं इस देश का अब शासक हूँ—तुम बड़ी सुन्दरी हो, तुम्हें हमारे पास रहना पड़ेगा। पर उस सती ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने और साहस करके कहा—और धन का लालच दिखाया पर उस देवी ने मुँह से कोई उत्तर नहीं दिया। इस पर उसका और साहस बढ़ गया और अंग्रेज़ हँसता हुआ उसकी ओर बढ़ा पर सती एक दम पीछे हट गई। पर वह दुष्ट उसकी ओर बढ़ता ही चला गया और उसका हाथ पकड़ना चाहा। इस पर वह रमणी चुप न रह सकी उसने कड़क कर कहा—बस—बस अधिक नहीं—भूल कर भी मेरे देह को स्पर्श न करना नहीं तो बुरी करनी भोगोगे परन्तु उसने उसकी कुछ परवाह न कर उसका हाथ पकड़ लिया और उसने कितनी ही छुड़ाने की कोशिस की पर सब व्यर्थ हुई। हार कर उस धर्म रक्षिका देवी ने तुरन्त अपने काले काले केशों से छुरी निकाल ली और कहा रे दुष्ट ! तेरे कृत्य का यही फल है और छुरी उसकी छाती में भोंक दी और धमाड़ से वहाँ गिर पड़ा और वह देवी निडर हो अपने घर चली आई। यह थी एक देवी की धर्म तत्परता। ऐसी ही कितनी ही

जाती की विशेषित घटनायें मिलती हैं। इसको सुन कर अंग्रेज़ उसे जीतने का ढंग सोचने लगा।

देखते ही देखते वह समय भी आ गया अब इन्होंने मरीचि के मन्दिर पर भी छापा मारा। पर धर्म रक्षिणी देवियाँ कब चुप रह सकती थीं। बहुत सी स्त्रियाँ इकट्ठी हुईं और मैदान में युद्ध के लिये आ गईं। अंग्रेज़ उनके इस साहस को देख कर बहुत ही डरे और आश्चर्यित हुए। कितनी बार युद्ध हुआ पर कुछ परिणाम न निकला।

एक बार बहुत सी स्त्रियें घोड़े पर चढ़ी हुईं जा रही थीं कि सेनाधीश की नज़र इन पर पड़ी—उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतनी स्त्रियें लड़ाई के लिये तैयार हो जायेंगी। अभी वह कुछ ही आगे गया था कि एक तीर उसके पांव पर लगा और उसकी भयंकर चोट से वह वहीं गिर पड़ा उसे बड़ा क्रोध आया और मारने वाले को देखने लगा इतने में उसका ध्यान एक सुन्दर युवती पर पड़ा जो अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित थी। उसे देखते ही उसने कहा हे सुन्दरी! मैं तुझ पर अस्त्र उठाना नहीं चाहता—स्त्री जाति पर अस्त्र उठाना मैं पाप समझता हूँ। अच्छा यही है कि तू स्वयं अपने शस्त्र को रख दे। भला वीर देवी यह कब सुन सकती थी उसने भी वैसा ही जवाब दिया रे दुष्ट! धर्म और मन्दिरों पर अपमान कर अब रक्षा का उपाय सोचता है अब तेरे लिये मृत्यु दंड के सिवाय और कोई दंड नहीं है। इतने में ही बहुत सी स्त्रियें और आगईं। अंग्रेज़ बड़े चक्कर में पड़ा। जान बचानी मुश्किल हो गई तब क्षमा माँगने लगा हे धर्म स्वरूपा! मुझे दया करो —मैंने यद्यपि अधर्म का काम किया है—परन्तु आज मेरी जान की

रक्षा करो। परन्तु उस देवी ने कहा—कि भला कौन शत्रु को हाथ आने पर छोड़ देता है—तुम जैसे पाखंडियों को इस तरह धर्म का विनाश करने पर छोड़ना पाप है साहब ने बड़े रुद्ध कंठ से कहा—मैं तुम्हारी शरण में हूँ—स्त्री ने कहा जल्दी कहो—जो कहना हो समय थोड़ा है उसने कहा कृपा कर आप मुझे यह बता दीजिये कि तुम किसकी लड़की हो ? तुम्हारे पिता का नाम क्या है ? तथा किस जाति की हो ? उसने कहा मेरे पिता नाम यशपाल सिंह है, सीकम जाति की स्त्रियें हैं। साहब ने हाथ से तलवार रख दी और कहा अब मेरा जो करना हो करो। पवित्रात्मा मरीचि की आत्मा पिघल गई—शरणागत की रक्षा करना सब से उत्तम धर्म है—चले जाओ। परन्तु भूल कर भी इस देश में न आना। उसने साहब की तलवार हाथ में ले लिया और स्वयं अपने मन्दिर में सब स्त्रियों के साथ आ गई। यह घटना कोई झूठी बनावटी नहीं है कुछ ही समय पूर्व की घटना है। जहाँ की ऐसी ऐसी वीर तथा सच्ची धर्म प्रेमी स्त्रियें होती थीं वहाँ अब इसका चिन्ह भी नहीं है।
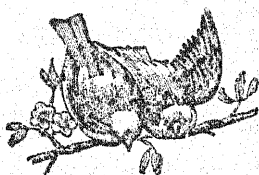
गार्गी

गार्गी जैसी प्रतिभाशालिनी तथा वीर रमणी थोड़ी ही स्त्रियें देखने में आती हैं। पर फिर भी सब से प्रथम नम्बरगार्गी का ही था। इसकी बुद्धि की प्रशंसा आपको आगे चल कर मिल जायेगी कि यह कितनी बुद्धिमती थी। ज्ञान गौरव से पूरित भारत में बड़े बड़े ब्राह्मणों के होते हुए भी इसने इतनी ऊंची पदवी प्राप्त कर ली थी यही इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

गार्गी का जन्म गार्ग वंश में होने से इसका नाम वंश के अनुकूल गार्गी रखा गया। प्रथम इसका नाम वाचासवी था।

जब कि देश देश में वेद प्रचार हो चुका था ऋषिगण यज्ञ तथा वृहत् अनुष्ठान करने को भिन्न भिन्न जगह इकट्ठे हो कर ब्रह्मभाव की आलोचना किया करते थे। इन सब आलोचनाओं का मुख्य भंडार मिथिलापुरी थी। यहाँ के राजा जनक थे। यहाँ पर बड़े बड़े ऋषिगण ब्राह्मण आ कर ब्रह्मतत्त्व की आलोचना किया करते थे। इनमें गार्गी भी आया करती थी इसकी आलोचना कई ऋषियों तथा पंडितों से बढ़ कर होती थी। यहीं से हम इसकी विद्या का अन्दाजा लगा सकते हैं।

एक बार राजा जनक ने बड़ा भारी यज्ञ किया। जिसमें बड़े बड़े पंडित तथा ऋषिगण आये। इसमें गार्गी भी उपस्थित थी। सब पंडितों तथा ब्राह्मणों के इकट्ठे हो जाने पर राजा जनक ने अपने मन की वास्तविकता हालत कह डाली। उसने कहा कि जो कोई आप लोगों में

सब से अधिक ब्रह्मज्ञानी हो वह इन सुवर्ण मुद्राओं से जटित एक सहस्त्र गौओं को अपने घर ले जाये।

राजा जनक के इन वचनों को सुन कर सब एक दूसरे का मुंह देखने लगे। किसी की हिम्मत न पड़ी कि गौवें ले जाये। अन्त में याज्ञवल्क ने अपने शिष्यों से कहा इन सब गौवों को मेरे घर पहुँचा आओ।

याज्ञवल्क के इन वचनों को सुनकर और एक सहस्त्र गौओं को जटित मुद्राओं से इस तरह ले जाना ब्राह्मण कब देख सकते थे कि यह सब से अधिक ब्रह्मज्ञानी है। अतः बीच में ही विवाद खड़ा हो गया।

यह देख कर सभा में बैठीहुई गार्गी एक दम खड़ी हो गई और बोलीः—

गार्गी—ब्राह्मणो! ज़रा धैर्य धारण करो। आप सब लोग कृपा कर के बैठ जायँ। मैं याज्ञवल्क से दो एक प्रश्न करती हूँ। अगर उनका उन्होंने पूर्ण उत्तर दे दिया तो मैं समझ लूंगी कि इनसे अधिक और कोई ब्रह्मज्ञानी नहीं है।

गार्गी की नीति पूर्ण बात सुन सब चुप हो गये और गार्गी ने तब याज्ञवल्क से जगतत्व और ब्रह्मतत्व के सम्बन्ध में अति कठिन प्रश्न पूछे। पर उन कठिन प्रश्नों का उत्तर याज्ञवल्क ने बड़ी अच्छी तरह गार्गी को दे दिया और गार्गी बड़ी संतुष्ट हुई। तब गार्गी ने सब ब्राह्मणों को संबोधन कर के कहा—

गार्गी—ब्राह्मणो! तुम सब में सब से अधिक ब्रह्मतत्व ज्ञानी याज्ञवल्क ही हैं। इन्हें ब्रह्मतत्व की आलोचना में कोई भी परास्त नहीं

कर सकता। यदि इस तरह ही इन्हें जाने दो तो बड़ा अच्छा है नहीं तो अपमानित होना ही पड़ेगा। पुरस्कार के पात्र वास्तव में यही हैं इनके सिवाय और कोई अन्य इसका पात्र नहीं है।

गार्गी की वचन को सुन कर सब ब्राह्मणों ने मुंह नीचा कर लिया किसी के मुंह से जवाब न निकला। इस तरह प्रतिभाशालिनी गार्गी ने अपनी बुद्धी की पूर्ण परिचय, एक विद्वान मंडली में ऐसे तर्क वितर्क के समय में, दी। जिसे देख कर सब चकित हो गये। ऐसी ऐसी प्रतिभाशालिनी गार्गी जैसी ब्रह्मतत्वज्ञानी हमारे भारत में महिलायें हो गई हैं जिन्होंने की अपने जीवन से भारत का मुख उज्वल करदिया।

रानी कर्णावती

रानी कर्णावती संग्राम सिंह की रानी थी। वह बड़ी वीर तथा पतिव्रता थी। इसने चित्तौर की संकटावस्था में जिस तरह अपनी बुद्धी की, बल की, परीक्षा दी वह संसार से छिपी नहीं इसी का जीवन आज आपके सामने वर्णन करता है।

जिस समय राजकीय वंशों में लोधी वंश का अन्तिम राजा इब्राहीम दिल्ली के तख़्त पर विराजमान था। उसी समय चित्तौर में एक बड़ा वीर राजा राज्य करता था। जिनका नाम संग्रामसिंह था। इनकी बहादुरी संसार में प्रथम ही है। शरीर पर अनेक घाव होते हुए भी, भाइयों से झगड़ा होते हुए भी, इसने किस तरह सारी रियासतों को अपने हाथ में किया हुआ था। इसी से हम इसकी वीरता का अनुमान लगा सकते हैं वह हर वक्त राज्य को बढ़ाने की ही सोचता रहता था।

दिल्ली में इब्राहीम लोधी राज्य करता था। वह बड़ा निर्बल और निस्तेज था। इसने दिल्ली को भी अपने हाथ में करने का सोचा। इसने देखा कि अफगानिस्तान में बाबर राज्य करता है उसकी भी दिल्ली हस्तगत करने की इच्छा थी। अच्छा अवसर देख उसने बाबर से दिल्ली पर धावा करने के लिये कहा। उसे इससे बढ़ कर क्या था। वह तुरन्त सेना लेकर आ गया और इब्राहीम को पराजित कर दिया पर इतने में ही संग्राम भी अपनी सेना लेकर आ पहुँचा। अब तो बाबर बड़ा डरा।

उसने ईश्वर से विजय की दुहाई की और कहा कि कभी भी शराब से न पीऊंगा—न छुऊंगा—और तत्काल ही उसने सब शराब के प्याले तोड़वा दिये। उसकी प्रार्थना का असर हुआ और वह जीत गया। इसमें हार का कारण सरदार हरमावक का भी था। वह जाकर बाबर से मिल गया और राजपूत सेना को पीछे हटना पड़ा। परन्तु संग्राम ने फिर दूसरी बार लड़ाई करना सोचा था उसकी यह इच्छा सरदारों ने पूर्ण न होने दी। वह उसकी नीति से तंग आ गये थे और उसे विष देकर मार डाला। नहीं तो दिल्ली पर भी राजपूतीय झंडा फहर रहा होता।

दिल्ली पर बाबर का अधिकार हो गया। और इब्राहीम के पास जो कोहनूर हीरा था वह अब बाबर के हाथ में आ गया। परन्तु कुछ ही वर्षों बाद इसकी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र हुमायूं गद्दी पर बैठा। इधर राजा की मृत्यु पर राजगद्दी पर बैठने के लिये झगड़ा हो रहा था। अच्छा अवसर देख और अपमान का बदला लेने के लिये गुजरात के हाकिम बहादुर ने चित्तौर पर आक्रमण कर दिया। उस समय यद्यपि राज्य में बड़ा झगड़ा हो रहा था परन्तु रानी कर्णावती ने देश की, दुर्ग की, रक्षा के लिये सब भार अपनेहाथ में ले लिया। एक स्त्री की इस वीरता को देखकर राजपूत किस तरह पीछे हट सकते थे। सहस्रों राजपूत एक दम अपमान के भय से एकत्र हो गये। बहुत दिनों तक चित्तौर दुर्ग गुजरात की सेना से घिरा रहा और सुरंग से किले की एक दीवार भी उड़ गई थी। यह हाल देख राजपूतों ने आधीनता स्वीकार करनी सोची परन्तु उस वक्त जो वीर रमणी कर्णावती ने उनसे कहा वह सुनने लायक़ है वीरो राजपूतानियों की गोद से पलने वाले और

दूध पीने वाले ऐसी बातें कभी अपने मुँह से नहीं निकालते। इस तरह राजपूतों को कलंकित मत करो जाने दो पर देश पर दोष मत लगाओ। इधर राखी त्योहार भी आगया और किले का दरवाज़ा भी खुलने वाला ही था वीर रमणी ने तुरन्त ही हुमायूं को अपना भाई कह कर उसके पास राखी भेजी। उस समय वीर हुमायूँ शेरशाह के साथ बंगाल में लड़ रहा था परन्तु बहिन द्वारा एक राखी भेजी हुई वह कैसे मना कर सकता था। तुरन्त ही सेना सहित चितौर रक्षा के लिये चल पड़ा पर दुर्भाग्यवश वह ठीक समय पर न आ सका। जब रानी ने आने में देर देखा तो उसने वीर राजपूतों को केशरी बाना पहन कर मैदान में उतर पड़ने की आज्ञा दी और दुर्ग का फाटक खोलवा दिया सब स्त्रियाँ चिता में जल कर भस्म हो गईं और रानी कर्णावती भी एक चिता में भस्म हो गई उधर वीर राजपूत बहादुरी से लड़ते हुये एक एक करके युद्ध में मारे गये परन्तु निज देश पर कालिमा का धब्बा न लगाया। जान देनी बेहतर समझी, पर गुलाम नहीं हुए। अब बहादुर सुल्तान जीत कर दुर्ग में घुसा और यह अग्निकांड देखा तो दंग रह गया। वहां आने पर उसे कुछ भी दिखाई न पड़ा अंत में हताश होकर लौट गया। वीर राजपूतों ने अपने मान की रक्षा कर ली।

यह थी एक देवी की वीरता, आत्म गौरवता, जिसने युद्ध में एक नायिका की तरह सब दुर्ग को सभाँला अंत में धर्म को रक्षा कर चिता में भस्म हो गई परन्तु देश पर कलंक न लगने दिया।

सावित्री

सावित्री सब पतिव्रता स्त्रियों में बढ़कर थी। यह किस तरह पति के लिये वन वन भटकी और अनेक कष्टों को सहती हुई अंत में अपने मृत पति को यमराज से पुनर्जीवित कराया यह कोई छोटी बात नहीं है इसे एक पतिव्रता स्त्री ही कर सकती है। इसी देवी का जीवन चरित्र आपके सामने रखना है।

यह पतिव्रता स्त्री दक्षिण देश के मध्य प्रदेश के राजा अश्वपति की पुत्री थी। सावित्री रूप में बड़ी रूपवती थी। इसके युवावस्था प्राप्त होने पर राजा इसके साथ वर की खोज में निकले। चलते चलते यह एक वन में पहुँचे। उस समय राजा देव वन भी वनों में इधर उधर तपस्या करते फिरते थे। अचानक अश्वपति राजा ने अपना रथ देवव्रत की कुटी पर आखड़ा किया। राजा उस वक्त तपस्या कर रहे थे। उनके पुत्र सत्यवान को देख कर सावित्री ने अपना पति चुन लिया और वहाँ से राज्य को वापस आगई।

राजा ने आकर यह समाचार ज्योतिषियों से कहा और वर के निमित्त अनेक प्रश्न किया। ज्योतिषियों ने उत्तर दिया। राजन्! वर हर प्रकार से उत्तम है कोई भी उसमें हमें दोष नजर नहीं आता पर एक वर्ष बाद इसका अंत हो जायगा।

राजा यह सुनकर बड़ा दुखी हुआ उसने सावित्री को बहुत समझाया। पर उस देवी ने जिसे एक बार अपने आप को दे दिया फिर दूसरे को नहीं दे सकती। वह अपने पथ से न डिगी और बन में जाकर पति के पास कुटी में रहने लगी और हर समय पति की सेवा में लगी रहती तथा आयु के दिन भी गिनती जाती थी। जब उसका अंतिम दिन आया और सत्यवान घर से चलने लगा तो सावित्री भी उसके साथ होली। चलते चलते सावित्री और सत्यवान जंगल में पहुँचे वहाँ पहुँचने पर सत्यवान ने सावित्री से कहा कि मेरे सिर में दर्द होरहा है। वह तत्काल ही अपने पति के सिर को गोद में लेकर बैठ गई। और कुछ देर बाद सत्यवान बेहोश हो गया।

उधर यम के दूत उसके मृत देह को लेने के लिये आये पर सावित्री के तप को देख कर वहाँ से उलटे ही यमराज के पास गये और सब बात कह दी। आखिरकार यम स्वयं आये पर उस पतिव्रता के आगे तप के आगे वह भी उसके पास न आसका। तब उसने दूर से ही सावित्री से कहा कि तेरा पति मर गया है। इसे अब इस तरह गोद में रखना व्यर्थ है इसे भूमि पर रखदे। सावित्री ने उसे वहीं रख दिया और यम ने वहां से उठा कर अपना रास्ता लिया। परन्तु पतिव्रता सावित्री ने उस का साथ न छोड़ा। यम यह देखकर बहुत डरा और बहुत समझाया और वर मांगने के लिये भी कहा। परन्तु उस ने उस का पीछा न छोड़ा। अन्त में हार कर यम उसके आगे हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया और पूछा देवी! क्या चाहती हो? सावित्री ने कहा—मैं चाहती क्या हूं—यह तुम स्वयं ही

समझ सकते हो। मेरा संसार में एक मात्र पूजक यही था। इसे छोड़ कर मैं कहाँ जाऊं - स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी होती है।

इस तरह यम के साथ सावित्री के अनेक प्रश्नोत्तर होते रहे और अन्त में यम सावित्री से बहुत खुश हुआ और उसे वर दिये सत्य वान को पुनर्जीवित कर उसकी आयु को और बढ़ा दिया और सत्यवान को सावित्री के हवाले किया।

इस तरह सावित्री अपने पति का उद्धार कर बड़े सुख से जीवन व्यतीत करने लगी। यह उसका पातिव्रत प्रेम संसार में सब से बढ़ कर है। इस से बढ़ कर पतिव्रता संसार में मिलना कठिन है। अब ऐसी ऐसी माताओं का संसार में मिलना आसम्भव सा हो गया है। यह सब संसार का चक्र है।

रेणुका।

सचमुच माना कि पुत्रोत्पत्ति के समय जो ख्याल आते हैं वैसे ही ख्याल सब पुत्रों पर पड़ते हैं। यह हम सब रेणुका के दृष्टान्त से भली प्रकार देख सकते हैं कि जो ख्याल उसने पुत्र के गर्भावस्था में मन में सोचा था जो जो आशायें की थी वही सब, पुत्र में उसने देखा और पुत्र ने पूर्ण कर दिखाया।

यह वीर पत्नी कौन थी, इसी का कुछ हाल आज लिखना है। पर्वसेन जी रेणुका नाम के त्रेतायुग में बड़े राजा होगये हैं इनकी कन्या का नाम रेणुका था इसका स्वभाव बड़ा सीधा दयालु था पर साथ साथ यह बड़ी गौरवाभिलाषिनी थी यह इसके अगले जीवन से पता लग जायगा।

रेणुका ने अपना पति स्वयं चुना था और पिता ने भी उसीसे विवाह कर दिया था। रेणुका के पति का नाम जमदग्नि था। यह अपने समय में महान विद्वान हो गये हैं। रेणुका की छोटी बहिन का विवाह सहस्त्रार्जुन से हुआ था जो उस समय बड़ा प्रतापी तथा चक्रवर्ती राजा था।

रेणुका जमदग्नि ऋषि के यहाँ बड़ी अच्छी तरह जीवन व्यतीत करती थी कुछ वर्षों के उपरांत रेणुका से वसु परसु आदि पांच पुत्र उत्पन्न

हुये । जिनमें परशुराम सबसे वीर तथा साहसी था और यही इतिहास में प्रसिद्ध है ।

परशु को बालकपन से ही माता ने क्षत्रियों की शूरता की शिक्षा दी थी और बड़ी बड़ी वीरता के हाल सुनाती थी जिससे पुत्र भी वैसा ही हुआ । माता उत्तम उत्तम शिक्षाओं के उपदेश दिया करती थी । यही कारण था कि परशुराम पिता का बड़ा आज्ञाकारी था वह इसे ही सब से बढ़ कर अपना धर्म तथा कर्तव्य समझता था ।

एक बार रेणुका और यमदग्नि में किसी बात पर झगड़ा होगया । यमदग्नि ने अपने पुत्रों से माता का सिर काटने लिये कहा । परन्तु किसी की ताकत न पड़ी । अंत में वे केवल परशु की ही आशा में रहे । इतने में वे भी आ गये और उनसे भी यही बात कह डाली । परशु ने तत्काल ही आज्ञा को शिरोधार्य करके हाथ में तलवार लेली और वह चला ही था कि पिता ने बीच में ही रोक कर कहा पुत्र बस करो मैं तुम्हारे आज्ञा पालन से अति प्रसन्न हूँ जो वर माँगना चाहो मांगो । तब पुत्र ने कहा मेरी माता के प्राण की रक्षा कीजिये । पिता ने तत्काल मान लिया और सुख पूर्वक आश्रम में रहने लगा ।

एक बार परशुराम बाहर गया था । पीछे से यमदग्नि के आश्रम पर सहस्रार्जुन आये । उनका ऋषि पत्नी (रेणुका) ने बड़ा सत्कार किया उनके इतने सत्कार को देख कर राजा के मन में काम धेनु लेने का तुच्छ विचार हुआ और उनसे गाय देने के लिये कहा, परन्तु उन्होंने साफ मना कर दिया राजा अभिमान के बल से गौ को छीन ले गया ।

इधर जब परशुराम आये और सब बात सुनी तो उन्हें बड़ा क्रोध आया और वहाँ से अकेले ही अपमान का बदला लेने चल पड़े। वहाँ राज महल के पास पहुँच परशु ने बड़े ऊँचे स्वर से कहा रे अभिमानी इतना बाहुओं का गर्व था तो मेरे सामने क्यों न आया ? तुझे ज़रा भी दया न आई कि जिससे सब ऋषियों का पालन होता था जो सबकी जीवन दातृ थी तू उस पवित्र गौ को हर लाया। यदि बल का कुछ भी गर्व हो तो मेरे सामने आ। इतने में कार्तवीर्य उसके सामने लड़ने के लिये आया, पर वीर परशुराम के सामने वह कुछ भी नहीं था। शीघ्र ही उसका वध हुआ इधर ऋषि ने अपने बाणों से सहस्त्रार्जुन के हाथ काट दिये और फिर गौ को आश्रम में ले गया।

क्षत्रिय पुत्र भला किस तरह अपने पिता का अपमान देख सकता था वह भी इसका अवसर ढूंढने लगा। एक दिन जब कि परशुराम जी लकड़ी चुनने गये थे, वे चुपके से आये और कृश देह वाले जमदग्नि का सिर तलवार से काट कर स्वयं वहां से चंपत हुये। रेणुका पति की मृत्यु से अपनी छाती पीट रही थी और सिर के बाल बिखरे हुए थे। पिता ने भी राम राम कह कर प्राणों को छोड़ा, माता आर्तस्वर से चिल्ला चिल्ला कर पुत्र को पिता के अपमान का बदला लेने को कह रही थी, कि इतने में परशुराम भी लकड़ी बन से चुन कर आये।

वह यह दशा देखकर दंग रह गये। पिता का देह खून से तर और शीतल हो चुका था। माता चिल्ला २ कर रो रही थी और कहती थी कि देख पुत्र ! इस घोर अपमान का बदला अवश्य लेना माता विधवा होगई और यह अपराध अन्यथा नहीं हो सकता। यह कह कर रोती हुई

माता ने इक्कीस बार छाती पीटा और चिल्लाया तत्पश्चात् फिर उसके जीवन का अंत होगया।

परशुराम शोक में डूब गये। फिर अपने कर्म को समझ दोनों का संस्कार किया और इस अपमान का बदला लेने के लिये घर से चल पड़े देखें कौन इसके सामने खड़ा हो सकता है।

परशुराम जिधर चलते उधर ही डर के मारे सब क्षत्रिय प्राण खो देते। इक्कीस बार माता की आज्ञानुसार धरती से क्षत्रियों को रहित कर दिया। सहस्त्रार्जुन को संतति का तो बिलकुल नाम मिटा दिया और क्षत्रियों के रुधिर से पृथ्वी को लाल कर दिया।

क्षत्रियों की ऐसी दुर्दशा देख एक दिन कश्यप ऋषि ने परशुराम को समझा बुझा कर शान्त किया और उन्हें महेन्द्र पर्वत पर तप करने के लिये कहा। वे वहाँ जाकर तप करने लगे और इस तरह फिर से सृष्टि में क्षत्रियों का नाम निशान हुआ।

इससे स्पष्ट है कि परशुराम में इन सब गुणों का माता की शिक्षा का ही कारण था जिस तरह उसे बालकपने में सिखाया गया वैसाही वह आगे चल कर बना इसमें थोड़ा भी संदेह नहीं है।

मैत्रेयी

या ज्ञवल्क्य की महानता तथा शिक्षा दीक्षा से आप परिचित हो गये हैं। जिसे गार्गी ने राजा जनक की सभा में दिखा दिया। इन्हीं याज्ञवल्क्य के दो स्त्रियां थीं। मैत्रेयी तथा कात्यायनी। आज हमे मैत्रेयी के बारे में कुछ लिखना है।

याज्ञवल्क्य गृहस्थाश्रम छोड़ कर संन्यास लेने की इच्छा में थे। उन्होंने अपनी यह इच्छा मैत्रेयी से कह डाली कि मैं सन्यासी होने वाला हूँ। मेरा कर्तव्य है कि अपने सामने ही सब सम्पत्ति तुम दोनों में ठीक ठीक करके बांट जाऊँ, ताकि पीछे कोई झगड़ा न हो। स्वामी की बात सुन कर ज्ञानवती मैत्रेयी ने कहा—

मैत्रेयी—प्राणपति ! मैं इस राज सुख को लेकर क्या करूँगी ? मुझे तो पृथ्वी का राज्य भी अगर मिले तो मैं उसे न लूँ। मुझे तो पति सुख चाहिये जिससे अमर पद की गामी बन सकूँ।

याज्ञवल्क्य निज पत्नी की बात सुन कर बड़े खुश हुए और कहा:—

याज्ञवल्क्य—यद्यपि इमसे अमर पद नहीं मिल सकता इससे तो दुष्ट बनियों की तथा धन लोभियों की ही लालसा पूर्ण होती है। इसमें वह सच्चा सुख नहीं मिल सकता।

मैत्रेयी—भगवन् ! मुझे यह राज सम्पत्ति लेकर क्या करना है । मुझे इस अनित्य भोगकी जरा भी आवश्यकता नहीं थोड़ी भी इच्छा नहीं—मुझे तो वह महाज्ञान काम चाहिये जिससे मैं उस पति के अमर पद को प्राप्त कर लूं । यह धन जैसे कीड़े मकोड़े के समान नाचने वाले आदमियों की तरह मुझे न नचाइये । आप निश्चिन्त हो कर यह सब सुख संपत्ति कात्यायिनी को दे दीजिये और मुझे ब्रह्म ज्ञान दीजिए जो आपके हाथ में है मुझे वही दीजिये जिससे मेरा यह जीवन सफल हो ।

याज्ञवल्क्य निज स्त्री की बात सुन कर बड़े खुश हुए और मैत्रेयी को ब्रह्म तत्व सम्बन्धी अनेक उपदेश किये तथा अनेक दृष्टान्त दिखलाये जिससे उसका ज्ञान उसे भली प्रकार हो गया । तदन्तर वे परिव्राजक होकर घर से चले गये । इधर वह देवी उस दिये हुए ज्ञान के बढ़ाने में ध्यान देने लगी । और अमर पद की प्राप्ति के लिये लग गई ।

संसार जिसे सुख समझता है । जिसमें वह आनन्द लेता है लोगों को अनेक कष्ट देकर गरीबों का खून चूस कर गले पर छूरी फेर कर उसके प्राण से जो धन लालची लेते हैं उन्हे पता नहीं कि उसका अन्तिम परिणाम क्या है । जिस को लेने के लिये वे लोभी बनिये दिन रात बैल की तरह रुपया बटोरते रहते हैं । वह सुख आज तो लेते हैं पर कल वे उस जगदीश्वर से दुख भोगते हैं । जितना अब वे मनुष्यों को मार मार कर उन्हें सता कर उन पर दबाव कर उनसे लेते हैं । उस वक्त वही लोभी जन तड़प तड़प कर रोते हैं, चीखते हैं, पर कुछ फ़ायदा नहीं जब दीन उन्हें देखते हैं तो वे मूढ़ धनी अपना मुँह छिपाते हैं और हाथ जोड़ कर क्षमा माँगते हैं । उन्हें उस वक्त ख्याल नहीं होता, रे पामर !

ईश्वर के नाम पर इन गरीब आदमियों पर तरस खा, रहम कर, उस वक्त तो उनकी आंखों में कोल्हू के बैल के समान पट्टी बँधी होती है। दिन रात धन दोनों से लेने पर भी उन्हें तसल्ली होती और कीड़े मकोड़े की तरह उनमें विचार उठते हैं वे चाहते हैं कि हमें और मिले और हमारा खजाना भरे उस में से एक भी पैसा न निकले सब काम हो जाये। वाह रे मूढो कुछ तो अपना जीवन सोचो। इस सती मैत्रेयी से तो कुछ भी सीखो।

वे मूढ़ लोग उस सच्चे सुख को नहीं देखते जिसे मिलने पर मनुष्य उस सुख का भोग करता है जिसे पाने पर वह इतना सुखी होता है। जो अवर्णनीय है। जिसे इस देवी मैत्रेयी ने प्राप्त किया। वह सच्चा सुख भोगविलास नहीं है वह है सुनो मूढो ! ध्यान देकर, आँख खोलकर, अमर पद है मोक्ष जिसका आनन्द ऋषि जन मुनि जन करते हैं, बताते हैं। फिर भी मूढ़ धन कोल्हू के बैल की तरह आंखों में पट्टी बांधे फिरते हैं तो भी उनके मन को शान्ति नहीं मिलती। मिले भी कैसे ?

रानी बिन्दुमती।

रानी बिन्दुमती यशवन्तसिंह की धर्मपत्नी थी। यह बड़ी साहसी तथा तेजस्विता पूर्ण थी। यह राज वंश की कन्या थी। अतः यह स्वाभाविक बात थी कि यह वीरता प्रेमी हो।

यशवन्तसिंह के ज्येष्ठ भ्राता का नाम पृथिवी सिंह था। यह दोनों बड़े वीर तथा शक्तिशाली थे। यह मुग़ल सम्राट औरंगजेब के प्रधान सेना नायक थे। इनकी वीरता को हिन्दू मुसल्मान दोनों ही स्वीकार करते थे। जिधर सम्राट इन्हें भेजता था उधर से विजयी हो होकर आती थी। इसी के कारण औरंगजेब का राज्य इतना विस्तीर्ण हो गया। परन्तु औरंगजेब का स्वभाव अच्छा न था। इसने एक तो अपने भाईयों के साथ बुरा किया पिता के जीते हुए सब भाइयों को मार स्वयं राजगद्दी पर बैठ गया। इतना प्रधान सहायक होते हुए भी इसने यशवन्तसिंह को मारने के लिये उठना छोड़ा था—बड़े बड़े युद्धों में इसने उसे केवल मारने के हेतु भेजा। परन्तु यह वीर केसरी जिधर जाता था उधर विजय ही होती थी।

एक बार किसी युद्ध में यशवन्तसिंह लड़ने गये वहाँ से हार कर जोधपुर राजधानी में आये। जब रानी ने यह सुना कि मेरे पति हार कर आ रहे हैं त्योंही उसने दुर्ग का फाटक अन्दर से बन्द करवा लिया और कहा कि मेरे स्वामी कभी युद्ध में हार कर आ नहीं सकते। वे

विजय का ही समाचार लाते हैं या मृत्यु को प्राप्त होते हैं। तुम मेरे स्वामी नहीं हो।

पत्नी के मुख से यशवन्तसिंह ने ऐसी बात सुन कर बड़े दुखित तथा अपमानित हुए। उन्होंने मन ही मन अपनी पत्नी की वीरता की प्रशंसा की। और कहला भेजा कि हम युद्ध करते करते थक गये हैं। अब इसीलिये विश्राम के लिये यहां आये है। कुछ दिन बाद हम यहाँ से चले जावेंगे तब जाकर उस राजपूतरमणी ने दुर्ग का फाटक खोला और फिर भी उनसे मिली तक नहीं। कुछ दिन घर में रह कर यशवन्तसिंह रण में चले गये।

ऊपर कह चुके है कि औरंगजेब सदा यशवन्तसिंह के मरवाने में रहता था। उसे डर था कि कहीं यशवन्तसिंह मुझ से राज्य न छीन लें। औरंगजेब का स्वभाव भी ऐसा था कि वह किसी पर भी अपने मित्र तक का विश्वास न करता था। अपने मन के अनुकूल ही सब करता था। इसी के कारण उसकी किसी से बनती भी न थी।

एक बार जब काबुल में ग़दर हुआ, बड़ा झगड़ा मचा तब इसने उसे शांत करने के हेतु यशवन्तसिंह को वहां भेजा इसमें उसका असली मतलब उसे मरवाना ही था। परन्तु यशवन्तसिंह तो सदा विजय के ही भागी थे। वीर केसरिओं का कामही विजय का पाना है। वहाँ वह गये और युद्ध में लग गये। इधर उधर औरंगजेब ने उसके ज्येष्ट पुत्र पृथ्वीसिंह को दरबार में बुलाकर बड़े सन्मान के साथ एक पोशाक उपहार रूप में भेंट की। उसे क्या पता कि इस दुष्ट का क्या अभिप्राय है। उसने उपहारीय वस्तु को वहीं पर पहन कर घर की ओर चल

दिया। जब वह कुछ ही दूर पहुँचा तब उसका सारा शरीर जलने लगा और रास्ते में ही उसका अंत हो गया। पुत्र का मरना संवाद सुन यशवन्तसिंह ने भी काबुल में पुत्र शोक के कारण प्राण छोड़ दिया। यशवन्तसिंह के साथ कितनी रानियां चिता में जल गईं। रानी बिन्दुमती गर्भवती थी। उसने वंश को नाम चलाने के लिये अपने को बचाये रखा।

यशवन्तसिंह का एक बड़ा विश्वासी नौकर दुर्गादास राठौर था। वह रानी तथा नव बालक अजित को इसके हाथ से बचाने के लिये जोधपुर की ओर चला परन्तु दुष्ट धूर्त औरंगजेब से यह देखा न गया उसने तुरंत ही यशवन्तसिंह के घर पर आक्रमण कर दिया। रानी बिन्दुमती ऐसी कठिनावस्था देख कर दुर्गादास से कहा ! हे वीर। मुझे पति का वंश चलाने के लिये अपनी रक्षा तथा पुत्र की रक्षा करनी होगी। नहीं तो मुझे मरने में कुछ भी परवाह न थी। परन्तु स्वामी के बदला लिये बिना मैं कैसे प्राण छोड़ सकती हूँ।

दुर्गादास—रानी ! तुम किसी बात का भय न करो—जब तक मेरे हाथ में तलवार है, जीवन में जीवन है तब तक तुम पर कोई भी आपत्ति नहीं—कठिनावस्था में तुम जानती हो कि राजपूत रमणी का क्या कर्तव्य है।

इधर शीघ्र ही दुर्ग में बारुद बिछाकर सब रानियाँ राजपूत रमणियाँ उस पर बैठ गईं और उसमें आग लगादी इस तरह उन राजपूत रमणियों ने अपनी धर्म की रक्षा कर स्वर्ग की राह ली।

दुर्गादास—रानी बिन्दुमती तथा अजित को ले उदयपुर गया और राजा राजसिंह से सब दुःख तथा संकट की कथा कह दी। राजा

राजसिंह ने उन्हें अभय दान के सहित रहने की आज्ञा दी। रानी विन्दुमती ने कहा—राजन्। मैं अपने पुत्र की रक्षा के हेतु आपके पास आई हूँ मुझे इस वक्त आपके सिवाय और कोई योद्धा नहीं दीख पड़ता। आप ही दुनियाँ में शरणागतों के रक्षक हैं जिस प्रकार औरंगजेब ने कुल का विध्वंश करने को कुछ नहीं उठा रखा है। उसके लिये मैं मारवाड़ जाती हूँ। वहाँ की सेना को प्रजा को तथा उस राजपूतों को उनका कर्तव्य पथ बताऊँगी कि शीघ्र चल कर बैर को छोड़ कर असली राजपूत संतान की तथा राजस्थान की अपनी औरत को बचाने के लिये शीघ्र हो राजसिंह को सहायता करो। राजन्। मुझे आज्ञा दीजिये—मुझे आशीर्वाद दीजिये—ताकि मैं रण में पूर्ण मनोरथ हो सकूँ।

राजसिंह ने भी उसे पूर्ण मनोरथ का भरोसा दिया और कहा रानी! तुम किसी बात की चिन्ता न करो। अजित को तुम यहाँ हर प्रकार से रक्षित समझो। उसका कोई कुछ नहीं कर सकता।

रानी राजसिंह के वचनों को सुन कर वहाँ से मेवाड़ आई। तेजवती रानी ने शीघ्र ही अपनी वाणी से प्रभाव से सारे राज काज में उत्तेजना फैला दी। सब अपना अपना कर्तव्य समझ सेना को जाकर राजसिंह जी यहाँ तक के लिये उदय पुर आगये।

इधर शाहजादा अकबर ने अपनी सेना लेकर राजपूताने पर आक्रमण कर दिया। बीर राजपूतों ने भी अपनी बहादुरी का खूब परिचय दिया और राना सिंह के दोनों पुत्र भीमसिंह जयसिंह तथा दुर्गादास के दांत खट्टे दिये और उनकी सेना का वहीं से उलटा ही भागना पड़ा

शाहज़ादा सपरिवार वीर राजपूतों के साथ पकड़ा गया औ
और सेना भेजा परन्तु वीर राजपूतों के सामने वह ठहर
युद्ध में औरङ्गज़ेब की सेनापति भी दूसरी जब किया परन्तु
पूतों ने उसे बड़े सत्कार सहित औरङ्ज़ेब के पास भेज दी ।
पूतों की धैर्य तथा रण का प्रत्यक्ष उदाहरण हम इस
सकते हैं कि उनमें कितनी धैर्य दृढ़ता थी ।

संतबानी पुस्तकमाला

[जीवन-चरित्र हर महात्मा के उन की बानीके आदि में दिया है]

दुःख का मीठा फल—इस उपन्यास के नाम ही से समझ लीजिये । मूल्य ।॥=)

कर्मफल—यह उपन्यास बड़ा शिक्षाप्रद और रोचक है । मूल्य ॥।)

हिन्दी कवितावली—यह उत्तम कविताओं का संग्रह बालक बालिकाओं के लिये अत्यन्त उपयोगी है । मूल्य ‑)

प्रेम तपस्या—एक सामाजिक उपन्यास—(प्रेम का सच्चा उदाहरण) मूल्य ॥)

हिन्दी साहित्य सुमन—छोटे लड़कों के लिये यह पुस्तक अपूर्व है (सचित्र) मूल्य ॥)

सचित्र विनय पत्रिका—गोस्वामी जी की इस दुर्लभ पुस्तक का दाम मय टीका और राग परिचय के सिर्फ़ २॥) है । सुनहरी सजिल्द ३)

विनय कोश—विनयपत्रिका के सम्पूर्ण शब्दों का अकारादि क्रम से संग्रह करके विस्तार से अर्थ है । मानसकोश का काम देगी मूल्य २)

हनुमान बाहुक—प्रति दिन पाठ करने योग्य, मोटे अक्षरों में) बहुत शुद्ध छपा है । मूल्य ‑)॥

गीता—(पाकेट एडिशन) श्लोक और उनका सरल हिन्दी में अनुवाद है अन्त में गूढ़ शब्दों का कोश भी है । मूल्य ।॥=)

हिन्दी महाभारत—सरल हिन्दी में कई सुंदर रंगीन चित्रों के सहित १८ पर्वों की पूरी कथा छपी है । मूल्य ३)

नवकुसुम—इस पुस्तक में छोटी बड़ी कहानियाँ जो बड़ी रोचक और शिक्षाप्रद हैं । पढ़िये और घरेलू जिन्दगी का आनन्द लूटिये । मूल्य प्रथम भाग ।॥) दूसरा भाग ॥)

कवित्त रामायण—पं० रामगुलाम जी द्विवेदी कृत पाद टिप्पणी में कठिन शब्दों के अर्थ सहित छपी है । मूल्य ।=)

सचित्र बाल विहार

(दो भागों में)

यह पुस्तक बिलकुल रंगीन चित्रों से भरी है हर चित्र का वर्णन सरल सरल हिन्दी पद्य में है और कंठाग्र करने योग्य हैं बालकों के लिए तथा जो स्त्रियां थोड़ी भी हिंदी जानती हों उनके लिए अद्वितीय है। मूल्य प्रत्येक भाग ॥) डाक खर्च अलग।

मैनेजर—

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

करुणा देवी

(लेखक स्वर्गीय पं० मणिराम शर्मा)

यह सामाजिक उपन्यास है। इस पुस्तक में मनोरंजनके अतिरिक्त सदुपदेशकी भी काफ़ीसामग्री है। पुस्तक में करुणा नामक साध्वी का अति अनुकरणीय और उत्तम चरित्र बड़े मनोहरढंग से खींचा गया है। स्त्री का पति, सास, ससुर, देवरानी इत्यादि से कैसा बर्ताव करना चाहिये इसका ज्वलन्त प्रमाण अच्छे शब्दों में व्यक्त किया गया है। स्त्रियांकिन किन गुणों के द्वारा अर्द्धाङ्गिनी शब्द को चरितार्थ कर सकती हैं, उन्हीं गुणों को सरल भाषा में दिखाया गया है। दाम्पत्य प्रेम का जीता जागता चित्र सम्मुख उपस्थित हो जाता है। मूल्य केवल ॥=) है।

मिलने का पता—

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

सपरिशिष्ट

इस पुस्तक में देश और विदेश के अनेकों, सन्तों महात्माओं और विद्वानों की उक्तियों का संग्रह है। बालक से वृद्ध तक सभी इसको पढ़ कर आनन्द प्राप्त कर सकते हैं और अपने जीवन को महत्व पूर्ण बना सकते हैं। इस पुस्तक को पढ़ कर मनुष्य को पढ़ कर मनुष्य संसार के दुर्व्यसनों से तो बच ही सकता है और परलोक को भी बना सकता है। अब तक ऐसी कोई पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई जिसमें महात्माओं की ऐसी सूक्तियों का संग्रह हो। इसके तीन संस्करण बिक चुके। चौथा संस्करण छप गया है। यही इसकी उत्तमता का प्रमाण है। मूल्य बेजिल्द का ॥=) और सजिल्द का १।) मात्र है।

मिलने का पता—

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।